अनुवादक की ओर से

भगवान की महिमा का वर्णन कौन कर सकता है? जब स्वयं प्रभु ही किसी पर अपनी कृपा की दृष्टि डालते है और उसे समर्थ बनाते हैं, तब वह इस कर्म में तत्पर होता है। श्री कस्तूरी जी को भगवान बाबा का अनुग्रह प्राप्त है और निश्चय ही वे इस कलियुग के व्यास और बाल्मीकि है। उन्होंने भगवत् वाणी का अनुवाद अंग्रेजी में किया है, तदनन्तर वह दूसरी भाषाओं में आया है। किन्तु 'ईश्वराम्मा' उनकी अंग्रेजी में लिखी हुई मूल पुस्तक है। अतः प्रस्तुत अनुवाद मूल का अनुवाद है, अनुवाद का अनुवाद नहीं। अनुवाद करते समय मुझे कई स्थलों पर संशय हुआ, किन्तु स्वामी के निकट बैठकर जो बल मिला, उससे कार्य आगे बढ़ता गया। उदाहरण के लिए अंग्रेजी में अन्य पुरुष एक वचन सर्वनाम में "वह" का ही प्रयोग होगा. चाहे छोटा हो या बड़ा। पर हिन्दी की अपनी मर्यादायें है। हम छोटों को तो "वह" कह कर सम्बोधित करते है, किन्तु जो इससे बड़े आदर के पात्र और पूज्य है, उनके लिए "वे" का प्रयोग होता है. यद्यपि व्यक्ति एक

ही होता है। बाबा के बाल्यकाल का वर्णन करते समय उनके माता-पिता तथा अन्य बड़े व्यक्तियों द्वारा उनके लिए "वह" शब्द का प्रयोग हुआ है. किन्तु जब वे अपने वास्तविक स्वरूप का उद्घाटन कर देते है और कहते है कि “मैं शिरडी साई बाबा हूँ", इस प्रसंग के बाद "वे" का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार कस्तूरी जी ने जिन भावों को कम शब्दों में अपनी काव्यात्मक तथा साहित्यिक भाषा में बांधा है उन्हें जहाँ तक संभव हुआ है, उसे उसी रूप में रखने का प्रयत्न किया गया है। फिर भी विषय दुरुह न हो जाए और उसका प्रवाह न रुकने पाए, इसलिए कहीं-कहीं छूट लेकर उसे सरल भाषा में विस्तार में लिखा गया है। कठिनाई आने पर स्वयं कस्तूरी जी से शंका समाधान कर लिया गया है। फिर भी अनुवाद में त्रुटियां हो सकती है, जिसके लिए पाठकगण मुझे क्षमा करेंगे।

प्रशांति निलयम्, 8 जुलाई 85

विनीत

भागवत प्रसाद मिश्र

अनुक्रमणिका

(अध्याय पर सीधे पहुंचने के लिए निम्नलिखित लिंक क्लिक करें)

आमुख

1. अवतार के माता पिता
2. आकाश और चन्द्रमा
3. बालक
4. सर्प-गिरि
5. घोषणा
6. माया रूपी माँ
7. वे माया है
8. प्रथम पाठ
9. आश्चर्य का भँवर
10. प्रशांति-योजना
11. क्षितिज का विस्तार
12. प्रशांति निलयम्
13. सरिता, सिकता, सागर
14. प्रेम-लीला
15. मौन साधना
16. आवाहन और आगमन
17. विजय प्राप्ति

<u>आमुख</u>

“मैंने अपने जन्म के विषय में निर्णय ले लिया। मैंने यह निश्चित कर लिया कि मेरी जननी कौन हो ।” 31 दिसम्बर, 1970 के दिन भगवान सत्य साई बाबा ने बम्बई के एक दैनिक पत्र 'नवकाल' के सम्पादक के प्रश्न के उत्तर में यह घोषणा की। भगवान द्वारा स्थापित और निर्देशित वेदविद्वद्सभा (अकादमी ऑफ वैदिक स्कॉलर्स) के एक विशेष अधिवेशन के अवसर पर हम सभी उपस्थित थे। आशीर्वचन स्वरूप अपने प्रवचनों के उपरान्त उन्होंने पूछा, “कोई प्रश्न ?” सम्पादक ने साहस करके पूछा, “परमात्मशक्ति के ये लक्षण आप कब से प्रकट करने लगे ?" तत्क्षण उत्तर मिला, “जन्म से ही । बल्कि....इसके भी बहुत पूर्व। पुट्टापर्ती में राजू परिवार में जन्म लेने के पूर्व मैं शिरडी में साई बाबा के रूप में उपस्थित था और उसके भी पूर्व में कृष्ण था।"

सम्पादक मौन और हक्का-बक्का रहा गया। भवन में उपस्थित अन्य सभी श्रोताओं की भी यही स्थिति थी, जिनमें महाराष्ट्र सरकार के गृहमंत्री श्री पी॰ के॰ सावन्त, महाराष्ट्र विधान सभा के स्पीकर, श्री भर्डे, महाराष्ट्र

विधान परिषद् के अध्यक्ष श्री बी० एस० पागे तथा अन्य गणमान्य व्यक्ति सम्मिलित थे।

“कहने का तात्पर्य यह...." सम्पादक हकलाते हुए बोला, "कहने का तात्पर्य यह" बाबा ने उसे बीच में ही रोक कर कहा “मैंने अपने जन्म के विषय में निर्णय ले लिया। मैंने यह भी चुन लिया कि मेरी माँ कौन होगी। मनुष्य तो केवल यह निर्णय ले सकता है कि उसका पति अथवा पत्नी कौन होगी? किन्तु राम तथा कृष्ण दोनों अवतारों में पुत्र ने अपनी माता को चुन लिया था। साथ ही जैसा कि अब हुआ है, उसी प्रकार मेरे जन्म का हेतु केवल एक ही था-सब पर प्रेम की वर्षा करना तथा प्रेम द्वारा मानव मात्र में पवित्र जीवन व्यतीत करने की प्रवृत्ति उत्पन्न करना।

साई बाबा ने जननी के रूप में ईश्वराम्मा को ग्रहण किया। ईश्वराम्मा एक सामान्य परिवार की मध्य आयु वाली, कोमल हृदय युक्त, पवित्र और अशिक्षित ग्रामीण महिला थीं। उन्होंने सात बच्चों को पाला था, जिनमें से तीन कुमारावस्था तक जीवित रहकर बड़े हुए। ईश्वराम्मा को जो ऐतिहासिक भूमिका निभानी थी, और उसे निभाने में उन्होंने जिस अदम्य साहस का परिचय देकर भगवान की माँ बनने की चुनौती को स्वीकार किया. यह पुस्तक उस भूमिका के प्रति एक अकिंचन श्रद्धांजलि है।

भागवत पुराण तथा रामायण हमारे समक्ष हर्ष और विषाद, आशा और निराशा, आकुलता और आश्वासन के क्रमशः आक्रमण की वे झलकियाँ प्रस्तुत करती हैं, जिन्हें यशोदा और कौशल्या रूपी माताओं ने उस समय सहन किया था, जब कृष्ण और राम ने अपने बाल्यकाल में अपने अलौकिक स्वरूप को उनके समक्ष प्रदर्शित किया था और आवश्यकतानुकूल मानव, दानव और देवताओं सभी को बचपन में ही दण्डित किया था। ईश्वराम्मा भी प्रत्येक हिन्दू सद्गृहणी के समान राम और कृष्ण से सम्बन्धित तेलुगु में गाए जाने वाली वीर गाथाओं, लोक गीतों तथा लोक कथाओं से परिचित थीं। फिर भी वर्षों के सूक्ष्म निरीक्षण और सैकड़ों अप्रत्याशित घटनाओं और संकेतों के उपरान्त ही उन्हें यह विश्वास हो सका, कि यह बालक, जिसे उन्होंने दुलराया और खिलाया है, जिस पर वे न्यौछावर हो गई हैं, यह सिद्ध करने के लिए अवतरित हुआ है कि श्रीमद्भागवत और रामायण आज भी उतनी ही सत्य हैं, जितनी कि द्वापर और त्रेता युग में थीं।

जब हम अवतार की जननी के जीवन का सिंहावलोकन करते हैं, तो हमें लगता है कि हम कौतूहल, आशा, करुणा और आश्चर्य के मध्य क्रमशः आगे बढ़ रहे हैं और अन्ततोगत्वा सराहना, प्रशंसा और पूजा के स्थल पर ठहर रहे हैं। ईश्वराम्मा को एक असंभव कार्य सौंपा गया था। उनसे आशा की जाती थी कि वे गिरि-मालाओं के घेरे से परे, परम्परा और रूढ़ि से परे, जाति और रीति-रिवाज की दीवारों से कहीं परे अपनी चेतना का विस्तार करें। एक स्त्री जिस अति मूल्यवान मातृत्व की कामना कर सकती है, उस

मातृत्व के गौरवशाली किन्तु क्षम्य अभिमान को वहन करते हुए भी वे कभी निरन्तर प्रयत्न करने पर भी उस श्रद्धा की अवहेलना न कर सकीं, जिसके लिए वे विश्व के आकर्षण का केन्द्र बन गई थीं। किन्तु जब वे इस संशयात्मक स्थिति में थीं, तब भी उन्हें भगवत्कृपा की प्राप्ति के लिए आतुर किसी भी अन्य सच्चे भक्त की भांति साधना के उस अंतर्पथ से होकर गुजरना पड़ा जो भक्त को अनेकता से एकता की ओर, बिखराव से एकाग्रता और ध्यान, अहं से अनासक्ति, वासना से सौम्यता, तटस्थता से प्राणिमात्र के प्रति चिंता और प्रेम तथा माया से ब्रह्म की ओर ले जाता है।

और यह सारी यात्रा उन्हें ऐसी स्थिति में तय करनी पड़ी, जहाँ वे एक ओर राजू परिवार में माता तथा दादी-नानी के कर्त्तव्य निभा रही थीं तो दूसरी ओर उन्हें दिन प्रति दिन बढ़ते हुए बहु-भाषीय, बहु-जातीय तथा बहु-धर्मी विश्व परिवार के साथ भी अपने उस कर्त्तव्य का पालन करना था। मां के रूप में निश्चय ही उनका प्रेम सबको समेटने वाला, सबका रक्षण करने वाला तथा निर्बन्ध होना था। मुख्य रूप से भगवान बाबा की कृपा और उपदेशों के बल पर ही वे अपने प्रेम के विस्तार और गहनता के कार्य में सफल हो सकीं। बाबा ने धर्म का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि स्त्री ईश्वर के कल्याण और करुणामय पक्ष का जीवन्त स्वरूप है। सहनशीलता, विनम्रता और कोमलता से युक्त एक स्त्री में आध्यात्मिक भाव के प्रति नैसर्गिक अनुरक्ति होती है। वह बुद्धिमती भी होती है और सतर्क भी। उसमें सद्गुणों के प्रति आदर और श्रद्धा का एक जन्मजात भाव होता है। साई के निकटतम भक्त के रूप में अपने को ऊंचा उठाने में और एक आदर्श स्त्री के

उच्च-शिखर-बिन्दु तक पहुंचने में स्वयं भगवान साई ने उनकी सहायता की।

मैंने तूलिका के कतिपय हल्के झटकों से ऐसी मां का चित्र खींचने का यहाँ प्रयास किया है। अपने जीवन के चौबीस वर्ष पुट्टापर्ती में व्यतीत करने का सौभाग्य मिलने पर भी, ऐसे चौबीस वर्ष जबकि ईश्वराम्मा स्वयं भी कभी गाँव में और कभी प्रशांति नियलम् में सदैव क्रियाशील रहीं, यदि मैं उस पावन चित्र को पूर्णता प्रदान नहीं कर सकता, तो यह मेरी असमर्थता है। किन्तु वे मेरे लिए अत्यंत विनम्र और विनयशील थीं तथा अत्यंत असंप्रेषणीय थीं। फलस्वरूप उनके कार्यों और प्रतिक्रियाओं को गहराई में जाना मेरे लिए संभव न था। वे तभी मेरे सामने अपना हृदय खोलकर रखती थीं, जब वे किसी ऐसे संदेह का निवारण चाहती थीं, जो उन्हें परेशान किए रहता था; अथवा किसी गुत्थी को सुलझाना चाहती थीं, अथवा किसी गहरी आशंका का निवारण चाहती थीं, अथवा किसी अफवाह का पता लगाना चाहती थीं। मुझे पाकर उन्हें ऐसा लगता था कि उन्हें एक ऐसा व्यक्ति मिल गया है जो उनके असमंजस और समस्याओं को समझता है और प्रभु की जननी के रूप में मेरी पूजा करता है।

जब पेड्डा वेंकमा राजू ने अपने इस पार्थिव शरीर का त्याग किया, " तब बाबा ने कहा कि मानव इतिहास के लम्बे अंतराल में केवल एक व्यक्ति को ही अवतार के पिता के रूप में मानव जाति द्वारा सम्मान, आदर और अलभ्य ख्याति का गौरव प्राप्त हुआ है। अवतार की जननी के रूप में

ईश्वराम्मा के पार्थिव जीवन का यह वृत्तान्त कितना ही संक्षिप्त, विरल और साधारण क्यों न हो, फिर भी यह हमें इस बात का स्मरण दिलाता रहेगा कि उन्हें स्वयं ईश्वर की माता के रूप में असंख्य कठिन परिस्थितियों, संकटों, और बाधाओं का सामना करने के लिए किस असाधारण साहस से काम लेना पड़ा और अंत में वे किस प्रकार विजयश्री से सुशोभित हुई।

एन॰ कस्तूरी

ईश्वराम्मा दिवस 6 मई, 1984

---

1. अवतार के माता पिता

बाबा ने कहा है कि मनुष्य के चार प्रकार के पुत्र उत्पन्न होते हैं। अन्तर केवल इस बात का होता है कि उस जन्म के पीछे जो प्रेरणा है, वह कितनी बलवती है। इनमें से तीन प्रकार की उत्पत्ति कर्म के सिद्धांत के अनुसार होती हैं। पहला सिद्धान्त है कि यदि किसी ने अपने पूर्व जन्मों में ऋण लिया है, किन्तु उसे चुकाने में असफल रहा है तो ऋण देने वाला उस व्यक्ति की संतान के रूप में जन्म लेता है, ताकि वह पालन-पोषण के रूप में अपने दिए हुए ऋण का भुगतान पा सके और जैसे ही यह ऋण पूरी तरह चुक जाता है, वह संतान सदैव के लिए घर को त्याग देती है। किन्तु यह भूमिका उलट ऐसी स्थिति में माता-पिता ऋणदाता होते हैं, जो अपना ऋण पूरी तरह प्राप्त होने के पूर्व ही अपना शरीर त्याग देते हैं। ऐसी स्थिति में ऋण लेने वाला उसकी सन्तान के रूप में जन्म लेता है और जब वह अंतिम बिन्दु तक पूरा ऋण चुका देता है, वह अपने धर्म के बंधनों से मुक्त हो जाता है और इस संसार से बिदा लेता है। तीसरी श्रेणी में वे सन्तानें आती हैं जो केवल भगवद् कृपा से वरदान के रूप में पुण्यात्माओं को प्राप्त होती हैं। ईश्वर उन्हें सन्तति प्रदान करता है और माता-पिता को उसके पालन-पोषण और रक्षा का भार सौंपता है, ताकि आगे चलकर वह पृथ्वी पर जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए आया है, उसे पूर्ण कर सके। चौथी श्रेणी स्वयं वह जीव होता है, जो भगवान का अवतार होता है। इसमें ब्रह्माण्डीय चेतना स्वयं ही अपनी मानव-भूमिका का निर्णय करती है और अपने अवतरण का समय और स्थल तथा जिन्हें वह माता-पिता कह कर सम्बोधित करेगी, ऐसे व्यक्तियों का चुनाव करती है, साथ ही यह भी

निश्चय करती है कि असीमित शक्तिपुँज के रूप में वह किस गर्भ में प्रविष्ट होकर अपनी इहलीला प्रारम्भ करेगी।

रामायण के अनुसार, जो रामावतार की कथा है, देवताओं के स्वामी नारायण ने साधु-सन्त और ऋषि-मुनियों की प्रार्थना सुनकर कहा, “भय का त्याग करो। विश्व-कल्याण के लिए मैं मानव के रूप में इस संसार में रहूँगा।" बाल्मीकि कहते हैं, कि ऐसी घोषणा के पश्चात् भगवान विष्णु आश्चर्य में पड़ कर स्वयं यह सोचने लगे कि इस मानव संसार में मैं कहाँ जन्म लूं? अन्ततः उन्होंने महाराजा दशरथ को अपने पिता के रूप में चुनकर उनके यहाँ पुत्र के रूप में जन्म लिया।

बहुत वर्षों के उपरान्त एक ऐसा अवसर उपस्थित हुआ जबकि राम ने इस बात पर बल दिया कि रावण के कारागार से मुक्त होने पर सीता अपने सतीत्व के प्रमाण स्वरूप अग्नि में प्रवेश कर अपनी परीक्षा दें। स्वर्ग के सभी देवी-देवताओं ने जो विभिन्न लोकों के स्वामी थे, ब्रह्मा को अपना प्रमुख चुनकर राम की इस काम के लिए भर्त्सना की और कहा कि वे एक सामान्य मानव की भाँति व्यवहार कर रहे हैं। इस पर राम ने उत्तर दिया, “क्यों ? मैं अपने को दशरथ पुत्र राम ही मानता हूँ और इस दृष्टि से साधारण मनुष्य ही हूँ।" किन्तु जैसा कि हर एक को ज्ञात है- जन्मदाता के रूप में दशरथ की भूमिका नहीं के बराबर थी। राम का जन्म इस प्रकार हुआ, "राजा दशरथ ने कोई संतान न होने के कारण पुत्र की कामना से एक यज्ञ किया। यज्ञ की ज्वाला के मध्य एक अत्यंत जाज्वल्यमान स्वरूप

में स्वयं शक्ति के पुँज अग्नि देव प्रकट हुए और उन्होंने स्वयं को प्रजापति का दूत बतलाया। उन्होंने दशरथ के हाथों में दूध फेन से भरा हुआ एक स्वर्ण पात्र दिया और कहा, "इसे अपनी सहधर्मिणियों को दे दो। उनके द्वारा तुम्हें सन्तान की प्राप्ति होगी।"

राम ने कहा, "वंदनीय देव! कृपया मुझे यह बतलाइए कि मैं कौन हूं? पूर्वजन्मों में मैं क्या था? और मैंने यहां क्यों जन्म लिया है।" तब ब्रह्मा ने राम को अपनी उस यथार्थता का स्मरण दिलाया जो वह थे और किस प्रकार उस परब्रह्म परमात्मा ने ब्रह्मा की प्रार्थना पर अपने को मानव रूप में अवतरित होने के लिए सम्मति प्रदान की थी। उन्होंने कहा कि यह आश्चर्य की बात है कि वह परम सत्ता ही आज मानव देश में अपने को चतुराई से छिपाकर अपने आस-पास के एकत्रित समाज से पूछ रही है कि "मैं क्या हूँ?" ब्रह्मा ने कहा, "ओ राम! सुनो! मैं तुम्हारे समक्ष सत्य का उद्घाटन करता हूँ। तुम्हीं सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सम्पूर्ण और सनातन, सर्वोच्च सत्ता हो। तुम से ही इस सृष्टि की उत्पत्ति होती है, और तुम्हीं में यह लीन हो जाती है। परम ज्ञानी और सिद्ध पुरुष सभी प्राणियों में तथा सभी दिशाओं में तुम्हारा दर्शन करते हैं, पर किसी को तुम्हारे आदि और अन्त का ज्ञान नहीं है और न ही कोई तुम्हारी वास्तविकता को जान सका है।" इसी प्रकार जब अयोध्या के सिंहासन पर राम का राज्य-तिलक हुआ था, अगस्त्य मुनि ने भी तब ऐसे ही वचन कहे थे। उन्होंने कहा था, "राम ! क्या तुम अभी तक इस सत्य को नहीं पहचान पाये हो कि तुम्हीं नारायण हो ? भ्रम में मत पड़ो । ब्रह्मा ने स्वयं कहा है कि तुम्हीं रहस्यों के

रहस्य हो। तुम्हीं तीन गुणों और तीनों वेदों के जन्मदाता हो और तुम्हीं तीनों लोक के वासी हो। तुमने ही अपने तीनों पगों से अखिल ब्रह्माण्ड को नाप डाला था और अब इन समस्त लोकों पर अपनी कृपा और अनुग्रह करने के लिए ही तुमने मनुष्य के रूप में अवतार लिया है।" वाल्मीकि द्वारा रामायण में जिन घटनाओं का वर्णन किया गया है, उनसे अवतार के पृथ्वी पर जन्म लेने के उद्देश्य का पता चलता है। यह उद्देश्य था कि जिन स्त्री और पुरुष "को अर्थात् दशरथ और कौशल्या को राम ने अपने माता-पिता के रूप में स्वीकार किया, उन्हें यश और कीर्ति से पुरस्कृत करना।

भगवान के अन्य अवतारों के रूप में पृथ्वी पर अवतरित होने की घटनायें इस विश्वास को दृढ़ करती हैं कि अवतार लेने के पूर्व ही जब वह परमब्रह्म सत्ता एक अभिभावक और निर्देशक की भूमिका के लिए कृत संकल्प होती है, तो वह यह भी निश्चय कर लेती है कि किन व्यक्तियों को उसके माता-पिता होने का सौभाग्य प्राप्त होगा। साँख्य दर्शन के प्रसिद्ध जन्मदाता कपिल मुनि को हमारे धर्मग्रन्थों में नारायण का अवतार माना गया है। उनकी उत्पत्ति इस प्रकार वर्णित है: कर्दम ऋषि अपनी पत्नी देवहुति से कहते हैं, "जिस अनन्य भक्ति से तुमने नारायण की उपासना की है और त्याग और तपश्चर्या के नियमों का पालन किया है, उससे वे तुमसे प्रसन्न हैं और उन्होंने यह आश्वासन दिया है कि वे तुम्हारी कोख से जन्म लेंगे और मुझे यह कहलाने का गौरव प्राप्त होगा कि नारायण ने कर्दम के पुत्र के रूप में जन्म लिया है।"

भगवान श्री कृष्ण की कथा, जिन्हें सभी ने पूर्णावतार के रूप में स्वीकार किया है, दिव्य बालक के पवित्र गर्भाधान का स्पष्ट प्रमाण है। जैसा भागवतकार ने कहा है, "पृथ्वी माता की असह्य पीड़ा और करुण पुकार से द्रवित होकर भगवान विष्णु ने स्वेच्छा से मानवता के पोषक और संरक्षक के रूप में अवतरित होने का निश्चय किया। ब्रह्मा ने सर्वव्यापी भगवान विष्णु की उस महद् ध्वनि को सुना, जिसमें भगवान ने पृथ्वी को आशीर्वाद और वरदान प्रदान किया। अपने समक्ष उपस्थित पीड़ित मानवता के सामने उन्होंने घोषणा की कि स्वयं भगवान जो सर्वशक्तिमान सब हृदयों का वासी है अपनी स्वेच्छा और संकल्प से वसुदेव के गृह में जन्म लेगा।"

जब वसुदेव की पत्नी देवकी ने जिन सात सन्ततियों को जन्म दिया। उन्हें अपने वचन के अनुसार वह अपने भाई कंस को भेंट कर चुकी, तब उस परम सत्ता ने निश्चय किया कि उसके प्रकट होने का समय आ गया है। भागवत में उल्लेख है, "उस परम पिता ने जो सम्पूर्ण सृष्टि का एक मात्र स्वामी है, वसुदेव के मन में अपने एक अंश के रूप में प्रविष्ट होने का निश्चय किया; ताकि सदाचारी, सज्जन और धर्म-परायण लोगों को अभय प्रदान किया जा सके।" श्रीमद्भागवत में संस्कृत शब्द 'अंश' का प्रयोग किया गया है, जिसका अर्थ टीकाकारों ने एक 'भाग' या 'टुकडा' लगाया। है, पर मैंने उन्हें 'भाग' के अर्थ में न लेकर 'एक पक्ष' के रूप में लिया है अर्थात् भगवान के अनेक रूपों और पहलुओं में से एक विशिष्ट रूप में वसुदेव के मन में हरि ने प्रवेश किया। क्योंकि जो सार्वभौमिक अद्वितीय

सत्ता है, उसका विभाजन नहीं हो सकता। प्राचीन टीकाकार आनंद गिरि ने इस शब्द का प्रतिपादन 'स्वेच्छा निर्मितेन मायामयेन स्वरूपिणा' के रूप में किया है अर्थात् अपने ही संकल्प द्वारा रचित शरीर में प्रवेश किया, जब कि विश्व को इसी भ्रम में रखा कि यह मानव शरीर तत्पश्चात् वह अविनाशी दिव्य सिद्धांत जो इस वसुधा पर शांति और सम्पन्नता लाने के लिए कृत-संकल्प था, देवकी के मन में समाहित हुआ ठीक उसी प्रकार जैसे चन्द्रमा पूर्वाकाश में अवस्थित होता है अथवा जैसे कोई शिष्य अपने गुरु से कोई प्रदीप्त मंत्र ग्रहण करता है।

माता और पिता दोनों के 'मन' पर जो बल दिया गया है, वह इस बात की सूचना है कि अवतार का आगमन अभौतिक रूप में होता है। जननी तो केवल उस उद्घटनात्मक पात्र की भूमिका निभाती है, जिसमें ब्रह्म अपने, सूक्ष्म स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है। उदाहरणार्थ ऋषि विश्वामित्र राम को 'कौशल्या के सुपुत्र' कह कर सम्बोधित करते हैं, क्योंकि कौशल्या के गर्भ में स्थित होकर ही शब्द मनुष्य रूप धारण करता है।

यद्यपि श्री सत्य साई बाबा ने यही कहा है और प्रकट किया है कि ब्रह्म ने स्वेच्छा से जितने भी नाम और रूप धारण किये हैं, वे उन सभी के प्रतीक है। किन्तु एक अवसर पर अपनी एक क्रीड़ामय, किन्तु अति सार्थक मुद्रा में उन्होंने कहा कि "अच्छा इस व्यक्ति को कैमरे से मेरा चित्र उतारने दो। उसमें जो भी चित्र आएगा, वही मेरी यथार्थता है।" जब फोटो उतारा गया तो उसमें श्री सत्य साई बाबा का चित्र न उतर कर दत्तात्रेय भगवान का

चित्र था जो एक ही शरीर में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की त्रयी के प्रतीक हैं। प्राचीन काल में अत्रि ऋषि तथा उनकी पत्नी महासती अनुसूया ने इन तीनों स्वरूपों-ब्रह्मा, विष्णु और महेश को प्रसन्न करने के लिए इतनी कठोर तपस्या की थी कि उन्होंने यह वरदान दिया कि उनके तीन मस्तकों वाला एक पुत्र उत्पन्न होगा और उसके माता-पिता होने के नाते समस्त सृष्टि में उनका यश फैलेगा। दत्तात्रेय का अर्थ है 'अत्रि को प्रदत्त'...अर्थात् जो अत्रि मुनि को दिया गया। वे अनुसूया-पुत्र के नाम से भी प्रख्यात हैं, जिन्होंने अनुसूया को सर्वनाश से बचाया।

भगवान बुद्ध का अवतार भी ऐसा ही अलौकिक था। निम्न पंक्तियाँ एड्विन ऑर्नल्ड द्वारा लिखित 'लाइट ऑफ एशिया' से उद्धृत की जा रही हैं, "देवताओं ने उन लक्षणों को पहचान लिया और कहा, 'बुद्ध अब फिर से पृथ्वी के उद्धार के लिए अवतार लेंगे।' हाँ, बुद्ध ने कहा, 'अब मैं विश्व कल्याण के लिए जाता हूँ। हिमालय पर्वत की हिमाच्छादित दक्षिणी गिरिमालाओं के मध्य जहाँ सज्जन लोग निवास करते हैं और जहां एक न्यायप्रिय राजा का शासन है उन शाक्यवंशी क्षत्रियों के कुल में मैं जन्म लूँगा।' उस रात जब महाराजा शुद्धोधन की पत्नी महामाया उनके समीप निद्रा में मग्न थीं, उन्होंने एक विचित्र स्वप्न देखा। उन्होंने देखा कि स्वर्ग से एक षट्कोणीय जगमगाता हुआ नक्षत्र, जिसका रंग हल्के गुलाबी मोती की तरह था और जिसका प्रतीक छः दाँतों वाला कामधेनु के दूध के समान सफेद एक हाथी था, आकाश के मध्य होता हुआ तेजी से गुजरा और दाहिनी ओर उनके गर्भ में समा गया। माँ के गर्भ-स्थल के एक कोने

में बुद्ध ने स्वयं अपने शरीर की रचना की और इस प्रकार शुद्धोधन को पिता कहलाने का गौरव दिया। माता महामाया दिन प्रति दिन अपने गर्भ रूपी आकाश में स्थित उस सिद्धार्थ रूपी चन्द्रमा का ध्यान करने लगीं, जब तक कि पृथ्वी पर अवतरित होकर वे पालने में सब का मन न मोहने लगे।"

ईसामसीह की माता मेरी को भी इसी प्रकार आशीर्वाद प्राप्त हुआ था। परमात्मा ने जिबील नाम देवदूत को कुमारी मरियम (मेरी) के पास भेजा, जिनकी सगाई डेविड वंश में उत्पन्न यूसुफ नामक व्यक्ति से हो चुकी थी। इस देवदूत ने मरियम से कहा, "मरियम! तुम किसी प्रकार का भय न करो। तुमने ईश्वर की कृपा प्राप्त कर ली है। देखो, तुम गर्भाधान करोगी और एक ऐसे पुत्र को जन्म दोगी, जिसका नाम ईशु होगा।" इस पर मरियम ने देवदूत से कहा, "पर यह कैसे संभव होगा? मैं तो किसी भी पुरुष को नहीं जानती।" तब देवदूत ने उसे उत्तर दिया, "स्वयं पवित्र आत्मा (Holy Ghost) तुमको अभिभूत करेगी। उस सर्वोच्च सत्ता की परम शक्ति तुममें प्रवेश करेगी। इसलिए तुम जिस पवित्र बालक को जन्म दोगी, व 'ईश्वरपुत्र' के नाम से प्रख्यात होगा और जैसा कि संसार जानता है, ऐसा ही हुआ।"

श्री रामकृष्ण परमहंस के आगमन की कहानी भी सुनो। उन्होंने अपने संशय में पड़े हुए शिष्य नरेन्द्र के सन्देह का निवारण दिव्य दर्शन देकर किया कि जिस परमसत्ता ने राम और कृष्ण के रूप में मानव जन्म लिया

था, वहीं सत्ता 'रामकृष्ण' के रूप में प्रकट हुई है। उनके सम्बन्ध में भी ईश्वर ने केवल मातृत्व का ही चयन किया था। पिता तो कल्पित ही समझिये साठ वर्ष की आयु में खुदीराम भट्टाचार्य सौ मील पैदल चलकर पितरों का श्राद्ध करने के लिए गया आये। धर्म ग्रंथों के अनुसार गया में किए हुए श्राद्ध और पितृ पूजा का महत्व अत्यधिक है, और वह अत्यन्त फलदायी है। श्राद्ध कर्म के पश्चात् गदाधर मंदिर में दर्शनों के लिए गए। वहाँ उन्हें आकाशवाणी हुई कि स्वयं भगवान नारायण उनके यहाँ पुत्र रूप में जन्म लेकर उन्हें अवतार का पिता कहलाने का गौरव प्रदान करेंगे। खुदीराम ने अत्यन्त विनम्रता से प्रार्थना की कि उनका आवास और हृदय दोनों ही अति छोटा है और उस विश्व-सत्ता को कैसे धारण कर सकेगा। किन्तु भगवान ने अपने वचन वापस नहीं लिए खुदीराम घर पहुंचे। वे प्रसन्नचित्त और चकित थे; किन्तु इस रहस्य का उद्घाटन करने में डरते थे। फलस्वरूप, इसके पूर्व कि वे अपने मन के संशय पर काबू पा सकें, उनकी पत्नी चन्द्रमणि देवी ने अपना रहस्य अपने पति पर प्रकट किया। उन्होंने कहा कि “जब मैं तुम्हारी अनुपस्थिति में देव-दर्शन के लिए मंदिर गई थी, एक असाधारण प्रकार की दिव्य ज्योति ने मुझ में प्रवेश किया। वह प्रकाश-धारा मेरे अंग-अंग में प्रवाहित होने लगी। उसने मुझे अभिभूत कर लिया और मेरे कण-कण में व्याप्त हो गई। इसके बाद सिमट कर वह एक सुन्दर ज्योति के रूप में बदल गई और अब निरन्तर मुझ में व्याप्त है। तब से प्रतिक्षण मुझे उस कोमल, मनोहर प्रकाश की अनुभूति होती रहती है, और इस क्षण जब मैं तुमसे बात कर रहीं हूँ, वह और भी अधिक

स्पष्ट है।" खुदीराम आश्चर्य चकित रह गए; क्योंकि वे अब एक वृद्ध पुरुष थे और उनकी पत्नी भी उनसे केवल दस वर्ष छोटी थीं। किन्तु जो आकाशवाणी उन्होंने सुनी थी, वह इस समय भी उनके कानों में गूंज रही थी और उनके हृदय में विराजमान थी। वे बोले, "मेरी बात सुनो। यह बात किसी से मत कहना। स्वयं प्रभु ने मेरे माध्यम से तुम्हें यह आज्ञा प्रदान की है। स्वयं प्रभु ने यह संकल्प किया है कि वे इस धूलभरे आंगन में खेलें और हमारी विषमताओं और भोंडेपन को सहन करें। निश्चय ही कृष्ण के समान वे अपनी लीलाओं के बीच बड़े होकर समग्र विश्व को या तो वंशी के द्वारा या दण्ड द्वारा आकर्षित करेंगे।"

स्वामी ने अनेक बार यह स्पष्ट किया है कि साई अवतार पृथ्वी पर केवल इसलिए आया है; क्योंकि सभी देशों के साधु-संतों ने उनके अवतरण की प्रार्थना की थी। "मैंने अपनी माँ को चुना, जिन्हें दूध पिलाते समय मेरी निकटता का अनुभव होना था। अवतार को ही चयन की यह स्वतंत्रता होती है। दूसरों के विषय में तो उनके कर्म ही यह निर्णय करते हैं। कि वे कब, कहाँ और किस परिवार में जन्म लेंगे।" अवतार की कृपा की पहली पात्र माँ ही होती है। पिता जो अवतार की माँ की रक्षा और पालन पोषण करता है, वह भी ख्याति प्राप्त करता है, इस अर्थ में कि लोग उसे अवतार का जनक कहते हैं। सन् 1963 में जब पेड्डा वेंकपा राजू ने इस पार्थिव शरीर का त्याग किया, स्वामी ने एक छोटा-सा संदेश उन लोगों के लिए छोड़ा जो 'पिता' के न रहने पर शोक-मग्न थे। वह 'सनातन सारथी' में प्रकाशित हुआ था। "ठीक है, तुम कहते हो कि वे एक महान् आत्मा थे;

क्योंकि वे अपनी पूर्णायु में बिना बीमार हुए अपनी पूर्ण चेतना और सजग स्मृति के साथ स्वर्ग को सिधारे। किन्तु उन्हें केवल इतना ही आशीर्वाद प्राप्त न था। वे तो केवल वाह्य लक्षण और संकेत मात्र हैं। उस दिन जब संसार ने अवतार के पिता रूप में उन्हें जाना, उस दिन ही जब इस विश्वरूप ने उन्हें अपना पिता कहलाने का सुअवसर प्रदान किया, उस दिन ही उन्हें ईश्वर की पूर्ण कृपा प्राप्त हो गई थी और उनका जीवन पावन हो गया था। सम्पूर्ण युग में ऐसा सौभाग्य केवल किसी एक बिरले को ही मिलता है। वह दूसरों की पहुँच के परे है।"

रामायण में राम अपने को मानव कहते हैं और अपने को दशरथपुत्र बतलाते हैं; क्योंकि उन्हें मर्यादा का पालन तो करना ही था। वे अपने पिता की आज्ञा मानते हैं और वनवास स्वीकार करते हैं; ताकि मानव-मूल्यों की मर्यादा बनी रहे। फिर भी वे काम-वासना से ग्रस्त और दृढ़ इच्छा शक्ति से रहित दशरथ के लिए शोक तो करते ही हैं। वे लक्ष्मण से कहते हैं, "काम-वासना से त्रस्त और अपने को महारानी कैकेयी के रूप-जाल में फंसाकर वे असहाय और वृद्ध महाराज बिना मेरी सहायता के कैसे रह सकेंगे? क्या कोई मूर्ख और अज्ञानी व्यक्ति भी एक सुन्दर स्त्री के मोहपाश में फंसकर एक ऐसे पुत्र का त्याग कर सकेगा जो हृदय से उसका आदर करता है?" किन्तु अपनी माँ, कौशल्या, का विचार आते ही उनका हृदय करुणा से भर जाता है: "इतने दिनों तक मुझे दूध पिलाकर पालन-पोषण कर जब मेरी माँ कौशल्या का सुख का क्षण उपस्थित हुआ, खेद है कि उसी क्षण मुझे उनसे छीन लिया गया।" अवतार की जननी के लिए

कृतज्ञता और करुणा ही है। उसकी भूमिका अद्वितीय है, अन्तरंग है और वैयक्तिक है।

जब कोई अवतार अपने माता-पिता का चयन करता है, स्वाभाविक रूप से वह अपने लिए वह स्थान भी चुन लेता है, जहाँ वह जन्म लेगा और इस प्रकार वह भी निरंतर प्रसिद्धि का केन्द्र बन जाता है। यहाँ मैं आप के समक्ष अपनी एक कविता उद्धृत कर रहा हूँ जो मैने सन् 1959 में साई-अवतार की उपस्थिति में पढ़ी थी—

"तीन और तीस वर्ष पहले की बात है,
स्वामी ने कहा- 'मैं जन्म लूंगा निश्चय ही मानव के रूप में -
सेवा मनु-पुत्रों की करूंगा सहज ही,
चाहे वे ज्ञानी हों अथवा अज्ञानी हों।'
देवों ने प्रश्न किया -
'भाग्यशाली गोकुल कौन?'
प्रभु बोले स्मित से, 'करो अनुमान,
भला देखें तुम जानोगे;
इतना बता दें, है स्थल वह भारत में
और युगों पहले उसका नाम भी गोकुल था।
आज छोटा गाँव है,
कुछ झोपड़ियों का;
जहाँ देखो वहीं मात्र नागों की बाँबी है।

नगर नहीं है वह, और न वन-प्रदेश।
कोई कुटी भी नहीं,
न ही कोई प्रसाद;
कारागार कोई नहीं, कोई नहीं दुर्ग है।
और न निवासी ही,
वहाँ के गोपाल है।
किंचित् परिवर्तन तो होना ही चाहिए।
गाँव को सजाती हुई
नदी एक बहती है,
उस युग की यमुना कहो
आज, पर अपरिचित।
विस्तृत रेतीले तट उसकी तलहटी में
जहाँ मैं मन चाही क्रीड़ा कर सकता हूँ।
और फिर चारों ओर
उसके गिरिमाला है
जिसका रंग दिवा-निशा बदला ही करता है
श्याम, फिर भूरा, फिर नीलिमा लिए हुए।
देव पर निश्चय न कर सके स्थल;
बोले 'प्रभु ! इतना पर्याप्त नहीं;
थोड़े से चिन्ह-पाँच छः ही सही दीजिए।'
'मेघों के छुट-पुट से टुकड़ों से शोभित नभ',

हरिक के तोरण-सा
कभी दीख पड़ता है,
और कभी लगता है प्रकृति ने स्वयं ही
टांगी हों पंखों की झंडियाँ गगन में।
थकी हुई धरती पर
धान और गन्ने की कंद और मूलों की
एक नई छवि सी है
गहरा हरित परिधान मानों ओढ़कर
खड़ी है वसुधा किसी के दिव्य स्वागत में।
गोधूलि बेला में थकी हुई,
गो-पंक्ति भारी-पग चलती है;

दूध से भरे हैं थन,
माँ का वात्सल्य मानों उमड़-सा रहा हो
अपनाने को भूखे वत्स।
मानव-दृष्टि-सीमा से परे-बहुत परे-कहीं,
नभ के अंतस्तल में गरुड़-देव धूम रहे।
और इधर वसुधा पर
भय से आशंकित-सी भेड़ और बकरियाँ
देखकर श्रृंगालों को
मृत्यु के भय से मिमियाने लगती हैं

और वे श्रृंगाल सदा अवसर की ताक में आक्रमण करते हैं, जाने-अनजाने में और उधर बैलों की जोड़ी हाँफ जाती है

गहरे कुओं से पानी खींचकर ढोते हुए ।
कानों में इसी समय पड़ती है।

गायन ध्वनि, गाँव के गोपालों की -
तन्मय होकर जो गाते हैं लोकगीत
कभी रामायण और कभी महाभारत पर।'

सुनते ही इतना सब देव उठ खड़े हुए, 'इतना अलभ है," गोकुल बनेगा फिर ग्राम पुट्टापर्ति का, प्रभु बोले हंसकर 'ठीक पहचाना है।”

जब कभी हम विचार करते हैं कि कैसे भगवान ने पुट्टापर्ति गाँव के छोटे से घर को अपना जन्म स्थान चुना, तो हमें श्रीमद् भागवत् के तृतीय स्कंध के 24 वें अध्याय के 28-34 श्लोक स्मरण हो आते हैं। उसमें कपिल अवतार के जनक अपने घर और गाँव की प्रशंसा में आत्मविभोर हो जाते हैं।

"अनेक जीवनों की आध्यात्मिक साधना, तप और परमात्मा के मौन ध्यान के उपरान्त कहीं जाकर भगवान के चरण कमलों का कुछ क्षणों के लिए दर्शन हो पाता है। उसके लिए भक्तों और जिज्ञासुओं की लालसा

निरन्तर बनी ही रहती है। किन्तु प्रभु की लीला देखो। भक्तों के गुणों में वृद्धि करने वाले परम कृपालु भगवान स्वयं ही इस अकिंचन की कुटिया को पवित्र करने के लिए अवतरित हुए हैं। “गृहेषु जाते ग्राम्यानाम्।”

मानव इतिहास में अयोध्या और वृन्दावन के समान ही रत्नाकर राजू के परिवार और पुट्टापर्ती गांव का नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा; क्योंकि इसी स्थल को भगवान ने अपने जन्म के लिए चुना।

दिन था 23 मई और वर्ष 1940 ई० । संदेहों से अभिभूत और होने वाली घटनाओं से भ्रमित 'पिता' अपने को न रोक पाये। उनका पुत्र 'सत्य' केवल चौदह वर्ष का था, पर बातें वेदान्त की करता था। वह ऐसे-ऐसे गीतों की रचना करता था कि वयस्क और बड़े-बूढ़े उनका उच्चारण भी कठिनाई से कर पाते थे। उसने हानिकारक रूढ़ियों को स्वयं तोड़ा और दूसरों को भी प्रेरित किया। अपनी रिक्त हथेली से तरह-तरह की मिठाइयाँ उत्पन्न कर उसने अपने साथियों में बाँटी और इस प्रकार एक अच्छी-खासी भीड़ उसके चारों ओर एकत्र होने लगी। पिता ने निश्चय किया, अब बहुत हो चुका। समय आ गया है कि इस लड़के को गुरु और भगवान बनकर उनसे खिलवाड़ करने से रोकना चाहिए। वे हाथ में एक मोटा सोटा लेकर गाँव वालों के बीच से जाते हुए अपने उस चमत्कारी बालक के सामने आकर अत्यन्त क्रोध में भर कर खड़े हुए और गरज कर बोले, “मुझे ठीक-ठीक बताओ तुम कौन हो? क्या तुम कोई प्रेतात्मा हो, कोई पागल हो, कोई धूर्त हो, या कोई भगवान हो ?”

साठ हृदयों की धड़कनें बढ़ गई। वे उत्सुकता से उत्तर की प्रतीक्षा में थे। वातावरण तनावपूर्ण था। “मैं साई बाबा हूँ। मैं तुम सब को भय से मुक्त करने आया हूँ।" लड़के ने उत्तर दिया। उसका स्वर गूँज रहा था। उसके नेत्र चमक रहे थे। वेंकप्पा राजू एक दम सन्नाटे में आ गये और उनके हाथ का डण्डा फर्श पर छूट कर गिर पड़ा। पुत्र फिर से बोला, “तुम्हारे वेंका अवधूत ने यह प्रार्थना की थी कि मैं तुम्हारे घर में जन्म लूँ, और मैं आ गया।”

यह एक अप्रत्याशित सूचना थी पिता चमत्कृत रह गए। किन्तु भगवान् से बाबा वेंका-अवधूत का नाम सुन कर रोमांचित हो गए। उन्होंने एक निश्वास को रोका और लोगों ने उन्हें गिरते-गिरते बचाया। मैं भाग्यशाली था कि आठ वर्ष बाद उनसे लम्बे वार्तालाप के बाद अवधूत उनके निकट सम्बन्ध के विषय में मुझे कुछ जानकारी मिली। श्रद्धा से हाथ जोड़कर कोंडमा राजू ने मुझे उस महान विभूति वेंका अवधूत के विषय में बताया। वे परमानन्द के मूर्तिमान अवतार थे और सद्गुरु के रूप में उनके हृदय में निरंतर विद्यमान थे।

अवधूत का अर्थ है सन्यासी, जो लंगर डालकर एक जगह स्थिर नहीं रहता, वरन् जो समय के प्रवाह में लकड़ी के एक तख्ते की तरह इधर-उधर तैरता रहता है। अवधूत में 'अ' का अर्थ उपनिषदों के अनुसार है वह जो 'अक्षर' में सदैव के लिए लीन हो गया है। 'व' का अर्थ है 'वरेण्य' अर्थात् मनुष्यों में श्रेष्ठ और 'धूत' का अर्थ है 'धृत संसार बंधनात' अर्थात् वह

जिसने इस मोहक संसार से बांधने वाली कड़ियों को तोड़ दिया है। कोडमा राजू को वेंका अवधूत को भोजन कराने का तथा मानव, प्रकृति और ईश्वर सम्बन्धी उनकी सूक्तियों को सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था। "वह स्वयं इतने प्रसन्न-चित्त रहते थे कि कोई भी व्यक्ति उनकी उपस्थिति में उदास नहीं रह सकता था। जब वह रास्ते से निकलते थे, तो किसी घर का दरवाजा उनके लिए बन्द नहीं रहता था। हर व्यक्ति उन्हें आमंत्रित करता था। सब स्थानों पर लोग उन्हें अपना सम्बन्धी बतलाते थे, यद्यपि वे किसी भी व्यक्ति के साथ कोई ऐसा सम्बन्ध या बंधन नहीं रखते थे। यदि कोई उनकी उपस्थिति में भूखा होता था तो उन्हें भी भूख लगती थी। यदि कोई उन्हें वस्त्र पहना देता था, तो वे उन्हें तब तक पहने रहते थे, जब तक कि वे स्वयं ही न गिर जायें। वे अपने शरीर को इस प्रकार लिए फिरते थे, मानो वह झीना वस्त्र हो । वर्षा ही उसे धोती थी, सूर्य ही उसे सुखाता था, खड़े या बैठे हुए किसी भी स्थिति में वे सो जाते थे और जब चाहते जाग जाते थे। उनके स्वर में कभी भर्राहट न थी और उनके नेत्र सदैव चमका करते थे। जब वे किसी के सिर पर अपना हाथ रख देने थे, तो वह स्पर्श स्वर्ग के सुख का आभास देता था। वे मानो पृथ्वी से स्वर्ग को जाने वाले पवन का झोका, एक मेघ अथवा पक्षी की उड़ान थे।"

कोंडमा राजू ने कहा, "यह किसी ने नहीं जाना कि वे किधर से आए और किधर चले गए। कोई भी व्यक्ति इसका कभी अनुमान न लगा सका कि वे कितने वर्षों से यहाँ, वहाँ, सर्वत्र हैं। उनका पार्थिव शरीर आंध्र प्रदेश की सीमा से कुछ मील की दूरी पर कर्नाटक राज्य में पावागढ़ ताल्लुके के

हुसैनपुरा नामक स्थान में समाधिस्थ है। उस क्षेत्र के लोगों ने मुझे बताया कि उनके पूर्वजों का ऐसा विश्वास था कि अवधूत महाराष्ट्र प्रदेश से आंध्र में आये थे। कुछ ऐसे भी है जो इस बात पर बल देते हैं कि वे ही वेंकुशा थे. जिनकी पैतृक देखरेख में शिरडी के साई बाबा ने अपना बाल्यकाल बिताया था।"

कोंडमा राजू ने मेरे दोनों हाथ पकड़कर अपने पास खींचा और अत्यन्त आत्मीयता से मुझसे बोले, "एक दोपहरी को जब मैं बरगद के वृक्ष के नीचे अवधूत के पास बैठा था, उन्होंने मुझसे कहा, 'भू देवी रो रही है। अतः नारायण आ रहे हैं। तुम उन्हें देख सकते हो। वे तुम्हें अत्यन्त प्रेम करेंगे।' उन्होंने ये शब्द चुपके से मेरे कान में कहे और मुझसे यह प्रतिज्ञा ली कि मैं उन शब्दों पर विश्वास करूं। मैंने कभी स्वप्न में भी यह न सोचा था कि मैं कभी भी नारायण को मनुष्य के रूप में देख सकूँगा—और वह भी अपने घर में स्वयं अपनी गोद में।" वे जब बोल रहे थे, प्रसन्नता और हर्ष से उनके नेत्र अधखुले थे। कोंडमा राजू को यह भली भाँति ज्ञात था कि उनके गुरु उन अनेक पहुंची हुई महान आत्माओं में से एक थे जो मानव जाति के उद्धार के लिए भगवान के पृथ्वी पर अवतार लेने की सतत प्रार्थना करती थी।

'सत्य' ने, जिन्हें वे अपना पौत्र कहते थे, कितनी ही बार अपनी इस अद्वितीय सत्ता की घोषणा की थी। 29 वर्ष की आयु में सन् 1955 में महाशिवरात्रि के अवसर पर सहस्रों भक्तों के सामने बोलते हुए उन्होंने यह

रहस्य प्रकट किया, "इस अवतार में ईश्वर द्वारा दुष्टों का नाश नहीं किया जाएगा, बल्कि उन्हें सुधारा और शिक्षित किया जाएगा; ताकि वे जिस पथ से भटक गए हैं, लौटकर फिर उसी पर आ सकें। अपने जन्मस्थान पुट्टापर्ति को छोड़कर भगवान अपनी लीलाओं, महिमाओं और उपदेशों के लिए किसी अन्य स्थल को नहीं चुनेंगे। इस वृक्ष का स्थानान्तरण नहीं होगा, यह जहाँ अंकुरित हुआ है, वहीं विकसित होगा और बढ़ेगा।" स्वामी ने यह भी कहा, "इस अवतार की एक विशेषता यह भी होगी कि उसने जिस कुल और परिवार में जन्म लिया है, उसके सदस्यों के साथ उसका कोई सम्बन्ध न रहेगा, न कोई आसक्ति ही होगी। राम और कृष्ण के पिछले अवतारों में प्रभुत्व तथा परिवार और उसके सदस्यों के लिए ही जीवनयापन किया गया है। उसके बीच में ही अवतार हुआ, रहा और जो भी कार्य सम्पादित किए, उनका कुछ न कुछ सम्बन्ध कारण रूप में उन सदस्यों में रहा। किन्तु यह अवतार केवल भक्तों और जिज्ञासुओं, साधुओं और साधकों के लिए है।"

कोंडमा राजू सभी के आदर के पात्र थे। दीन और दुःखी के लिए उनका द्वार सदा खुला रहता था। गाँव के लोग छोटे-छोटे सामान्य कार्यों, जैसे-बैल खरीदना, अथवा फसल की बुवाई, खेत की जुताई और कटाई में भी पहले जाकर उनसे आशीर्वाद लेते थे। जब कभी विवाह सम्बन्ध की बात चलायी जाती थी तो लोग उनसे आशीर्वाद माँगते थे और जब कभी कोई विवाह सम्पन्न होता था तो वे नव-वधू के लिए मंगलसूत्र प्रदान करते थे। उनकी स्मृति असाधारण थी। संस्कृत और तेलुगु भाषा की सैकड़ों कहानियाँ और

दन्तकथाएं उन्हें याद थीं। जितनी भी स्थानों की उन्होंने यात्रा की और जिन साधु-संतों की उन्होंने सेवा की, उनके अगणित संस्मरण उन्हें याद थे।

उन दिनों निजाम हैदराबाद द्वारा शासित कुर्नूल क्षेत्र में कोलिमिकुन्तला नामक एक गाँव था, जो पुट्टापर्ति से 100 मील दूर था। यहाँ के एक कृषक परिवार में भगवान के ईश्वर (शिव) स्वरूप के अनन्य उपासक सुब्बा राजू रहते थे। ईश्वर तो अत्यन्त करुणामय हैं और अपने भक्तों को आशीष ने के लिए सदैव आतुर रहते हैं। सुब्बाराजू के अनुभवों ने उनकी भक्ति और श्रद्धा को इतना दृढ़ बना दिया था कि गाँव में उन्होंने महादेव का एक मंदिर बनवा दिया, जहाँ पर प्रति दिन शिवलिंग की पूजा होती थी। उनके एक कन्या उत्पन्न हुई। इसका नाम उन्होंने ईश्वराम्मा रखा इस प्रकार 'ईश्वर' शब्द में 'अम्मा' प्रत्यय लगाकर उसे स्त्रीलिंग बना दिया गया। इस प्रकार अर्थ की दृष्टि से वे ईश्वर की अम्मा अथवा 'जननी' स्वतः बन गई। यह उसकी भावी कीर्ति का संकेत था। ईश्वराम्मा की माता पर भाग्य मुस्करा उठा। अपने एक परिचित के घर में वेंकप्पा राजू के पिता की दृष्टि उस नन्हीं सी दिव्य रूप वाली कन्या पर पड़ी और उन्होंने सुब्बा राजू से उसे अपने पुत्र के साथ पाणिग्रहण करके वधू के रूप में मांगा। सुब्बा राजू हर्ष से विभोर हो उठे। सगाई तुरन्त तय हो गयी। वस्तुतः स्वयं ईश्वर ने ही कोंडमा राजू को सुब्बा राजू के घर जाने के लिए प्रेरित किया, ताकि उस कन्या को आगे चलकर ईश्वर को जन्म देकर उसकी माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त हो।

कोंडमा राजू श्री शैलम् की तीर्थयात्रा पर निकले थे। यहाँ से उन्होंने सोचा कि अपने मूल निवास स्थान पर रहने वाले अन्य सम्बन्धियों से भी मिलते चलें। अपने साथ उन्होंने अपने बड़े पुत्र वेंकप्पा राजू को भी ले लिया।

उन्होंने नंदियाल और महानदी नगरों को पार किया, जहां शिव के वाहन नंदी का प्रसिद्ध मंदिर है और उसकी पूजा की। इसके बाद वे डाकुओं से भरे हुए जंगलों से होकर अपने गंतव्य स्थान पर पहुंचे। उनके सम्बन्धियों ने प्रसन्न होकर उनका स्वागत किया, क्योंकि कुछ ही दिन पहले डाकुओं ने वहाँ से होकर जाने वाले एक दल के छः सदस्यों को मार डाला था। कोंडमा राजू को शीघ्र ही भय के उन बादलों का आभास हो गया, जिनकी छाया में उनके वंशधर और सम्बन्धी रहते थे। नव-जीवन से भी उनका कटाव था और भूमि और जलवायु भी शुष्क था। उन्होंने सुब्बा राजू को वहाँ की जमीन और घर बेचकर चित्रावती के किनारे चलकर बसने के लिए कहा। वहाँ की भूमि खेती के योग्य थी और बुक्कापटनम् के तालाब से सिंचाई के लिए पानी भी मिल जाता था। किन्तु उन्होंने देखा कि सुब्बा राजू संदेह और दुविधा में पड़े हैं। तब उन्होंने ऐसा प्रस्ताव रखा, जिससे सारी समस्या हल हो गयी। उन्होंने सुब्बा राजू की कन्या से अपने पुत्र पेंड्डा वेंकप्पा के विवाह का आश्वासन दिया। यह तो दैवी योजना थी। सुब्बा राजू चित्रावती तट के पास पहुंचे और पुट्टापर्ती के ठीक उस पार कर्नाटनाग पल्ली में बस गए। जैसा ईश्वर को साक्षी देकर कहा गया था, शुभ विवाह

भी हो गया। कन्या मात्र चौदह वर्ष की थी। वह एक सूर्य की किरण के समान राजू परिवार में आई। सौंदर्य तो गुणरूपी वृक्ष का एक पुष्प है। नव-वधू में वह प्रचुर मात्रा में था।

---

2. आकाश और चन्द्रमा

कोंडमा राजू के परिवार में नई वधू को न केवल अपने सास-ससुर, बल्कि उनके दो पुत्र, कुछ विधवा चाचियाँ, सासें, चचिया ससुर, चचेरे देवर, जेठ तथा उनके बच्चे भी मिले। निश्चय ही उनका घर तो छोटा था, पर हृदय विशाल था। सयुंक्त परिवार में बड़ी बहू कहलाने का भार वहन करने के लिए ईश्वराम्मा अधिक कोमल और भोली थी। फिर भी जैसा उन्होंने बाद में मुझसे कहा, यद्यपि दिन भर गृहस्थी की चक्की में पिसकर वह थक तो जाती थीं, किन्तु सास-ससुर से असीम प्यार पाकर उनकी थकान दूर हो जाती थी।

उनकी सास ईश्वर से डरने वाली एक श्रद्धालु महिला थीं, जिन्हें संत समान कोंडमा राजू ने यह सिखा दिया था कि कभी न तो किसी का हृदय दुखाओ और न अपमान करो। उनकी देखरेख में जो महिलायें थीं, घर गृहस्थी के काम में यदि उनसे कुछ भूल-चूंक हो भी जाती थी, तो उन पर उनका ध्यान कम ही जाता था; क्योंकि उनका अधिकांश समय पूजा और तीर्थाटन में ही निकल जाता था। भगवान विष्णु उनके इष्टदेव थे। सत्यनारायण भगवान की पूजा विधि और कथा वार्त्ता उस क्षेत्र में अत्यन्त लोकप्रिय थी। वह महाराष्ट्र में, जहाँ शिरडी है; फैल चुकी, तथा वहाँ से आंध्र, उड़ीसा तथा अन्य राज्यों तक पहुँच गई थी। नारायण का आविर्भाव 'सत्यनारायण' के रूप में हुआ और उनकी पूजा और आराधना निश्चय ही मनोवांछित फल देती है। यह बात सर्व विदित थी। ईश्वराम्मा की सास लक्षाम्मा ने एक ब्राह्मण पुजारी के घर में जाकर सत्यनारायण की कथा सुनी। वह पुजारी गाँव वालों का परम्परागत ज्योतिषी और पुरोहित भी था। लक्षाम्मा को उसके द्वारा विधि-विधान और श्रद्धा से की हुई सत्यनारायण की पूजा अन्य किसी भी पूजा से अधिक प्रिय थी। इस कथा का फल भक्तों को किस प्रकार मिला, इससे सम्बन्धित कहानियाँ वह बड़ी रुचि से वर्णन करता था और उसकी अवहेलना का दुष्परिणाम भी भयंकर होता था, यह भी बताता था। लक्षाम्मा ने निश्चय किया कि वे स्वयं भी सत्यनारायण का व्रत रखखेंगी और जब भी पुजारी जी उसकी कथा कहेंगे, उसमें भाग लेंगी। यह बात जानने योग्य है कि आज भी शिरडी के साई मंदिर में यह कथा धूम धाम और भक्ति भाव से की जाती है। सत्य

नारायण ही भगवान है, जो भक्तों के द्वारा अर्पित सब सामग्रियों में केवल 'सत्य' को ही प्रधानता देते हैं।

ईश्वराम्मा भी भगवान सत्यनारायण की बड़ी भक्त थीं। उन्हें भी गांव की महिलाओं से और रत्नाकर परिवार भी भूमि पर खेती करने वाले श्रमिकों से अपार आदर और श्रद्धा प्राप्त हुई। समान वय की महिलाओं के साथ वे प्रति शनिवार को हनुमान मंदिर जाती थी। गांव के चारों ओर जो परकोटा है, उसके रक्षक के रूप में हनुमान की मूर्ति की स्थापना वहाँ शताब्दियों पहले हुई थी। सोमवार को वे शिव मंदिर जाती थी और जब भी संभव होता था. वे वेणुगोपाला स्वामी मंदिर भी जाती थीं। वेंका अवधूत ने कोंडमा राज को यह बतलाया था कि जिस पत्थर की वहां पूजा होती है, उसको पौराणिक उत्पत्ति क्या है? आगे चलकर श्री सत्य साई बाबा ने भी उन कथाओं की प्रामाणिकता पर प्रकाश डाला। बाबा ने गांव वालों का ध्यान चट्टान पर खिंची हुई उन रेखाओं की ओर दिया जो भगवान कृष्ण का वंशी-वादन करते हुए चित्र उपस्थित करती थीं और जिसे सुनकर समस्त विश्व अपने को भूल जाता था।

विवाह के पश्चात् ईश्वराम्मा ने रत्नाकर परिवार में प्रवेश किया। संस्कृत में रत्नाकर का अर्थ है- रत्नों का घर-ऐसा नाम जो अंधकार से घिरे हुए विश्व को प्रकाशित करने वाले पूर्ण आभामय रत्न के उद्भव से सार्थक हो गया। 'राजू' क्षत्रिय जाति का एक नाम है। क्षत्रियों की श्रेष्ठता केवल युद्ध में प्राप्त विजयों पर ही निर्भर नहीं है, बल्कि जो पंच-रिपु (काम, क्रोध, मद, मोह,

लोभ) हमारे आंतरिक शत्रु हैं, उन पर विजय प्राप्त करने में रही है। उपनिषदों में अनेक ऐसे राजाओं का उल्लेख है, जिन्होंने जीवात्मा, परमात्मा और ब्रह्माण्ड के सनातन सत्य को प्राप्त कर लिया था और जिसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए अनेक साधक और जिज्ञासु लालायित रहते थे।

राजू कुल ने युद्धोत्सुक क्षत्रियों की भूमिका निभाना बहुत पहले ही बंद कर दिया था। अब वे नाटक, कविता और शिक्षण द्वारा हमारे धार्मिक साहित्य को जनसाधारण तक पहुंचाने और उसे लोकप्रिय बनाने के महत्वपूर्ण और लोक कल्याणकारी कार्य में संलग्न थे। सारे दिन रत्नाकर राजुओं का घर ऐसी गतिविधियों का केन्द्र रहता था। परिवार के पुरुष नाटक लिखने और उनका अभ्यास करने कराने में कविताओं को संगीत में बाँधने में, और नाना प्रकार के वाद्य यंत्र बजाना सीखने में व्यस्त रहते थे। उसकी स्त्रियाँ धान कूटना, भूसी उड़ाना, कपड़े धोना, रसोई बनाना, दूध दुहना तथा मथ कर दही, मक्खन आदि बनाने के कभी न समाप्त होने वाले गृहस्थी के कामों में लगी रहती थीं। उस बड़े परिवार के सभी सदस्यों को समय पर भोजन देना और उनकी देख भाल उनका काम था। और उन सबके ऊपर घर के मुखिया के रूप में कोंडमा राजू थे, जो गाँव के छोटे-बड़े सभी के संरक्षक और सहारे, मित्र और पथ-प्रदर्शक थे, और जिनका आशीर्वाद और परामर्श लेने के लिए आसपास के गाँवों से भी लोग आते रहते थे।

विवाह के दो वर्षों के अन्दर ही अपनी सास को प्रसन्नता देकर ईश्वराम्मा गर्भवती हुई। उनकी पहली सन्तान एक पुत्र था। उसके कुछ वर्षो के बाद एक कन्या हुई, तत्पश्चात् एक और कन्या हुई। राजू परिवार आनन्द से फूला न समाता था, क्योंकि उनका घर हर समय संगीत, हँसी और प्रार्थनाओं से गूँजा करता था। पर इसके पीछे-पीछे दुःख ही छाया भी आयी। एक के बाद एक ईश्वराम्मा के चार गर्भ नष्ट हो गये। बड़े-बूढ़ों ने सोचा, निश्चय ही किसी ने जादू-टोना किया है। उन्होंने झोड़-फूंक करने वाले ओझाओं से सलाह ली। बहुत से तावीज पहनाये गये। स्थानीय मंदिरों तथा अन्य पवित्र स्थानों जैसे कादिरी के देवताओं को प्रसन्न करने वाले अनुष्ठान किये गये। जब ईश्वराम्मा के आठवां गर्भ हुआ तो उनकी सास ने अनेक सत्यनारायण की पूजाओं का व्रत लिया, ताकि उन्हें एक पौत्र प्राप्त हो । कृष्ण भी अपने माता-पिता के आठवें पुत्र थे।

वर्षो बाद एक दिन स्वामी अपने भक्तों से घिरे बैठे थे, कि एकाएक कुछ व्यवधान हुआ। पौराणिक ज्ञान में पारंगत एक विद्वान ने जिज्ञासावश एक प्रश्न किया, “स्वामी! आपका जन्म एक प्रवेश था या प्रसव ?" उस आनन्दमय वातावरण को भंग करने वाले प्रश्न के औचित्य को मै ठीक-ठीक न समझ सका। किन्तु बाबा उसका कारण जानते थे। अपने सम्मुख बैठी हुई ईश्वराम्मा की ओर घूमकर उन्होंने कहा, “तुम्हारी सास द्वारा तुम्हें सावधान किये जाने के बाद उस दिन कुएँ के समीप जो हुआ, वह राम शर्मा को बता दो!" माँ बोली, "मेरी सास को स्वप्न में भगवान सत्य नारायण दिखलाई दिए थे और उन्होंने (मेरी सास ने) मुझे सावधान किया

था, यदि परमात्मा की इच्छा से मुझे कुछ घटित हो, तो मुझे डरना न चाहिए। उस दिन प्रातःकाल जब मैं कुएँ से पानी भर रहीं थी, नीले प्रकाश का एक बहुत बड़ा गोला लुढकता हुआ मेरी ओर आया और मैं बेहोश होकर गिर गई। मुझे ऐसा लगा कि वह धीरे से सरक कर मुझ में समा गया।” स्वामी राम शर्मा की ओर देख कर मुस्कराये, “तुम्हारे प्रश्न का उत्तर सामने हैं। मुझे जन्म नहीं दिया गया। मेरा आविर्भाव प्रवेश था, प्रसव नहीं।"

जिन दिनों ईश्वराम्मा गर्भवती थीं, कोंडमा राजू को स्वप्न में वेंका अवधूत दिखाई पड़ते थे जो उन्हें तैयार रहने का आदेश देते थे। पर किस बात के लिए तैयार रहें, यह स्पष्ट न था। और एक रात अवतार के पिता, पेड्डा वेंकप्पा राजू वाद्य और ताल यंत्रों के अचानक बज उठने से जग गये। यह मधुर संगीत कैसा? अभ्यास-कक्ष में कौन है- देवदूत- गंधर्व- किन्नर ? कोई संगीतज्ञ पूर्वज? उन्होंने जाकर ज्योतिषियों के द्वार खटखटाये। इस असाधारण घटना का अभिप्राय जानने के प्रयत्नों की चर्चा करते हुए उन्होंने मुझे बताया कि उस दिन वे अत्यन्त तनावपूर्ण स्थिति में थे, और जब बुक्कापटनम् के एक ज्योतिषी ने उसका एक संतोषप्रद समाधान किया, तब उनका तनाव कम हुआ। उसने पूछा, “क्या संगीत मधुर और मन को शांति देने वाला है?" पेड्डा वेंकप्पा राजू ने उत्तर दिया, "उसके स्वर और ताल रोमांचक और आहलाददायक थे।" "क्या तुम्हारे परिवार में कोई गर्भवती महिला है?" इसका उत्तर "हाँ" में मिलने पर ज्योतिषी ने भविष्य वाणी की, गर्भ में स्थित शिशु को मोहने के लिए देवता संगीत वाद्य कर रहे थे। जन्म-कुण्डलियों पर लिखी गई एक संस्कृत की पुस्तक

से उन्होंने इस सम्बन्ध में कई श्लोक पढ़े, जिन्हें सुनकर वेंकप्पा राजू चमत्कृत रह गये।

अंत में वह क्षण, जब भगवान ने अवतार के रूप में इसी पृथ्वी पर प्रकट होना निश्चय किया था, आ गया। कार्तिक मास था। शिव पूजन का दिवस सोमवार समाप्त हो रहा था और गणेश के प्रति समर्पित मंगलवार का शुभागमन था। भारतीय समय के अनुसार 23 नवम्बर 1926 के दिन - प्रातः काल 5 बजकर 6 मिनट हुए थे। आर्द्रा नक्षत्र था। 4 बजे प्रातः से ही लक्षाम्मा पुजारी के घर सत्य नारायण पूजन में लगी थीं। जैसे-जैसे जन्म का समय निकट आ रहा था, उन्हें बुलाने के लिए घर से कई बार बुलावा आया था। किन्तु उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि वे सत्यनारायण भगवान का प्रसाद ईश्वराम्मा के लिए ले जाये बिना वापस न जायेंगी और वह उन्हें पूजन के अन्त में ही मिल सकता था। अन्त में वे आयीं और बहू को प्रसाद दिया। बहू ने वह मधुर प्रसाद ग्रहण किया और ठीक इसके बाद पुत्र जन्म हुआ।

कमरे के एक कोने में पहले से ही मोटा गद्दा बिछाकर बिस्तर तैयार कर रखा गया था और अब दादी ने उस पर नवजात शिशु को लिटा दिया। एकाएक उन्होंने देखा कि शिशु के अगल-बगल शैय्या उठ और गिर रही है। उन्होंने तुरन्त शिशु को उठाकर अपने हृदय से लगा लिया। देखा तो पाया कि एक सर्प शैय्या के नीचे लेटा था। निश्चय ही पुट्टापर्ती में सर्प बहुतायत में थे। उन्हें बांबियों में छिपे हुए, दीवारों के किनारे रेंगते हुए,

दराजों से अन्दर घुसते हुए, कभी भी देखा जा सकता था। किन्तु सोने के कमरे में शैय्या के रूप में सर्प का होना निश्चय ही असाधारण था। निश्चय ही वह सर्प आदि शेष था, जिसकी शैय्या पर भगवान विष्णु विश्राम कर रहे थे। यह ईश्वरीय अवतार का पहला चमत्कार था। जब ईश्वराम्मा से इस अलौकिक घटना के विषय में पूछा गया, तो वे बोलीं वे पुत्र के जन्म से प्रसन्नता से इतनी अधिक भर गई थीं कि सर्प वाली घटना से जो उत्तेजना फैल गयी थी, उसकी ओर उनका ध्यान भी नहीं गया।

बालक का नाम सत्यनारायण रक्खा गया। यह नाम मानवता और. दिव्यता के समन्वय का श्रेष्ठ उदाहरण था। यह इस बात का सूचक था कि यह बालक ही नारायण होने के नाते सत्य स्वरूप था। स्वयं ईश्वर ने ही सत्यनारायण के रूप में माता और दादी के मन में प्रवेश कर रत्नाकर राजू के परिवार को दिव्य संगीत और सौरभ से भर दिया। इस प्रकार सत्य के रूप में नारायण का अवतरण मानों पृथ्वी की युगों की ललक की पूर्ति थी।

---

3. बालक

कोंडमा राजू इस बात से अत्यंत प्रसन्न थे कि उनके पौत्र का नाम सत्य नारायण था। भागवत पुराण में वर्णित एक घटना उन्हें स्मरण हो आयी। जब नारायण ने कृष्ण के रूप में जन्म लिया, तो देवत्रयी में प्रथम, ब्रह्मा उनके समक्ष प्रकट हुए और नवजात शिशु को हाथ जोड़ कर यह वंदना की, “सत्यस्य सत्यम् त्रिसत्यम्, सत्यात्मकम् सत्य परम्, सत्यव्रतम्, सत्यनेत्रम, सत्य योनिः" । परिवार के घर के समीप एक छोटी सी कुटिया में कोंडमा राजू रहते थे। ईश्वराम्मा की सास जब उस सुंदर बालक को उठाकर उसके बाबा (प्रपिता) के पास ले जाती थी, तो उन्हें विवश होकर लेना पड़ता था। कोंडमा राजू उसे लेकर अपने उपासना गृह में चले जाते और उसे वहीं लिटा देते। उन्होंने मुझसे कहा, "वह कभी भी मेरे ध्यान और प्रार्थना में विघ्न उपस्थित न करता था। इसके विपरीत उसकी उपस्थिति से ईश्वर की आराधना और ध्यान में मेरा मन और भी अधिक लगता था।"

पास-पड़ोस की स्त्रियां उस मन मोहक शिशु को चारों ओर से घेरे ही रहती थीं। वे घंटों उसे प्यारे-प्यारे नामों से बुलाकर पुचकारती और दुलराती। बहुधा ईश्वराम्मा यह भी भूल जाती थी कि उनमें कुछ स्त्रियाँ ऐसी जातियों की थी, जिनका घर में आना वर्जित था। उन स्नेहमयी माताओं को देख कर वह शिशु अपने हाथ उनकी ओर ऐसे उठा देता था मानों वह कूदकर उनकी गोद में आ जाना चाहता हो। जब तक ईश्वराम्मा उसे उठाकर उनको न दे दें, वह करुण भाव से रोता ही रहता था। अंततः उन्हें अपने मन की सभी शंकाओं को दबाकर उसे दे ही देना पड़ता था। प्रशांति निलयम् के सत्य साई अस्पताल में बीस वर्षो से काम कर रही डा०

जयलक्ष्मी लिखती हैं, "एक बार मैंने ईश्वराम्मा से यह जानना चाहा कि स्वामी जब गोद वाले शिशु थे, तब कितने सुन्दर थे? मेरे पास एक प्रसिद्ध कलाकार द्वारा बनाया हुआ कृष्ण का एक चित्र था, जिसमें उन्हें मक्खन से भरे हुए एक पात्र के पास बैठा और माखन खाते हुए चित्रित किया गया था। मेरे कमरे में टँगे हुए एक बड़े कलेण्डर में यह चित्र था, जिसे काटकर मैंने मढ़वा लिया था। ईश्वराम्मा कुछ देर उस चित्र की ओर देखकर बोली, 'हाँ। उसका मुख चंद्रमा के समान ऐसे ही चमकता था जैसा कि इस चित्र में उसके ऐसे ही काले घुंघराले केश थे। उसके हाथ-पैर सुडौल और सुदृढ़ थे। पर उसकी भौंहें कृष्ण की भौंहों से भिन्न थीं। वे नाक के ऊपर केन्द्र में मिल जाती थीं।' फिर चित्र के कृष्ण को आभूषण पहने हुए देखकर एक गहरी साँस लेकर वे बोली, 'किन्तु हम गरीब थे। हम भला उसे ऐसे आभूषण कहाँ पहना सकते थे जैसे कि कृष्ण पहने हैं। "

कर्णम् की पत्नी सुब्बाम्मा बच्चे को उठाकर अपनी छाती से लगा लेती। बालक प्रसन्नता से खिलखिला पड़ता और वह उसे अपनी विजय समझकर शिशु को अपने साथ ले जाती। राजू और कर्णम् के घरों के बीच में केवल एक घर पड़ता था। कर्णम् जाति से ब्राह्मण थे और परम्परा के अनुसार सभी जातियाँ उनका सम्मान करती थीं। बाप-दादों से ही वे गाँव के मालगुजार भी थे और सरकार की ओर से भूमि सम्बन्धी कागजात रखते तथा लगान की वसूली करते थे। कर्णम् और पटेल (जो खुद भी ब्राह्मण थे और गाँव में न्याय और कानून की व्यवस्था करते थे) गाँव के सबसे प्रभावशाली पदाधिकारी थे। सुब्बाम्मा बूढ़ी हो चली थीं और उनके

अपनी कोई संतान न थी। अतः जब कभी वे 'सत्य' को खिलाना चाहती, ईश्वराम्मा का दयालु हृदय उनसे 'न' नहीं कह सकता था। जिस तत्परता और फुर्ती से सत्य सुब्बाम्मा के घर जाने को सहमत हो जाता, उसे देख कर गाँव की दूसरी स्त्रियाँ चुटकी लेती ओर कहतीं, “अरे। यह तो ब्राह्मण पुत्र है।" सम्बन्धियों में कोंडमा राजू के समान अंदर की बात जानने वाले (अंतः प्रज्ञ) समझ जाते थे कि बालक का सुब्बाम्मा के लाड़-दुलार के प्रति इसलिए अधिक रुझान था, क्योंकि उसका परिवार शाकाहारी था। अन्य लोग जो इतने भावुक न थे, कहा करते कि सत्य को उस विस्तृत और विशाल भवन के चौड़े फर्श पर घुटनों के बल चलने में अधिक आनंद आता था। अपने घर में वह बालक कभी इतने आनंद से किलकारी मार कर न हँसता था, जितना कि सुब्बाम्मा के घर में। फलस्वरूप ज्योतिषी के घरवालों ने ईश्वराम्मा को देवकी और सुब्बाम्मा को यशोदा कहना शुरू कर दिया। प्रतिदिन चंद्र की कला के समान उसे सुन्दर और मनोहारी रूप में बढ़ता देखकर ईश्वराम्मा का हृदय भी प्रसन्नता से फूला न समाता था, क्योंकि वह हर व्यक्ति के प्रेम और ध्यानाकर्षण का केन्द्र बन गया था।

प्रशांति निलयम् में शिरडी माँ नामक एक बहुत पुरानी भक्त हैं। वे भगवान साई बाबा के जीवन काल में शिरडी में रहती थीं। उन्हें पेड्डा बॉटु भी कहते हैं, क्योंकि वे अपनी दोनों भौहों के मध्य कुमकुम की बहुत बड़ी बिन्दी लगाती हैं। अपने संस्मरणों में वे कहती हैं कि वे ईश्वराम्मा से इस बात के लिए सदैव प्रार्थना करती थी कि वे सत्य साई बाबा के के बाल्यकाल कुछ चमत्कार बतायें। ईश्वराम्मा इन प्रश्नों को यह कहकर टाल देती थीं कि

उन्होंने कोई ऐसे चमत्कार नहीं देखे, और जो देखे भी, वे उन्हें याद नहीं है। किन्तु एक दिन उन्होंने अत्यन्त हृदयस्पर्शी अनुभव का, तीस वर्षों छिपाये हुए थी, उल्लेख किया: जिसे वे

"स्वामी उन दिनों नौ महीने के थे," ईश्वराम्मा ने कहा, "वह घटना आज भी मेरे नेत्रों के सामने स्पष्ट और ताजी है। मैंने उन्हें नहलाधुलाकर, कपड़े आदि पहनाकर तैयार ही किया था और उनकी आँखों में ठंडक पहुचाने वाला काजल लगा दिया था—मैंने शिव मंदिर से विभूति लेकर और सत्याम्मा (सत्यभामा) मंदिर से सिंदूर लेकर उनकी भौंहों के बीच लगा दिया था। मैंने उन्हें झूले में डाला और उसे धक्का देकर झुला दिया। इसके बाद मैं रसोईघर में चूल्हे पर चढ़े हुए दूध को देखने लगी। एकाएक मैंने उनका चिल्लाहट के साथ-साथ रोना सुना। मुझे कुछ आश्चर्य-सा हुआ, क्योंकि, तुम विश्वास न मानोगी, मैंने उन्हें जन्म से उस दिन तक कभी भी किसी कारण चाहे भूख हो या कि कोई कष्ट हो, रोते हुए नहीं सुना था। मैंने उन्हें उठा कर अपनी गोद में लिटा लिया। रोना बंद हो गया। मैंने उनके चारों ओर एक अत्यन्त उज्ज्वल प्रकाश देखा-एक ऐसी कांति जो उन्हें चारों ओर से घेरे हुए थी। किन्तु उस प्रकाश से मुझे तनिक भी अड़चन नहीं हुई। इतनी तेज और निकट होते हुए भी वह अत्यन्त शीतल थी। मैं एक अज्ञात आनन्द में खोई हुई चुपचाप शान्त बैठी रही। वह प्रकाश वहाँ बहुत देर तक रहा, फिर धीरे-धीरे धूमिल हो गया। मैंने अपनी आंखें बंद कर लीं और आसपास के वातावरण को बिल्कुल भूल गयी। मेरी सास ने आकर मुझे जगाया, तब मैं जगी। ऐसा लगा कि बालक सो रहा

था। उन्होंने मुझसे पूछा कि क्या हो गया था। मैंने उन्हें स्वामी के चारों ओर जो प्रभा-मंडल मैंने देखा था और जिसकी रेखायें मेरे सामने अभी तक स्पष्ट थीं, उसकी चर्चा की। उन्होंने अपने होठों पर उंगली रखते हुए कहा, 'इसके विषय में किसी से न कहना। लोग इसे समझेंगे नहीं और नाना प्रकार की कहानियाँ इधर-उधर फैलायेंगे।' उन्होंने शायद कोंडमा राजू से भी इसकी चर्चा की, क्योंकि उन्होंने आगे चल कर मुझसे इसके विषय में पूछा।"

इस प्रकार चमत्कारों और शुभ लक्षणों से घिरे सत्य ने बचपन के प्रारम्भिक व्यायाम- हाथ-पैर के बल चलना और घसिटना शुरू किया। फिर लड़खड़ाते हुए एक के पास से दूसरे के पास जाने लगे। कोई न कोई बड़े-बूढ़े हाथ फैला कर उन्हें बुलाते और वे लड़खड़ाते हुए पैरों से उनके पास चले जाते। फिर वे देहरी पार करने लगे। थोड़ी-थोड़ी दूर तक दौड़ने लगे और अपनी तोतली भाषा में छोटे-मोटे शब्दों का उच्चारण करने लगे। जब वे अपनी तोतली भाषा में अस्पष्ट रूप से कुछ कहते तो सुनने वालों को उनकी बोली अपने स्वयं के बच्चों से भी कहीं अधिक मधुर लगती।

पेड्डाबांटु ने ईश्वराम्मा को स्वामी के बचपन की कुछ कहानियाँ सुनाने के लिए तैयार कर लिया। एक दिन दोनों महिलायें शंखों के मोहरे बनाकर घर में चौसर खेल रही थीं। ईश्वराम्मा बोली, "तुम उसे नारायण और कृष्ण कह कर उसकी प्रशंसा करती हो। पर मैंने उसे एक विशेष प्रकार का कृष्ण पाया। ऐसा कृष्ण जो मुझे दूसरे प्रकार से परेशान करता था. क्योंकि वह

दूसरे बालकों की तरह न था। उसने कभी किसी विशेष प्रकार के भोजन या वस्त्र की माँग नहीं की। हिंदूपुर या अनन्तपुर से पहनने के लिए कपड़ों का एक ढेर ले आया जाता था। घर का कोई बड़ा बूढ़ा-पिता या बाबा (प्रपिता) परिवार से सब बालकों को आवाज लगाते और कहते कि इन कपड़ों में से अपने-अपने लिए चुन लो। किन्तु सत्य एक किनारे बैठा रहता था, बिल्कुल तटस्थ; जब तक कि अन्य बच्चे अपना मनचाहा चुनाव न कर लें। इसके बाद जो भी बचा रहता था, वह उसे ले लेता था। उसकी अपनी न कोई इच्छा होती थी न अभिलाषा। लेकिन वह जब दूसरे बालकों को प्रसन्न देखता था तो उसका मुख भी प्रसन्नता से दमक उठता था। जब कभी हम पूछते थे कि तुम्हें क्या चाहिए, वह चुप रहता था। केवल उसके होठों पर एक मुस्कान खेल जाती थी। मैं कभी-कभी प्यार में उसको हृदय से लगा लेती। उसे विश्वास में लेकर चुपचाप पूछती कि उसे क्या चाहिए। 'सत्यम् मुझे बता, तुझे क्या चाहिए? मैं तुझे वही वस्तु दूंगी।' उसका यही उत्तर था, 'तुम मुझे जो भी दोगी, मैं ले लूंगा। मेरे लिए वही पर्याप्त है। मुझे कुछ नहीं चाहिए।' प्रत्येक वस्तु के प्रति उसकी नितान्त अरुचि से मुझे कभी-कभी बड़ा दुःख होता। मेरे मन में सदैव यह लालसा बनी रहती कि अन्य बालकों की भाँति वह तुनकमिजाज हो, अधिक हठी हो।" ईश्वराम्मा को दुःखी देखकर घर के बड़े-बूढे समझाते, अभी तो छोटा है। बड़े होने पर यह उदासीनता चली जाएगी और वह दूसरों की ही तरह हो जाएगा।

ईश्वराम्मा को दूसरी बड़ी शिकायत यह थी कि सत्य जब भी घर के अन्दर होता अत्यन्त गंभीर रहता। घर के बाहर वह खूब हंसता-हंसाता और दूसरे बालकों के साथ कूदता, फिसलता और चित्रावती की तलहटी में रेत पर घंटों भजन गाता और खेलता। किन्तु जब ईश्वराम्मा उसे घेर-घार कर घर लाती तो अत्यन्त गम्भीर बन जाता ईश्वराम्मा ने कहा, "यह बात मेरी समझ में न आती। हम लोग अन्य लोगों से किस प्रकार भिन्न थे? ऐसी कौन सी वस्तु थी जो उसे इतना गहन और गम्भीर बना देती थी? आगे चलकर इस बात पर कभी-कभी मुझे आश्चर्य होने लगा कि लोगों ने उसे हंसी-हंसी में 'बह्मज्ञानी' कहना शुरू कर दिया था। वह क्या वास्तव में उसका एक गुण था?

“सत्य गाँव के प्रत्येक व्यक्ति का ध्यान आकर्षित करने लगा। हरएक उसकी प्रशंसा करता। मुझे मन ही मन यह भय लगा रहता कि यह कुछ लोगों में ईर्ष्या और द्वेष को जन्म न दे और वे कुदृष्टि से मेरे बच्चे को देखें। मैं उसका निवारण करने के लिए, ताकि किसी की बुरी दृष्टि सत्य को न लग जाए, कभी झाड़ू लगाती, कभी धोकर बहाती, कभी अग्नि में कुछ जला देती। इस प्रकार की झाड़-फूंक चलती ही रहती; किन्तु जब वह मुझे यह सब करते हुए देखता तो यह कहकर भाग जाता, 'किसी की बुरी दृष्टि मेरा क्या बिगाड़ेगी?" इस प्रकार निर्भीकता से और साधिकार कहे हुए शब्द एक बार पुनः हमें उन शब्दों की याद दिलाते हैं, जिन्हें कृष्ण ने अपनी पालकमाता यशोदा से कहा था। जब यशोदा ने उस दिव्य बालक को थोड़ी सी बालू मुँह में रख लेने के लिए डांटा, तो उस दिव्य बालक ने

उत्तर दिया, “तुम ऐसा क्यों समझती हो कि मैं एक बालक मात्र हूँ–शरारती और पागल?" जब किसी आगन्तुक ने कृष्ण से उनका नाम पूछा, तो वे बोले, “मेरे तो बहुत से नाम हैं, उनमें से तुम्हें कौन सा बतलाऊँ?" सत्य अपने कामों और बातों से दिन में अनेक बार ईश्वराम्मा को कृष्ण की याद दिलाता था और उनके मन में निरन्तर एक मात्र यही आकांक्षा रहती थी कि वह सदैव यही भूमिका निभाता रहे।

निश्चय ही सत्य को बाहर घूमना-फिरना, पहाड़ियों की ओर निरन्तर देखना और एक मौन आनन्द से आकाश और नक्षत्रों को निहारना अत्यन्त प्रिय था। किन्तु वह जैसे-जैसे बड़ा होता गया, उसकी रुचियाँ भी विचित्र होती गयीं। गाँव की सड़कों पर अन्य बालकों के साथ आँख मिचौली अथवा अंधे की धक्का-मुक्की खेलते समय वह सड़क से आने-जाने वाली प्रत्येक गाय-भैंस को अपने प्यार की थाप अवश्य देता। उसे इस चेतावनी का कि पशु है कभी बिगड़ कर मार भी सकती है, कोई असर न होता। जब कभी कोई उसे घसीट-घसीट कर माँ के पास ले जाता और वहाँ बिठा देता तो वह बहुत रोता चिल्लाता।

गाँव के छोकरे तो सदा से ही शैतान रहे हैं। उन्हें कोई भी वस्तु जो सामान्य से हटकर हो, सहन न थी चाहे वह व्यक्तिगत स्वच्छता से, चाहे स्पष्ट वाणी हो, चाहे स्वच्छ व्यवहार हों। ऐसे किसी भी असामान्य व्यक्ति को सामान्य स्तर तक लाने की उनकी एक ही प्रिय विधि थी-चिढ़ाना और खिल्ली उड़ाना। किसी मुर्गी को उल्टा लटकाकर घुमाना, कुत्ते को

अचानक लात मारना, ताकि वह काँय-कॉय करके चिल्लाये और भागे अथवा किसी बैल की पूँछ को पकड़ कर ऐंठना-ये सब ऐसे कार्य थे, जिनसे निश्चय ही सत्य को आंतरिक कष्ट होता था, और सत्य को इस कष्ट में देखकर ही तो उन्हें आनन्द आता था। ईश्वराम्मा क्रुद्ध होकर यदि उनको धमकाती कि उन्हें मारेंगी, तो वे उतना ही प्रसन्न होते। सत्य को भी इस विचारमात्र से कि उन्हें दण्ड मिलेगा, कोई प्रसन्नता न होती। सत्य में अरुचि, घृणा अथवा बदले की भावना का सर्वथा अभाव था।

ईश्वराम्मा को यह बात बहुत पहले ज्ञात हो गयी थी कि सत्य उत्कृष्ट रूप में प्रतिभाशाली है। उनके तर्क अकाट्य होते थे और उनके तर्क करने की प्रक्रिया भी किसी वयस्क की अपेक्षा कहीं अधिक तेज और स्पष्ट होती थी। उनकी भावनायें अत्यन्त गहरी थीं और अधिक स्थायी ईश्वराम्मा के परिचय में जितने भी बालक थे, सत्य की भाषा और वाणी उन सबसे अधिक कोमल और मधुर थीं। अतः जब गाँव का गाँव उन्हें 'गुरु' कह कर बुलाने लगा तो इसमें आश्चर्य किस बात का? और स्वाभाविक रूप से ईश्वराम्मा 'गुरु' की माता के रूप में जानी जाने लगीं, मानों वे कोई विशेष महिला हों। गाँव की स्त्रियाँ झुक कर उन्हें प्रणाम करतीं और जब भी वे उन्हें कुएं पर सत्यभामा, गोपाल कृष्ण, शिव अथवा हनुमान के मंदिर पर मिल जाती, तो झुककर उनके पैर छूतीं।

बच्चे को प्राइमरी स्कूल में भरती कराना इसलिए आवश्यक समझा जाता था कि वह वहाँ सुरक्षित रहेगा, न कि इसलिए कि वह पढ़-लिखकर कुछ

सीखेगा। किन्तु सत्य घर के लिए समस्यायें खड़ी कर रहा था। उसके जो सहपाठी जाड़ों में दाँत कटकटाते हुए कक्षा में बैठते थे, वह उन्हें कम्बल, दुशाला आदि दे देता था। उसका जो भी मित्र भूखा होता था, उसे लेकर वह आ जाता था और उसे दूध, दही, बिस्कुट आदि खिलाता।

शीघ्र ही सत्य सात वर्ष का हो गया। उसे अब बुक्कापटनम् में प्राथमिक शाला में तीन मील दूर पढ़ने जाना था। ईश्वराम्मा को आश्चर्य था कि समय कितनी जल्दी निकल गया। उन्हें ऐसा लगता था कि अभी पिछले दशहरे को तो वह पालने में झूला करता था और अब इतना बड़ा हो गया। अब उसे नहला धुलाकर सफेद कमीज और हाफपैंट पहनाकर माथे पर विभूति और उसके बीच कुमकुम का तिलक लगाकर दोपहर के खाने के लिए उसे सांगती (चावल और रागी से मिलाकर बनाया हुआ एक पदार्थ) और चटनी डिब्बे में रखकर भेजना पड़ता था। सत्य अपने कंधे से बस्ता लटकाकर “माँ, मैं चलता हूं" कह कर चल देता था, और ईश्वराम्मा द्वार पर खड़े होकर आंसू भर कर उसे जाते हुए देखती रहती थी।

बुक्कापटनम् आने-जाने का अर्थ था पर्याप्त समय तक घर से दूर रहना। सत्य प्रातः काल कलेवा करके लगभग साढ़े आठ बजे स्कूल चला जाता था और सूर्यास्त से कुछ पहले ही घर वापस आ पाता था। उसके चचेरे और ममेरे भाई जो उसके ही साथ स्कूल जाते थे, उसके स्वच्छ वस्त्रों को देखकर मन ही मन जलते थे, क्योंकि उन वस्त्रों में वह उन सबसे अलग दिखाई पड़ता था। गाँव की सीमा पार करने तक वे चुप रहते थे और उसके

बाद नदी पार करते समय वे सत्य को पैरों से पकड़ कर कीचड़ में घसीटते थे, जब तक कि उसके वे वस्त्र, जिन्हें ईश्वराम्मा बड़े परिश्रम से धोतीं और स्त्री करके पहनाती थीं, उनके स्वयं के वस्त्रों से अधिक गंदे और मैले न हो जायें। ईश्वराम्मा बहुत प्रयत्न करने पर भी कभी सत्य से उन अपराधियों के नाम न जान पायीं। जब अंधेरा हो जाता तो सत्य दीपक के प्रकाश में, जो दीवार के एक कोने में टिमटिमाया करते थे, विद्यालय में और आते-जाते समय होने वाली घटनाओं का वर्णन किया करता था। किन्तु अन्य बालकों के विपरीत वह कभी कक्षा में पढ़ाये हुए पाठों की चर्चा न करता था। बजाय इसके वह यह बतलाता था कि अपनी कक्षा के सहपाठियों को और उन शिक्षकों को भी जो उसे पढ़ाने का साहस करते थे, उसने क्या सिखाया। आश्चर्य से उत्तेजित बच्चों का झुंड घर में यह भी बतलाता कि सत्य ने कोडंप्पा नामक शिक्षक को कौन सा पाठ पढ़ाया था।

कोंडप्पा बालकों को पाठ से सम्बन्धित नोट लिखा रहे थे। उन्होंने देखा कि सत्य नारायण राजू ही एक ऐसा विद्यार्थी है जो नहीं लिख रहा। स्वाभाविक था कि वे नाराज हो गए। उन्होंने अपने को अपमानित अनु किया। उन्होंने सत्य से पूछा, “तुम क्यों नहीं लिख रहे हो?" उसने उत्तर दिया, मुझे इसकी आवश्यकता नहीं लगती।” जिन प्रश्नों के उत्तर कोंडप्पा लिखा रहे थे, वे बिना लिखे ही उन्हें आते थे। बहुत वर्षों के बाद जब मुझे अनंतपुर में कोंडप्पा मिले तो उन्होंने स्वीकर किया कि स्वामी के इस उत्तर से उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने स्वयं उसके बाद की घटनायें बतलायीं। उन्होंने सत्य को बेंच पर खड़ा कर दिया। इधर जिस कुर्सी पर

वह बैठे थे, वह उनसे चिपक गई। फलस्वरूप बड़ी चिल्ल-पुकार मची और उन्हें अपमानित होना पड़ा। मुझे स्वामी से भी उस घटना को सुनने का अवसर मिला। फिर मैंने साहस बटोर कर स्वामी से कहा कि एक शिक्षक होने के नाते उस गरीब शिक्षक के साथ जो व्यवहार हुआ, वह मुझे अच्छा नहीं लगा। बाबा ने उत्तर दिया कि अपने शिक्षक का अपमान करने का अथवा उनके मन को दुःख पहुँचाने का उनका तनिक भी इरादा न था। "वह घटना स्वाभाविक रूप से घटी, क्योंकि इस बात की घोषणा का समय, कि मैं सामान्य बालक नहीं हूँ, आ गया था।"

किन्तु इस घटना से ईश्वराम्मा को और पूरे रत्नाकर परिवार को बहुत दुःख हुआ। जब यह घटना घर में बतलायी जा रही थी. सत्य अनाज वाले भण्डार-घर में छिपे थे। ईश्वराम्मा ने उन्हें घसीट कर वहाँ से निकाला और चेतावनी देते हुए कहा, "तुम्हें यह स्कूल छोड़ना पड़ेगा और दूसरे किसी विद्यालय में भी भरती नहीं किया जाएगा। तुम सिर्फ एक मिट्टी के लोंदे बन के रह जाओगे और गाय-बैल हाँकना छोड़कर कुछ न कर पाओगे।" वे इस बात से भयभीत थीं कि उनके पुत्र की अशिष्टता से गाँव के सभी लोग अप्रसन्न और नाराज होंगे। किन्तु कुछ ही दिनों में उन्होंने सुना कि इन घटनाओं के बावजूद, अथवा कौन जाने इन्हीं के कारण न केवल उसके सहपाठी, वरन् स्वयं कोंडप्पा सहित सत्य के अन्य शिक्षक गण भी उसकी प्रशंसा करने लगे थे। कोंडप्पा ने तो सत्य को दैवी बालक मानकर उसके विषय में एक कविता भी तैयार करली थी, जिसे उन्होंने बँटवाने के लिए छपवा भी लिया था।

तभी यह शुभ समाचार सुनाई पड़ा कि ताल्लुके के बालकों के लिए पेनु कोण्डा में जो परीक्षा ली गई थी, उसमें सत्य सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी घोषित किया गया है। इस प्रतिभा सम्पन्न बालक के सम्मान में बुक्कापटनम् के लोगों ने एक जुलूस निकाला। ईश्वराम्मा इस अवसर पर गर्व और प्रसन्नता से भर उठीं। पर दूसरे उससे ईर्ष्या करेंगे, इसका उन्हें मन ही मन भय भी था। जब सत्य को घर लाया गया तो उन्होंने उसके चारों ओर नारियल उतार कर तोड़ा और नजर न लगे, इसलिए कपूर से सत्य की आरती उतारी।

अब न तो घर और न बाहर ही सत्य को एक मिनट का विश्राम न था। वह जहाँ भी जाता, लड़कों का एक झुण्ड हमेशा उसके पीछे-पीछे चलता। चाहे वे पहाड़ियाँ या घाटियाँ हों अथवा चित्रावती नदी का चौड़ा रेतीला तट। जब बच्चे अलग होकर अपने-अपने घरों को वापस आते, तो उनके द्वारा सुनाई हुई कहानियों से घर के लोग रोमांचित हो उठते। एक दिन उन्होंने बताया कि कैसे सत्य ने मिश्री उत्पन्न करके मिश्री का एक बड़ा-बड़ा टुकड़ा हर एक बालक को दिया। दूसरे दिन उन्होंने बतलाया कि उन लोगों ने लगभग एक दर्जन मेंढक पकड़कर एक टोकरी में रख दिया और उन्होंने देखा कि सत्य ने उन्हें अबाबीलों में बदल दिया और वे उड़ गए। एक दिन उसने इन लड़कों को महाराष्ट्र राज्य में स्थित पंढरपुर के इष्टदेव पांडुरंग की प्रशंसा में एक भजन सिखाया और उस भजन की धुन • पर उन्हें नाचने के लिए प्रोत्साहित किया। दूसरे दिन उन्होंने बताया कि सत्य के

कहने में स्वर्ग के बहुत से देवता है, जो सदैव उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए तैयार रहते हैं।

रत्नाकर राजू परिवार के मित्रों और पड़ोसियों ने यह भविष्यवाणी की कि सत्य को स्कूल से निकाल दिया जाएगा। कुर्सी वाली घटना निश्चय ही बड़ी अशुभ सूचक थी। जब मैंने इसे पहली बार सुना तो मुझे आश्चर्य नहीं हुआ, क्योंकि भगवान का अवतार भला निरर्थक बंधनों और भड़कीली सस्ती शिक्षा में विश्वास क्यों करने लगा। उसकी व्यापकता किसी क्षितिज की सीमा में बाँधी नहीं जा सकती। टामस की शुभ वार्ता में इसी प्रकार का उल्लेख ईसा के विषय में हैं। ईसा ने अपने शिक्षक जकेयिस की तरफ देखा और कहा, “तुम्हें तो ईश्वरीय प्रकृति का 'अ' भी नहीं मालूम, फिर ऐ पाखण्डी, तुम दूसरों को उसका 'ब' कैसे पढ़ाओगे? पहले, यदि तुम जानते हो तो हमें 'अ' पढ़ाओ, और तब हम इस पर विश्वास करेंगे कि तुम्हें 'ब' का भी ज्ञान है।" तब ईसा ने प्रथम अक्षर 'अ' के सम्बन्ध में ही शिक्षक को भ्रमित कर दिया और वह उसका उत्तर न दे सका। तब ईसा ने 'अ' अक्षर में निहित रहस्य का उद्घाटन किया। (भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है कि अक्षरों में वे प्रथम अक्षर हैं।) ईसा ने जकेयिस को उसी प्रकार भ्रमित कर दिया, जिस प्रकार सत्य ने अपने शिक्षक को सत्य ने कहा, "गुरु जी सुनो, प्रथम अक्षर 'अ' के कलात्मक विन्यास को समझो। कैसे उसमें तीन रेखायें हैं जो आकर मध्य में एक दूसरे से मिलती हैं। इसका मध्य बिन्दु उभयनिष्ठ है। यहाँ से ये पृथक भी होती है और आकर इस बिन्दु पर मिलती भी हैं। मानो इसे किसी ने ऊपर उठा दिया हो और इसके

तीनों चिन्ह एक ही प्रकार की समान, संतुलित लय में नृत्य कर रहे हों।” सत्य ने शब्द मधुर स्वर में और सहज भाव से कहे। फलस्वरूप बुक्कापटनम् में उनके शिक्षक ने अत्यन्त आदर भाव से उस ज्ञान का स्वागत किया।

सत्य के वहाँ होने के कारण पुट्टापर्ती ही गोकुलम् था। गाँव का प्राचीन नाम था- गोल्लापल्ली अर्थात् ग्वालों का गाँव। "निश्चय ही इस नाम से आकर्षित होकर ही कृष्ण ने फिर से पृथ्वी पर एक बार जन्म लेना निश्चित किया होगा। अन्यथा जो जो चमत्कार सत्य ने दिखलाये, मेरे पास उनका कोई समाधान नहीं है।" ईश्वराम्मा ने एक बार मुझ स्वामी के बाल्यकाल की एक घटना मुझे बतलायी। से कहा और

“वर्षा काल की एक संध्या थी। उत्तरा नक्षत्र था। आकाश में घना और भय उत्पन्न करने वाला अंधकार छा गया। वेंकम्मा घर बनवा रही थी। गीलीं ईंटों का एक भट्टा पकने के लिए तैयार था। ईंटों को चारों ओर से लकड़ी के बड़े-बड़े लट्टे लगाकर ढक दिया गया था, किन्तु अशुभ था। अतः उसमें अग्नि दूसरे दिन प्रातःकाल लगायी जाने वाली थी। अब क्या होगा? मूसलाधार पानी का एक झोंका आयेगा और सारी ईंटें गलकर मिट्टी का ऊँचा ढेर बनकर रह जायेंगी।

" शीघ्र ही कुछ उपाय करना था। भाग्यवश हमारे एक सहृदय पड़ोसी थे। उन्होंने वैंकम्मा से कहा, “ईंटों को गन्ने की सूखी पत्तियों से ढक दो।" पर

वे हमें मिलें तो कहाँ से? उन्होंने कहा, “चित्रावती के पूर्वी किनारे पर मेरे एक मित्र रहते हैं। उनसे यदि कहा जाएगा तो वे अवश्य ही सहायता करेंगे।" हताशा से भरी हुई पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों की एक लम्बी पंक्ति नदी की बालू को पार करती हुई खेत की ओर दौड़ गयी। स्वयं सेवकों की उस पंक्ति में अंतिम सदस्य स्वामी थे। किन्तु जब वह नदी की तलहटी के बीचों बीच थे, उन्होंने हर एक से रुक जाने के लिए कहा। “वेंकम्मा" वे बोले, “पानी नहीं बरसेगा" और देखते-देखते बादल बिखर गए। दिन का उजाला फैल गया, और सारी आशंका और भय न जाने कहाँ गायब हो गया। मुँह की मुँह के अन्दर कहे हुए कुछ थोड़े से शब्द और एक क्षण के लिए उस घने व्यापक आकाश की पृष्ठ भूमि में उठी हुई नन्हीं हल्की हथेली की छाया और क्या देखा कि प्रकृति के सभी तत्व–पवन, मेघ, वर्षा- उनकी आज्ञा मान गए। वहाँ से सभी अपने घरों को बिना पत्तों के ढेर लिए वापस आ गए। उन्हें विश्वास हो गया कि अखिल प्रकृति के तरुण स्वामी उनके बीच है। "

एक विजय जन्य संतोष के साथ कहानी को समाप्त करते हुए ईश्वराम्मा ने कौतूहल वश मेरे मुख की ओर देखा। मैंने उन्हें निराश नहीं किया। मैंने कहा, “इस कृष्ण ने इस गोकुल की रक्षा मात्र एक उंगली उठाकर कर दी। "

सत्य अपने समय के नायक बन गए, जिनकी प्रशंसा की जाती थी, डरा भी जाता था, लोग प्रेम भी करते थे और संदेह भी)। ईश्वराम्मा भी प्रेम और

आश्चर्य, संदेह और सावधानी के भँवर में फँसी रहती थीं। बहुधा वे अपना समय प्रार्थना में बिताती थीं कि ईश्वर उनके पुत्र को पुट्टापर्ती का एक समान्य बालक बना दे। बस इतना हो कि उसमें थोड़ी सी अधिक बुद्धि और समझदारी हो। जब कभी वे सत्य पर विचार करती थीं, तो उन्हें उसमें कवि, संगीतज्ञ, नर्तक, नाटककार और निर्देशक सभी के गुण दिखाई पड़ते थे। वे आशा करती थीं कि आगे चलकर इन सभी क्षेत्रों में सत्य का विकास होगा। उन्हें ऐसा लगा कि कोई कुदृष्टि उन पर पड़ रही है, क्योंकि सभी असम्भव कार्यों को संभव कर दिखाना ही उनकी बीमारी की जड़ थी। एक बार जब उनकी लड़कियों ने यह समाचार गाँव में फैलाया कि बुक्कापटनम् में जिस बाल कलाकार ने नृत्य प्रदर्शन किया था, सत्य उससे भी अधिक कठिन नृत्य के अंगों का उससे श्रेष्ठ प्रदर्शन कर सकता था, तो वे बहुत रुष्ट हुई और उन्होंने इसका घोर विरोध किया। किन्तु वे स्वयं भी सत्य के नृत्य और अभिनय में इतनी खो जाती थीं कि एक बार एक नाटक में उसे सताया जाते देखकर वे जोर-जोर से रोने लगीं।

सत्य के पिता अपने इस चमत्कारी बालक के कृत्यों को देखकर एक मौन असमर्थता से मन ही मन क्रुद्ध और स्वयं दबदबाए जाते थे, किन्तु सत्य की मनमौजी प्रकृति और नटखटपने के लिए अपने पति के क्रोध का सामना तो ईश्वराम्मा को ही करना पड़ता था। उसकी दुस्साहसिक कर्मों की प्रवृत्ति सदैव चौकन्नी रहती थी। किसी दोष अथवा दुर्गुण को वह छोड़ता नहीं था। आप विश्वास करें या न करें पर उस नौ वर्षीय बालक सत्य ने कोई और नहीं स्वयं अपनी उप-माता सुब्बाम्मा के पति कर्णम्

की हिटलरी मूँछों का मजाक उड़ाने के लिए व्यंग्यात्मक गीत लिख डाले। फिर उसने अपने मित्रों को वह व्यंग-गीत (पैरोडी) सिखाया और उन्हें उन महाशय के घर के सामने तब तक गाने के लिए प्रेरित किया, जब तक कि कर्णम् महाराज उन ठूंठ-सरीखी मूंछों को अपने चेहरे से बिल्कुल साफ न करवा दें। बेचारी ईश्वराम्मा को सुब्बाम्मा से यह समझाने की आवश्यकता ही न पड़ी कि लड़का हाथ से बाहर है। उन्होंने सुब्बाम्मा से ही यह प्रार्थना की कि सत्य के मस्तिष्क में वे कुछ तो सांसारिक बुद्धि डाल दें और उसे दुनियादारी समझा दें। किन्तु सुब्बाम्मा को यह प्रसन्नता थी कि गुरु तो अपने 'ढंग से उपदेश देने में व्यस्त हैं। उन्होंने हंसकर ईश्वराम्मा के हृदय में छिपे हुए भय को निकाल दिया। "उसे जैसा बनता है, बनने दो। क्या हितकर है, यह वही जानता है", उन्होंने ईश्वराम्मा से कहा।

शीघ्र ही गाँव के बड़े-बूढों के मन को चुभने वाली व्यंग्यात्मक कविताओं के लिए ईश्वराम्मा को सत्य की भर्त्सना करनी पड़ी। सत्य ने देखा कि गाँव के धनी-मानी समृद्ध लोग दीन-हीन निर्बल मजदूरों से अपने धान के खेतों में कड़ी धूप और वर्षा में परिश्रम कराते हैं और उसके बल पर जो फसल होती है, उसका पूरा लाभ उठाकर चैन का जीवन व्यतीत करते हैं तथा उन गरीबों के प्रति तनिक भी कृतज्ञता प्रकट नहीं करते। सत्य के मन को पीड़ा हुई। उन्होंने तुरन्त दस पंक्तियों की एक व्यंग-रचना लिखी, जिसमें ऐसे व्यक्तियों की निन्दा की गई और अपने साथियों से उसे गवाया। गाँव के लड़के जब अपने गाय-बैल चराने के लिए सुबह निकलते

तो ऊँचे स्वर में इसे गाते। इसे सुन कर बड़े लोगों की भौहें तन गई। पता लगाया गया कि यह किसकी करतूत है। बड़े-बूढ़ों को यह आश्चर्य था कि उस छोटे से मस्तिष्क में क्रांति की यह चिनगारी भला रत्नाकर कैसे भर सकते थे? उन्हें यह संदेह हुआ कि निश्चय ही सत्य माध्यम बनाकर कोई (भूत-प्रेत ऐसी) अमंगलकारी शक्ति काम कर रही है। सुबाम्मा ने सत्य से पूछा कि यह कविता किसने बनाई है? कविता में वर्ण-व्यवस्था और जाति-प्रथा की असमानताओं का वर्णन था, जिसके फलस्वरूप वह उच्च जातियों द्वारा नीच जातियों के शोषण का कारण बन गई थी। किन्तु सत्य को फुसलाकर चुप नहीं किया जा सका। वे कुप्रथाओं की निन्दा और समाज में सुधार के लिए ही जन्मे थे। यह उनका अपना संसार था और वे अपने अधिकारों पर अटल रहे। ईश्वराम्मा और सुब्बाम्मा दोनों हाथ मलती रही गयीं। उन्होंने मन ही मन भगवान से सत्य के कल्याण के लिए प्रार्थना की।

दूसरे दिन लगभग दोपहर को एक वर्दी पहने हुए शोफर के कारण गाँव की सभी चिड़ियाँ चीखने लगीं। वह लम्बे-लम्बे कदम रखता हुआ टेढ़े-मेढ़े रास्तों से चलकर आया और विभूति उत्पन्न करने वाले उस अद्भुत बालक के बारे में पूछताछ करने लगा। उसने खोजकर लड़के का पता लगा ही लिया। वह एक बरामदे में गाँव के छोकरों से घिरा बैठा किस्से कहानियाँ सुना रहा था। उसे देखकर अपनी जान बचाने के लिए लड़के इधर-उधर भाग गए। पर सत्य डटा रहा। उसने कहा, “पर्वतों और जंगलों के बीच से होकर अनंतपुर जाने वाली सड़क पर मेरी जीप का इंजन फेल हो गया हैं

और मैं भटक गया हूँ। तुम मुझे थोड़ी-सी अपनी चमत्कारी विभूति दे दो। साहब वहां मेरी राह देख रहा है, बहुत क्रोध में है"। उस हट्टे-कट्टे आगन्तुक के साथ सत्य उस बिगड़ी हुई जीप की ओर चल दिया। कुछ लड़के उसके पीछे-पीछे चल दिए। सत्य ने देखा कि वह अंग्रेज साहब एक मरे हुए शेर को गाड़ी में रक्खे बड़ी शान के साथ उसके कानों को ठोंक रहा है। सत्य ने कहा, “राम, राम छिः। इस शेरनी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था? यह जंगल में छोटे-छोटे अपने तीन बच्चों को पाल रही थी। तुमने उसे गोली से मार डाला। मैंने तुम्हारी जीप को अपने संकल्प से रोक लिया है। वापस जाओ और उन तीनों शेर के बच्चों को पालने के लिए किसी प्राणी संग्रहालय (चिड़ियाघर) में दे दो। याद रक्खो, मात्र क्षणिक आनन्द और गर्व के लिए कभी किसी प्राणी का वध मत करो। शौक है. तो कैमरा लो उसके फोटो उतारो! तब तुम सच्चे वीर कहलाओगे। जाओ।" थोड़ी देर में इंजन भर-भर्र हुआ और ड्राइवर ने गाड़ी पीछे मोड़ी। एक गोरे को, विशेषकर टोप और बंदूकधारी एक अंग्रेज को डाँटना, उसकी जीप को रोक लेना और वह जो चाहे उसे मना कर देना-इस सबको सोच कर बाबा के पिता तो लगभग मूर्छित से हो गए। उनकी आँखों के सामने पुलिस वालों और हवालातों के भयंकर दृश्य आने लगे। सत्य के बड़े भाई शेषमा राजू परिवार के मस्तिष्क का काम करते थे।

उन्होंने बड़ी सफलता से सभी परीक्षायें उत्तीर्ण की थीं और तेलुगू भाषा और साहित्य में 'विद्वान' की उपाधि प्राप्त की थी। यद्यपि प्राचीन तेलुगू साहित्य के सभी संत-कवियों ने बड़ी तन्मयता से आनन्द मग्न होकर

भगवान की लीलाओं का वर्णन किया है, किन्तु जब वे सत्य की इस असाधाण लीलाओं और चमत्कारों को देखते अथवा इनके विषय में सुनते, तो वे भी अपने पिता की तरह इसी निष्कर्ष पर पहुँचते कि सत्य के ऊपर निश्चय ही किसी अत्यन्त नीच किन्तु भयंकर प्रेतात्मा का प्रभाव है। इस शताब्दी के सन् 30-40 के मध्य शिक्षक के पास सुधार का केवल एक ही साधन था—बेंत। उस समय के शिक्षक और अभिभावक एक ही बात जानते थे— 'बिन भय प्रीत न होय गुसाई।' बिना ताड़ना के, बालक नहीं सुधार सकता। शेषमा राजू जो अध्यापक प्रशिक्षण (नार्मल ट्रेनिंग) का कोर्स पास कर चुके थे, पुट्टापर्ती से ६० मील दूर उर्वा कोंडा (सर्प-गिरि) में नियुक्त किए गए। जब वे गए अपने साथ सत्य को भी लेते गए और मन ही मन यह निश्चय कर लिया कि वहाँ सत्य की सारी लीलाओं और चमत्कारों को जो दिन प्रति दिन एक समस्या बनती चली जा रही थीं, मार-मार कर छुड़ा देंगे।

---

4. सर्प-गिरि

ईश्वराम्मा पुत्र वियोग के विचार मात्र से दुःखी थीं। उन्हें भय था कि सत्य को अकारण ही अपमानित होना पड़ेगा, क्योंकि उसका सगा भाई ही इस बात पर पूरा विश्वास करता था कि कुछ प्रेतात्माओं के प्रभाव में आकर ही सत्य नादानी में ऐसी चालाकियाँ किया करता है। किन्तु उनकी अपनी विवशता थी। पुट्टापर्ती के आसपास बीस मील के क्षेत्र में कोई भी हाई-स्कूल न था और मेधावी सत्य को आगे की शिक्षा से वंचित रखना भी एक अपराध ही होता। ऐसी स्थिति में उर्जाकोण्डा में जाकर अपने भाई के साथ रहना और अध्ययन करना, यही सबसे श्रेष्ठ उपाय था। इसी हेतु उन्होंने परमात्मा से निरंतर यह प्रार्थना की कि वह उर्वाकोण्डा (सर्प-गिरि) में व्यतीत होने वाले सत्य के भावी दिनों को संकट रहित और सुखद बनावे। किन्तु पेड्डा वैंकप्पा राजू को सत्य के प्रति ऐसी कोई सहानुभूति न थी। वे तो अपने पुत्र के इन विचित्र कारनामों को देख-देखकर दंग थे। वे तो लोक-संस्कृति में फैले हुए अंधविश्वासों में पूरी तरह डूबे थे। उन्हें विश्वास था कि उनका पुत्र निश्चय ही उनके प्रतिद्वन्द्वियों द्वारा कराये हुए जादू-टोने का अथवा किसी प्रेतात्मा की कुदृष्टि का शिकार हो गया है। अतः ईश्वराम्मा को चुपचाप ही सब सहन करना पड़ता था। वे गहरी उसासें लेती थी और चुपचाप रो भी लेती थीं। हालांकि इस रोने-धोने के बाद उनमें फिर एक प्रकार का साहस और प्रसन्नता होती थी यह सोचकर कि सत्य कितना असाधारण है।

ईश्वराम्मा के कानों में मीलों की दूरी पार करते हुए भी सत्य के विषय में कहानियाँ सुनाई पड़ने लगीं। ये समाचार कभी सत्य के चमत्कारों के

विषय में होते थे-कैसे उसने बीमारी को निरोग कर दिया, कैसे किसी की समस्या हल कर दी, कभी उन कठिनाइयों के विषय में भी जो उसे वहाँ सहन करनी पड़ती थीं। कैसे जंगल से ईंधन की लकड़ी के गट्टर सिर पर उठाकर घर लाने पड़ते थे।

उर्वाकोण्डा से सत्य जब कभी भी पुट्टापर्ती आता, तो माँ उसे स्फूर्ति देने के लिए और थकान मिटाने के लिए उसे तैल-स्नान करातीं। वे सत्य के हाथ, पैर, पीठ और शरीर के विभिन्न अंगों पर तिल के तेल की मालिश करतीं, ताकि वे अधिक पुष्ट और ठोस बनें और उसके बाद उसे गर्म पानी और रीठे के साबुन के मिश्रण से खूब नहलाकर स्वच्छ और ताजा बना देतीं। एक दिन उन्होंने देखा कि सत्य के वायें कंधे पर एक लम्बा-चौड़ा काला निशान पड़ा है। यद्यपि खाल बिल्कुल नीली पड़ गयी थीं, फिर भी जब भी उसे छुआ या दबाया जाता, सत्य ने कभी वह जगह दर्द करती है। या कष्ट देती है, ऐसी शिकायत कभी नहीं की। फिर भी जब माँ ने बार-बार पूछा कि यह काला नीला निशान कैसे पड़ गया सत्य हँसने लगा। लेकिन जब ईश्वराम्मा न मानीं और उन्होंने हठ किया तो सत्य बोला, “शायद बाँस की बहगी में दोनों ओर पानी से भरे हुए घड़े रखकर कंधे पर टाँगकर लाने से ये निशान पड़ गये होंगे।" उर्वाकोण्डा में केवल एक ही कुआँ था, जिसका पानी पीने योग्य था। शेष कुओं का पानी खारा था और पीने योग्य न था। यह कुआँ लगभग एक मील दूर था। अतः उन्हें दिन में कम से कम छः बार कुएँ तक आना-जाना पड़ता था, तीन बार सुबह और तीन बार शाम। तब जाकर वे कहीं अपने भाई और दो पड़ोसी परिवारों की प्यास

बुझाने के लिए पानी ला पाते थे। भाई के साथ तो वे रहते ही थे और पड़ोसियों ने उनसे सहायता माँगी, जिसे सत्य अस्वीकार न कर सके। ईश्वराम्मा ने कहा, "तुम्हें फौरन वहाँ से चला आना चाहिए। वे तुम्हारी सज्जनता और सेवा भाव का अनुचित लाभ उठा रहे हैं। पीने के पानी के लिए वे तुम्हारे ऊपर क्यों निर्भर हैं?" बाबा ने बीच में टोक कर कहा, "अम्मा, मैंने सोचा यह मेरा कर्त्तव्य है। उस ईंटों वाले और खारे पानी को पीकर भला बच्चे कितने दिन जीवित रहते ? माँ मैं तो उतनी दूर से जीवन रक्षक जल लेने जाता हैं। मुझे प्रसन्नता होती है। मैं इसी सेवा के लिए तो आया हूँ।" यह सुनकर ईश्वराम्मा तर्क करना बन्द कर देती और चुप हो जातीं।

उद्घोष का सूर्योदय

पुट्टापर्ती में सन् 1940 की 11 मार्च का सुप्रभात था। गिरिमालाओं पर चढ़कर सूर्य घाटी में झाँक रहा था। उर्वाकोण्डा से संदेश लेकर एक व्यक्ति राजुओं के घर आया। शेषमा राजू ने अपने पिता को एक पत्र भेजा था। ईश्वराम्मा के पति जैसे-जैसे पत्र को पढ़ते जाते थे, उनके मुख के भाव बदलते जाते थे। ईश्वराम्मा इसे बड़े ध्यान से देख रही थीं। उन्होंने देखा कि पति की आँखों से आँसू बह रहे हैं। “सत्य के विषय में लिखा है," उन्होंने कहा, “पर कोई ऐसी घबराने की बात नहीं है। शायद उसे बिच्छू ने काट लिया है।" सुनकर ईश्वराम्मा को आश्चर्य हुआ। यह बीच में 'शायद' शब्द का क्यों प्रयोग किया। वेंकप्पा बोले, “खोज करने पर उन्हें कोई बिच्छू

मिला नहीं। तीन दिन पहले की बात है। गोधूली का समय था और सुनो, शेषमा लिखते हैं कि उसके बाद पूरे दिन गहरी नींद में सोया। पर उसे कोई पीड़ा नहीं हुई।" बिच्छू या सर्प के काटे जाने के बाद किसी भी व्यक्ति को सोने नहीं दिया जाता, ताकि विषय का प्रभाव न बढ़े। सत्य का सोना सुनकर माँ को भय और चिंता हुई।

सारी जगहों को छोड़कर जब यह घटना उर्वाकोण्डा में हुई तो भाग्यवश ईश्वराम्मा को इसका पता न था कि बिच्छू का यह काटना कितना घातक हो सकता है। उस स्थान को सर्प-गिरि कहते थे, क्योंकि पहाड़ी की चोटी पर एक लम्बी चट्टान इस प्रकार स्थित थी मानो कोई नाग अपना फन उठाये है और तलहटी में बसे गाँव को डसने ही वाला है। उस विशाल चट्टान की छाया में अपना जीवन व्यतीत करते हुए लोगों में यह धारणा बैठ गई थी कि पापाण रूप में बदले हुए उस नाग देवता के शासनक्षेत्र में साँप और बिच्छू तभी किसी को काटते हैं, जब उसकी मृत्यु होनी होती है। वेंकप्पा राजू को लेकिन यह भली भाँति विदित था कि इन जन्तुओं के डंक मृत्यु-घातक ही होते हैं। अतः वे उस अशुभ स्थान पर शीघ्र से शीघ्र पहुँचने के लिए उसी समय तैयार हो गए।

कुछ घंटों के बाद ही दूसरा पत्र लेकर एक अन्य व्यक्ति आया। इस पत्र में लिखा था कि सत्य को होश तो आ गया है, पर अभी भी स्थिति सामान्य नहीं है। न वह खाता है न पीता है। उसके चारों ओर क्या हो रहा है, वही उससे भी अवगत नहीं है। वह और किसी दुनियाँ में मालूम पड़ता है और

अदृश्य प्राणियों से बात करता है। ईश्वराम्मा को और अधिक सुनने का साहस न था। उन्होंने अपने पति से प्रार्थना की कि वे उन्हें भी अपने साथ लेते चलें। रास्ते भर वे सभी देवी-देवताओं की मनौतियाँ मनाती चलीं और उनसे अपने पुत्र की कुशलता के लिए प्रार्थना करती चलीं। उनकी एकमात्र इच्छा सत्य को केवल सामान्य बालक के रूप में देखने की थी। वे यह बिल्कुल न चाहती थीं कि वह असाधारण तथा दूसरों से अधिक चतुर निकले।

ईश्वराम्मा के लिए वे दिन और रात अत्यंत चिंता से भरे हुए थे। उन्हें शाँत करने की औषधि किसी के पास न थी। शेषमा राजू निराशा से केवल अपने हाथ मलते रह जाते थे। वे सभी प्रकार से उसका उपचार कर चुके थे। उन्होंने ज्योतिषियों, पुजारियों, हस्तरेखा विशारदों, होम्योपैथिक डाक्टरों, प्राकृतिक चिकित्सों, यहाँ तक कि जिले के सबसे प्रमुख अतिरिक्त जिला मेडिकल ऑफीसर को भी बुला कर सत्य को दिखाया; किन्तु उनके प्रयत्न व्यर्थ सिद्ध हुए। जहाँ सब के सब इतने निराश और चिंतित थे, सत्य बिल्कुल उदासीन और शाँत, किन्तु सब की चिंताओं का केन्द्र बना बैठा था।

सभी लोग हतबुद्धि थे। अंत में ईश्वराम्मा ने हठ पकड़ी कि सत्य को लेकर वापस पुट्टापर्ती चला जाए। उन्हें ऐसी आशा थी कि पुट्टापर्ती में अपने छोटे भाई के साथ जो अब छः वर्ष का हो चुका था और सदैव अपने बड़े भाई सत्य के साथ खेलने के लिए उत्सुक था, रहने और खेलने से वह धीरे-

धीरे सामान्य स्थिति में आ जाएगा। अतः ये लोग सत्य को लेकर घर वापस आगए। किन्तु अब सत्य के वही सब साथी, जिन्हें लेकर स भगवान की लीला के भजन गाता हुआ एक गाँव से दूसरे गाँव फिरा करता था, सत्य के नेत्रों में एक निषेध-सूचक चमक देखते और मुख से अज्ञात सुदूर एक की धुर सुनते। पितामह कोंडमा राजू ने पुराणों और योगवशिष्ठ से अनेक ऐसी कहानियाँ सुनाई, जिससे माता-पिता की व्यग्रता शाँत हो सके। प्रसिद्ध संस्कृत ग्रंथ योगवशिष्ठ में इसका उल्लेख है कि लगभग इसी आयु में राम को भी ऐसी ही स्थिति, ऐसी ही आंतरिक निष्क्रियता से, गुजरना पड़ा था। “उनका शरीर अत्यन्त क्षीण और दुर्बल हो गया। उनका मन एक विचार से दूसरे विचार की ओर दौड़ता था और वे भित्ति चित्र के समान मौन और शान्त बैठे रहते थे।" कोंडमा राजू ने राम की इस दशा का वर्णन करने वाली पुराण की उन दो पंक्तियों को पढ़कर सुनाया। “कि संपदा किं विपदा, किं गेहने किं इंगितैः सर्वमेवासदित्युक्तत्वा तूष्णीमेकोपंतिष्ठते”. अर्थात् सम्पत्ति क्या है?, विपत्ति क्या है? घर क्या है? इच्छा क्या है? ये सब केवल मिथ्या है— ऐसा कहकर वे एकाकी और मौन बैठे रहे।

कोंडमा राजू जो सदैव अध्यात्म में रुचि रखते थे, इन शब्दों को पढ़ कर शान्त और सन्तुष्ट हुए पर दूसरे लोगों को इससे कोई संतोष न हुआ। उस गूंगे बालक के चारों ओर जो लोग उसे घेर कर बैठे थे, उन्होंने पेड्डा बैंकपा राजू को भला-बुरा कहना शुरू किया कि वे बच्चे के कष्ट के प्रति अत्यन्त लापरवाह और उदासीन हैं। बीमारी का आरम्भ क्यों और कैसे हुआ, इस

सम्बन्ध में दिये गए उलाहनों को बेचारी ईश्वराम्मा सहन न कर सकी और साथ ही वह बीमारी आगे क्या रूप लेगी, इस विषय पर भी लोगों की तरह-तरह की भविष्यवाणियों से घबराकर उन्होंने अपने को सबसे अलग एक कमरे में बन्द कर लिया और पूर्ण हताश होकर भगवान से प्रार्थना करने लगीं।

सत्य यद्यपि इन सब गड़बड़ियों के प्रति उदासीन था जो उसी के कारण उत्पन्न हो रही थीं, वह उनसे अनजान न था। कभी-कभी वे गहरी करुणा और उपहास की सीमा को छूने वाली सीमातीत सहन शीलता का अनुभव करते थे। उनको घेर कर बैठे हुए लोगों में जब कोई यह दावा करता कि वह सत्य को अच्छा कर देगा, तो उसका चेहरा एक क्षण को चमक जाता। समय-समय पर सत्य के अन्तर में स्थित गुरु तत्व काव्यमय रूप धारण कर लेता, मानों प्रत्येक व्यक्ति को यह उपदेश दे रहा हो कि वे स्वार्थ-साधन से बचें और अपने में आत्म-संयम और आत्म-सम्मान उत्पन्न करें। ये भावोद्गार मानों उसकी अत्यधिक भावशून्य मनःस्थिति के ऊपर उसके संकल्प की विजय के चिन्ह थे। सत्य की बहनें जो सदैव उसके समीप ही रहती थीं और व्यग्रता से ऐसा अवसर खोजा करती थीं कि उसे कुछ खिलाया-पिलाया जा सके, उसके काव्यमय इन उद्गारों को लिख लेती थीं. किन्तु ईश्वराम्मा उन्हें सदैव ऐसा करने के लिए पुत्रियों को मना करती थी. इस भय से कि कहीं ये पंक्तियाँ बड़े-बूढ़ों के पास तक न पहुँच जायें और उनके आसपास जो लोग उन्हें तरह-तरह की सलाह देकर भड़का रहे थे, वे अपने को ही इन रचनाओं का लक्ष्य समझ कर और क्रुद्ध न हो जायें।

किन्तु शीघ्र ही धैर्य का बाँध टूट गया। शेषमा राजू ने यह संदेश भेजा कि सत्य पर्याप्त लम्बे समय • विद्यालय से अनुपस्थित है। सत्य के पिता, चाचा तथा गाँव के बड़े-बूढों को चिंता ने घेर लिया। कुछ लोगों ने स्थान परिवर्तन की राय दी। ऐसे लोगों के इरादे जो उन लोगों को धैर्य रखने, तीर्थयात्रा करने, प्रायश्चित करने तथा झाड़-फूँक आदि की सलाह देते थे, संदेहास्पद थे। इसमें वे लोग भी थे जो राजू परिवार को एक सनकी और मानसिक रूप से अपंग सदस्य के कारण उजड़ता हुआ देखने में रुचि रखते थे। परिवार के सदस्यों की एक गुप्तसभा ने यह निर्णय लिया कि सत्य पर किसी प्रेतात्मा का प्रभाव है, और यह बात कादिरी के एक अनुभवी ज्योतिषी को दिखाई गई सत्य की जन्मकुण्डली से भी पुष्ट होती है। अतः। कादिरी के समीप के एक गाँव ब्राह्मपल्ली में रहने वाले एक प्रसिद्ध ओझा के पास सत्य को ले जाया गया। कोंडमा राजू ही एक मात्र ऐसे सदस्य थे जिन्होंने इसका विरोध किया और यह राय दी कि थोड़े दिन और देखना चाहिए। जहाँ तक सत्य की माँ का प्रश्न था जो आशा और निराशा के बीच झूल रही थी, किसी ने उसकी राय जानना आवश्यक न समझा।

ओझा (मंत्र-तंत्र प्रयोग वाला) ने जब यह सुना कि सत्य को उसके पास लाया जा रहा है, तो उसने अपनी बहादुरी की बड़ी डींग हाँकी। वह बोला, “मैं तो चण्डी, चामुण्डी, सिंही, वाराही किसी भी देवी को जगाकर इसका भूत तो दो मिनट में भगा दूँगा। कोई भी भूत हो, हिन्दू या मुसलमान,

पाशविक या दानवी, मंत्रों की शक्ति के सामने ठहर नहीं सकता। वेंकपाराजू और सत्य के साथ ईश्वराम्मा और उसकी दोनों बहनें गयीं। उन्हें बिठाकर जब बैलगाड़ी झटके दे देकर आगे बढ़ने लगी तो वहाँ पहुँच कर सत्य के भाग्य में क्या बदा इसकी कल्पना से व्याकुल स्त्रियों को पिता ने समझाया और आश्वासन दिया। उन्होंने विश्वास पूर्वक कहा कि यह व्यक्ति अपनी इष्ट देवी चण्डी या चामुण्डी को प्रसन्न करने के लिए एक किसी पक्षी की बलि देगा और उसके रक्त से सत्य के मस्तक पर तिलक लगायेगा, बस और यह कष्टप्रद कथा यहीं समाप्त हो जायेगी। सत्य पक्षी की बलि को सुनकर एक दम चिल्ला पड़ा, पर उनके पिता ने उसे डॉटकर, चुप करा दिया।

ब्राह्मणपल्ली का यह तांत्रिक अपनी कठोर और किटकिटाती हुई। आवाज और उलझे हुए बालों सहित भयंकरता का साक्षात रूप था। उसके नेत्र जलते हुए अंगारों की तरह लाल थे। उसके एक हाथ में लोहे का एक भारी चिमटा था और प्रेतात्मा के विरुद्ध मंत्रोच्चार करते हुए वह हर बार उसे बड़ी जोर से पृथ्वी पर दे मारता था। उसे पटकने की धमक बड़ी भयंकर थी और उसके फलस्वरूप जो कम्पन और थरथराहट पैदा होती थी, उसके कारण पुट्टपर्ती का परिवार तो मारे डर के कॉप गया। ऐसे दैत्य के हाथों सत्य की क्या दशा होगी, यह सोच कर ही वे मन ही मन घबरा उठते। किन्तु सत्य के चेहरे पर भय की एक रेखा तक न थी। उसकी सौभ्यता को देखकर घर के लोगों का भी ढाढ़स बढ़ता। उन्होंने यह निश्चय किया कि

जब तक सत्य प्रेतात्मा से मुक्त नहीं हो जाता और अपने सामान्य रूप में नहीं आ जाता, वे वहीं ठहरेंगे।

नौ वर्ष उपरान्त जब मैं पुट्टापर्ती में था, स्वामी ने वेंकट गिरि के पंडित राम शर्मा को एक 'बर्र कथा' सुनाने की आज्ञा प्रदान की। यह एक काव्यमय वर्णन था, जिसमें बाल-साई की कहानी भक्तों के एक छोटे से समुदाय को सुनाई गई थी। जब काव्य पाठ में ब्राह्मणपल्ली का उल्लेख आया और उस भयंकर दृश्य का प्रसंग आया तो स्वामी ने शर्मा से उन पंक्तियों को छोड़ देने को कहा, क्योंकि उनका सुनना मात्र ही बड़ा कष्टप्रद था। मैंने साहस बटोरते हुए भगवान से कहा, "स्वामी फिर आपने वह सारी यंत्रणा क्यों सहन की ?" स्वामी ने उत्तर दिया, "मेरा यह संकल्प था कि लोग यह जानें कि इस शरीर को कुछ भी हो पर उसका मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तव में मैं मनुष्य को इस सत्य की याद दिलाने ही तो आया हूँ, क्योंकि वह इसे भूल गया है। जब तक कि मैं स्वयं वह करके न दिखाऊँ जैसा उन्हें करना चाहिए, उनमें विश्वास कैसे उत्पन्न होगा ?"

तांत्रिक ने सत्य के शरीर से प्रेतात्मा को भगाने के लिए सत्य को कोड़े से पीटना शुरू किया। सत्य के माता-पिता यह दृश्य सहन न कर सके। ईश्वराम्मा ने गिड़गिड़ाकर तांत्रिक से इसे बन्द करने की प्रार्थना की। पर तांत्रिक ने अपनी पूजा और उपचार को आधे बीच में रोकने से इन्कार कर दिया। "तुम सत्य को ले जा सकते हो, पर इसमें स्थित पिशाच पर मेरा अधिकार है। जो मेरा है, मुझे देकर जो तुम्हारा है, उसे तुम ले जा सकते

हो।" उसने चिल्लाकर कहा। इस उपचार में सत्य पूरा सिर मुंड़वा दिया गया और मुँड़े हुए सिर की खाल पर एक गहरा गुणा के चिन्ह (कास) के आकार का एक धाव किया गया। उस घाव पर नीबू का रस निचोड़ा गया और उसके सर पर घड़ों ठंडा पानी डाला गया। तत्पश्चात् एक ऐसा लेप, जिसकी असह्य पीड़ा से रोगी तिलमिला उठे, उसकी आँखों में लगाया गया। सत्य की आँखें खून बरसाने वाली बिल्कुल लाल हो गई; मर्मान्तक पीड़ा से उसका सारा चेहरा सूज गया। किन्तु यंत्रणा के इन कठिन क्षणों में भी सत्य नितान्त शांत रहा, मानों अपने चारों ओर होने वाले कार्य-कलाप से वह बिल्कुल अनभिज हो। ईश्वराम्मा के सहन की सीमा का बांध टूट गया। एक ओर उनका पुत्र था, जिसका शरीर भूख से पीड़ित था, नेत्र चोट खाए हुए। थे और घाव असह्य पीड़ा से जले जा रहे थे तो दूसरी ओर वह जादूगर फिर भी यह आश्वासन नहीं दे सकता था कि सत्य ठीक ही हो जाएगा। उन्हें लगा कि इस दुर्दशा के बाद भी सत्य यदि वैसे का वैसा ही रहा, तो इससे उसे जैसा है, वैसा ही रखना लाख दर्जे अच्छा है। वह करता ही क्या है, सिवाय इसके कि वह कभी संस्कृत और कभी तेलुगू में रचनायें सुनाकर कभी बहुत हंसाता है और कभी बहुत रुलाता है। बड़ी अनुनय विनय के बाद वे लोग सत्य को उस तांत्रिक के पंजे से छुड़ा सके। उसने एक ही शर्त पर सत्य को घर ले जाने की अनुमति दी कि छः महीने के अन्दर ही उसे फिर वहाँ वापस लाया जाए अन्यथा । सौभाग्य से उसने यह नहीं बतलाया कि इसकी अवहेलना करने का क्या परिणाम होगा। उसने इस बात पर भी बल दिया कि अगली बार सत्य की बड़ी बहन

वैंकम्मा को उसके साथ न लाया जाए। क्योंकि वह अपने भाई द्वारा चुपचाप दिए हुए आदेशों के अनुसार सत्य की आँखों में एक मलहम लगाती जाती थी, जिससे तांत्रिक के सारे प्रयत्न विफल हो जाते थे।

पुट्टापर्ती में ईश्वराम्मा ने अपने पुत्र को समझाने का प्रयत्न किया और यह भी बताया कि उसने लोगों के मन में क्या-क्या भय और शंकायें उत्पन्न की हैं। "तुम्हारी बीमारी से सभी चिन्तित हैं। जब तुम शांत रहते हो. ब्राह्मणपल्ली का वह ओझा कहता है कि तुम्हें पत्थर बुखार है। जब तुम थोड़ा तेज चलने लगते हो तो यह कहता है तुम्हें 'हरिण' बुखार है। यह सब बकवास है। मैं जानती हूँ, तुम्हें बुखार आदि कुछ भी नहीं है। जब तुम एक विद्वान की तरह बात करने लगते हो तो लोग कहते है कि तुम पर किसी आत्मा का प्रभाव है। जब तुम अपने चाचा अथवा चचेरे भाइयों के दोष निकालने लगते हो, तो वे यह कहते हैं कि यह तुम नहीं हो सकते। कोई दूसरा तुम्हारे माध्यम से बात करता है। जब तुम वैकम्मा से कहते हो कि वह रात में आकाश की ओर देखे और उसे देवता जाते हुए दिखाई पड़ेंगे, तो लोग कहते हैं कि तुम पागल हो गये हो। भैया सत्य, राजू परिवार के लड़के की तरह सीधे-सादे बन जाओ। बेटा! अपने भाई के पास वापस चले जाओ और स्कूल में पढ़ो। एक ब्रह्मज्ञानी की तरह, गुरु की भाँति व्यवहार म करो। केवल तुम्हारी निन्दा करने के लिए लोग तुम्हें ऐसा कहते हैं।" ऐसा कहते-कहते उनका गला भर आता। पर उनके सारे तर्क, सारा समझाना-बुझाना बेकार जाता। सत्य अपनी सत्ता के प्रति अटल था।

शुभ चिन्तकों द्वारा नित्य प्रति उपचार के लिए नए-नए नुस्खे दिये जाते। ईश्वराम्मा अत्यन्त आशा से प्रत्येक उपाय को सुनती। एक प्रस्ताव आया कि सत्य को गोरंटला ले जाया जाए। वहाँ एक वैद्य रहता था जो निश्चय ही सत्य को इन मतिभ्रमों से छुटकारा दिला सकता था। सत्य के साथ बैलगाड़ी भर कर लोग चले। उसकी माँ भी उसमें घिरी बैठी थीं। एकाएक बैलों का चलना रुक गया और वे अड़कर एक स्थान पर खड़े हो गये लोग गाड़ी से उतर-उतर कर उसे धक्का देने लगे। पर बैल थे कि चलने का नाम ही न लेते थे। अन्त में हार कर उन्होंने धक्का देना बन्द कर दिया और गाड़ी लौट कर वापस पुट्टापर्ती चली आयी।

---

5. घोषणा

परिवार में आशा की एक किरण फिर जगी। पेनुकोण्डा से, जो उन दिनों ताल्लुके का प्रमुख स्थान था, कृष्णामाचारी नामक एक विद्वान् वकील सत्य को देखने आए। उनके पूर्वज पुट्टापर्ती के अत्यन्त सम्भ्रान्त निवासी थे और उनका बाल्यकाल भी वहीं बीता था। सत्यनारायण राजू के अति आध्यात्मिक वचनों और व्यवहार के विषय में सुनकर वे स्वयं

वास्तविकता का पता लगाने आए थे। वे आये, उन्होंने देखा और उस विद्वान बी॰ ए॰ बी॰ एल॰ वकील ने अपना निर्णय सुना दिया। सत्य और उसके पिता उनके साथ थे। ईश्वराम्मा और उनकी लड़कियाँ दरवाजे के पीछे कान लगाये सुन रही थीं। एक गम्भीर निष्कर्ष निकालते हुए उन्होंने कहा, "एक अत्यन्त असाधारण शक्ति वाला राक्षस सत्य में प्रविष्ट हो गया है। मनुष्य के मंत्र-तंत्र इसमें कुछ नहीं कर सकते। यहाँ तक कि साधारण देवता तक उस राक्षस का कुछ नहीं बिगाड़ सकते। केवल नृसिंह भगवान में ही वह शक्ति है कि वह डराकर उस राक्षस को सत्य के शरीर से निकाल दें और उसे उस राक्षस के प्रभाव से मुक्त कर दें। अतः इसे घटिका चलम् में स्थित विशाल नृसिंह-मंदिर ले जाओ, जहाँ उनकी कृपा से सैकड़ों ऐसे रोगी अच्छे हो गए हैं।" वेंकप्पा ने इस विचार का स्वागत किया, क्योंकि उन्होंने नृसिंह अवतार के विषय में सब कुछ पढ़ रखा था। इतना ही नहीं, गाँव में होने वाले नृसिंहावतार नाटकों में उन्होंने नृसिंह के क्रोध के साक्षात् दर्शन भी किए थे। वह घटिका चलम् पहुँचने के लिए कहाँ किस मार्ग से जाना होगा, यह सब जानकारी लिखने वाले थे कि सत्य ने हाथ उठाकर कहा, "कृष्णामाचारी जी! आपकी दी हुई सम्मति तो बड़ी हास्यास्पद है। आपके विचार से घटिकाचलम् मंदिर में किसका वास है? मेरा और आप चाहते हैं। कि ये लोग मुझे मेरे ही पास ले जायें ?"

ईश्वराम्मा में यह सुनकर उत्साह की एक लहर-सी दौड़ गयी। किन्तु वह तो मेघों से घिरे हुए आकाश में एक विद्युत रेखा के समान थी। सत्य की मनःस्थिति आज भी अपूर्व सूचनीय थी। वह कब क्या कहने और करने

लगें, इसका किसी को आभास न होता था। जीवन किसी प्रकार चला जा रहा था। अधिकांश समय नीरसता में ही बीतता था। हाँ, कभी-कभी उसमें नाटकीयता आ जाती थी। तभी चरम सीमा आ पहुंची। वैकपा इसके लिए उत्तरदायी थे। पेनुकोण्डा से आए हुए उस प्रतिष्ठित व्यक्ति को जो अशिष्ट उत्तर उनके पुत्र ने दिया, उससे वे बड़े उद्विग्न थे। सत्य के चारों और लोगों की भीड़ देखकर उनका क्रोध भड़क उठा। “गाँव की सड़कों पर घूमने वाला यह शरारती छोकरा अपने को नृसिंह कहने का साहस कैसे करता है? यह कहाँ की शिष्टता है? कैसी उद्दण्डता है। मैं इसे अब अधिक सहन नहीं कर सकता।" इतना कह कर वह भड़क उठे। अपने बाबा के बरामदे में भीड़ इकट्ठा करके यह लड़का क्या कर रहा है?" उन्होंने एक बड़े-मोटे और भयानक बांस के डण्डे को हाथों में पकड़ा। उनकी पत्नी ने इसके पहले कभी भी बैंकपा को इतना विकट क्रोध में नहीं देखा था। वे बड़ी जोर से चिल्लायी।

उस भीड़ में एक आदमी बैकपा की ओर मुड़ा और बोला, "सत्य जब भी अपना हाथ घुमाता है, न जाने कहाँ से उसके हाथ में निसरी की इली आ जाती है। वह फूलों में भी हुई माला भी ला देता है। देखो ये उसने मुझे दिये है। हर एक को कुछ न कुछ मिला है।" नेकपा क्रोध से पगल हो उठे "शक्कर फूल! धोखेबाज कहीं का। यह सब उसके हाथ की चालाकी है, वे चिल्ला उठे। "बस अब यह सब ही चलेगा. यह अखिरी बार था", इतना कहते हुए ने सत्य को और बढ़े। भीड़ के एक लिनारे ईश्वराम्मा अकेली खड़ी थी।

इसके पहले कि वह डंडा सत्य के सिर पर पड़े, उन्होंने अपनी दोनों आँखें कसकर बन्द कर लीं। ये माम देवताओं से प्रार्थना करने लगी।

वेंकपा सत्य के पास पहुंचे और बोले, “बन्द कर यह सब नाटक। बता मुझे तू है कौन? कोई प्रेत है. कोई शैतान है या कोई पागल है? क्या दू परमात्मा है? तू नृसिंह है? नारायण है? कौन है? बोल" सत्य ने अत्यन्त शांतभाव और निर्भीकता से कहा, "मैं साई बाबा हूँ।" ईश्वराम्मा की साँस फूल गयीं। यह तो कोई ऐसी आत्मा है, जिसे कोई नहीं जानता। “साई बाबा ?” उसके पिता ने पूछा "साई बाबा" लाठी उसके हाथ से गिर गई थी, पर वे क्रोध में बोलते ही गए, “तू चाहे साई बाबा हो या हाई बाबा हो। हमें इससे कोई सम्बन्ध नहीं। लेकिन तू इस लड़के को छोड़कर यहाँ से चला जा।” स्पष्ट ही वेंकपा अपने विचार से अपने पुत्र के शरीर में निवास करने वाली आत्मा से बात कर रहे थे। "नहीं" सत्य ने बिना विचलित हुए उसी शांत भाव से उत्तर दिया। “मैं आया हूँ, क्योंकि वेंका अवधूत तथा अन्य संतों ने मेरे आने लिए प्रार्थना की थी। मैं तुम्हें आशीर्वाद दूँगा और तुम्हें जो वस्तु भी कष्ट दे रही है, उस सबको मिटा दूँगा। प्रत्येक गुरुवार को मेरी पूजा करना। अपने मन को और घरों को स्वच्छ और पवित्र रक्खो।" उपस्थित जन समुदाय को श्रद्धा और आदर की जिस अनियंत्रित लहर ने लपेट लिया, उसे रोकने में कोई भी समर्थ न था। क्रोधी पिता स्वयं ही उस श्रद्धालु जन-समुदाय में लगभग मिल गये थे।

किन्तु परिवार के तथा पुट्टापर्ती के प्रत्येक जिज्ञासु स्त्री-पुरुषों के समक्ष अब एक नई समस्या उपस्थित थी- ये साई बाबा कौन हैं और क्या है? कुछ ही समय में गाँव में लोगों को यह ज्ञात हुआ कि पेनुकोण्डा में जो सब-रजिस्ट्रार है, वे साई बाबा के अनुयायी हैं। वे प्रत्येक गुरुवार को साई बाबा की विशेष पूजा करते हैं और उस समय सैंकड़ों लोग उनके घर पर इकट्ठे होते हैं। वेंकपा ने सत्य को वहाँ ले जाने का निश्चय किया। यदि लड़का साई बाबा का ढोंग रच रहा है तो सब-रजिस्ट्रार तो जान ही जायेंगे और उन लोगों सारे सदेहों का निवारण हो जाएगा। ईश्वराम्मा की यह हार्दिक इच्छा थी कि अब यह गड़बड़ी और विवाद समाप्त हो जाए।

परन्तु यह कैसी बात? सत्य घाटिका चलम् में नृसिंह भगवान भी है। और पेनुकोण्डा में साई बाबा ? सत्य ने सब-रजिस्ट्रार से प्रश्न किया, "तुम मुझे अपने साई बाबा को पहचान नहीं सकते। वर्षों तुमने मेरी पूजा की है और मैं यहाँ तुम्हारे सामने उपस्थित हूँ। लो, यह ऊदी लो।" इतना कहकर सत्य ने अपनी हथेली घुमाई और मुट्ठी भी गर्म विभूति उत्पन्न करके उन्हें ठीक उसी प्रकार दी, जिस प्रकार शिरडी के साई बाबा अपने प्रिय भक्तों को दिया करते थे। किन्तु वह व्यक्ति इतना डरा हुआ था कि वह पूरा हाथ न फैला सका और सत्य ने सारी विभूति शिरडी साई बाबा के चित्र के सामने बिखेर दी। नारद ने भक्ति सूत्र में कहा है कि अनन्य भक्ति में व्यक्ति अहंकार-शून्य हो जाता है। किन्तु सब-रजिस्ट्रार अपने को बहुत कुछ। समझता था। अतः वह इस सत्य को स्वीकार न कर सका। उसने यह कह कर कि सत्य को भ्रम की बीमारी है, परिवार को वापस पुट्टापर्ती भेज

दिया। सत्य ने निर्वैयक्तिकता (व्यक्तित्व रहित होना) का बाना त्याग दिया और उसके बात व्यवहार समान्य हो गया।

निराशा के दौरे समाप्त हो गए। ऐसा प्रतीत होता था कि अब वह सब प्रकार से प्रेम और सहयोग देने के लिए कृत-संकल्प था। अतः ईश्वराम्मा तथा सुब्बामा को इस बात की पूरी छूट मिल गयी कि वे सत्य को अपने मनोनुकूल स्वादिष्ट भोजन खिलाकर आनन्दित हों। एक दिन पेनुकोण्डा से राजू परिवार में कोई व्यक्ति आया। सत्य द्वारा किया हुआ यह दुस्साहसी दावा कि वह शिरडी का साई बाबा है, सुनकर उसने क्रोध भरी दृष्टि से सत्य की ओर देखा और इसे सिद्ध करने की चुनौती दी। “हम जानते हैं कि तुम कौन हो। तुम वेंकपा और ईश्वराम्मा से उत्पन्न उनके पुत्र हो, जरा से बच्चे। किन्तु यदि तुम वही साई बाबा हो, जिसकी पूजा सब-रजिस्ट्रार करता है, तो हमें इसका अभी प्रमाण दो।” अपरिचित व्यक्ति का उद्दण्डता भरा स्वर पूरे घर में फैल गया और उसे सुन कर ईश्वराम्मा बाहर आईं। सत्य ने बिना किसी घबराहट के कहा, "मैं तुम्हें प्रमाण दूँगा।” उसने कहा "मेरे पास कुछ फूल लाओ।" उस व्यक्ति ने ईश्वराम्मा से कहा, “तुम स्वयं जाकर फूल लाओ।” ईश्वराम्मा भय से आतंकित हो गयी और ले आयीं। एक क्षण में सत्य ने उन फूलों को फर्श पर बिखेर दिया, "वह देखो। मैं वहीं हूँ।" उन सब ने देखा कि सारे फूल सिमट कर इस प्रकार सज गए कि उनसे स्पष्ट तेलुगू शब्दों में 'साई बाबा' बन गया।

साई बाबा ? मुसलमान या हिन्दू ? ब्राह्मण या क्षत्रिय ? ईश्वराम्मा ने सुब्बामा को अपने एक देखे हुए स्वप्न के विषय में बतलाया। स्वप्न में उन्होंने सत्य को एक वृद्ध दाढ़ी वाले पुरुष के रूप में देखा। उन्हें एक दूसरे अवसर पर याद आया कि सत्य ने एक बार एक वृद्ध फकीर के विषय में बताया था। यह फकीर उसे रोटियाँ खिलाया करता था। ये समस्या मूलक घटनायें अब धीरे-धीरे एक रहस्य का रूप ले रही थीं। सुब्बाम्मा को, जिनका नाम ही 'शुभ अम्मा' था, परिस्थिति को सहज ही समझने में देर नहीं लगीं। उन्होंने चिंतातुर ईश्वराम्मा को समझाया कि वे अपने पुत्र की इन 'नटखट क्रीड़ाओं से भटकें नहीं। क्या कृष्ण भी इतने ही नटखट न थे, कभी अपने को हरि बतलाते और कभी गोपाल ? किन्तु दोनों महिलाओं को इस बात से संतोष था कि सत्य अब फिर से अधिक क्रियाशील रहने लगा था। उसने फिर से घूमना-फिरना आरम्भ कर दिया था, यद्यपि अपने पूर्व सहचरों के साथ नहीं। वह अब अकेला ही पहाड़ियों के ऊपर जाता और घण्टों चट्टानों पर मौन बैठा रहता। सुब्बाम्मा, जो निस्संतान थीं और जिन पर घर-गृहस्थी की झंझटों का बोझ भी अपेक्षाकृत कम था, अपने प्रिय गोपाल को अपने हाथों से खिलाने के लिए उन सभी जगहों पर, जो चित्रावती के तट के आसपास थे और सत्य को प्रिय थे, उसे खोजा करतीं।

शेषमा राजू पन्द्रह दिनों के लिए अपने घर पुट्टापर्ती आए थे। मृत्य का व्यवहार अब अपेक्षाकृत मर्यादित था। उसने अपना जो नाम भी बतलाया था, वह भी ठीक ही था। (किसी सुदूर स्थान के सामान्य ख्याति प्राप्त संत का अवतार बतलाना, अपने को नृसिंह भगवान का दैवी अवतार बतलाने

से तो कहीं बेहतर था।) शेषमा राजू को यह विश्वास था कि एक बार उर्वा कोण्डा पहुँच कर सत्य का रहा सहा यह भ्रम भी टूट जाएगा और वह भी दूसरों की तरह एक सामान्य बालक हो जाएगा। शिक्षक के नाते 'डण्डे के उपयोग से बड़े-बड़े रोग भाग जाते हैं। इस मान्यता में उनका अटूट विश्वास था, पर कठिनाई यह थी कि परिवार में ईश्वराम्मा की ही चलती थी। इसलिए वह लगातार अपने माता-पिता के कानों में एक ही बात डालते रहे कि सत्य को वापस स्कूल भेज दिया जाए और बजाय इसके कि वह अपना समय पहाड़ी पहाड़ी फिरने, फूल बिखेरने और मनगढ़न्त कहानियाँ सुनाने में बिताये, उसे अधिक लाभप्रद कार्यों में लगाना चाहिए। अंत में वे सहमत हो गए और सत्य अपने भाई साथ उर्वा कोण्डा चला गया। ईश्वराम्मा उन्हें भेजने चित्रावती के उस पार तक गयीं और उन्हें बिदा करके तभी लौटी, जब वे लोग कर्नाटनगपल्ली के समीप पहुँच गए।

---

6. माया रूपी माँ

सत्य से अलग होने के बाद ईश्वराम्मा ने अपने मन में फिर ऐसी छवि अंकित की जैसा वह सत्य को देखना चाहती थीं। फिर भी वे अपने मन से सत्य की वह शांत और एकाकी छवि-जैसा सत्य बनना चाहता था-न मिटा सकीं। कुछ समय बाद ही उन्हें सत्य के विषय में और समाचार मिले। उन्हें पता चला कि गुरुवार की एक शाम को, जब सत्य साई बाबा के रूप में अभिनय कर रहा था, उसने वहाँ उपस्थित एक बड़ी भीड़ के सामने शेषमा राजू को डांट दिया। वह बोला, "वे मुझ पर विश्वास नहीं करते"। दण्ड से बचना कठिन था, यद्यपि ईश्वराम्मा ने सत्य को इस परिस्थिति से बचाने के लिए मन ही मन बड़ी प्रार्थनायें कीं और ऐसा ही हुआ। शेषमा ने सत्य की कही हुई बात को न केवल भुला दिया, बल्कि बजाय सत्य को सजा देने के उन्होंने उसके साथ एक नया बर्ताव किया। वह सत्य को विजय नगर साम्राज्य के अवशेषों के बीच बहती हुई तुंगभद्रा नदी के किनारे पिकनिक पर ले गए।

किन्तु माता-पिता को अभी कई अन्य और चमत्कार देखने थे और उनसे भ्रमित होना था। सत्य ने तुंगभद्रा के किनारे बसे हुए हम्पी तथा उसके समीपवर्ती नगर हासपेट में जो चमत्कार दिखाये, उनसे उनके प्रशंसकों और उपासकों की संख्या और भी बढ़ गयी, और जब वह लौटे तो पहले से कई गुने उनके भक्त बन गए। जिस दिन वह वापस लौटे, उसी दिन उन्होंने अपनी पुस्तकें और साथी त्याग दिए और एकांतवासी हो गए। उन्होंने स्पष्ट घोषणा कर दी कि घर और परिवार अब उन्हें बंधन नहीं रख सकता।

आठवीं शताब्दी के महान संत श्री शंकराचार्य ने मातृपंचकम के नाम से पाँच श्लोकों की रचना की। शंकराचार्य वेदान्त-दर्शन के अधिष्ठाता और प्रतिपादक थे। उन्होंने तत्कालीन मत-मतान्तरों का संयोजन और समाहार किया और उसे एक सुनियोजित् धर्म, प्रज्ञान और शक्ति का स्रोत बनाया। इन पाँच श्लोकों में भी शंकराचार्य जी ने अपनी माता के प्रेम की जिस स्थिति का वर्णन किया है, कुछ ऐसी ही स्थिति ईश्वराम्मा के सम्मुख थी।

वे दोनों मातायें थीं, और अपने पुत्रों की संसार-त्यागने की घोषणा को सुनकर दोनों की मनोः स्थिति एक-सी थी:

“गुरुकुल उपासर्थ्य स्वप्न काले दृष्ट्वा यति समुचित वेषं प्रारुदोमां त्वमुच्चया गुरुकुलमति सर्वं प्रारुदस्ते समक्षम्।”

"मेरी माता ने स्वप्न में मुझे ऐसे वस्त्र पहने हुए देखा, जो सन्यासी पहनते हैं। उसने उस स्वप्न को सच मान लिया। वे घर से दौड़ते-दौड़ गुरुकुल तक, जहाँ मैं अध्ययन करता था, आयीं और व्याकुल होकर विलाप करने लगी और उनके साथ समस्त गुरुकुल भी रोने लगा। ”

दोनों परिस्थितियों में अन्तर इतना ही था कि शंकर की माता ने स्वप्न देखा था, किन्तु जब किसी व्यक्ति ने स्वामी को इस रूप में देख कर उनसे बतलाया तो वे पूरी जाग्रत अवस्था में थीं। दूसरे शंकराचार्य की माँ दौड़ती

हुई गुरुकुल गयीं और वहाँ जाकर अपने पुत्र को अपनी बाहों में भर लिया। किन्तु ईश्वराम्मा को परिवार के संस्कार और स्थान की दूरी दोनों बाँधे हुए थे। वे अपने पुत्र को बचाने के लिए दौड़कर विद्यालय नहीं जा सकती थीं। शंकर के समान ही सत्य अपने पथ से लौटने वाला न था।

अशुभ समाचार शीघ्र पहुँचते हैं। आते-आते इन समाचारों में बहुत कुछ असत्य भी सम्मिलित हो जाता है। पेड्डावेंकपा राजू के पुत्र एवं उर्वाकोण्डा हाई स्कूल के तेलुगू पंडित शेषमा राजू के भाई से सम्बन्धित समाचार पहले अनंतपुर पहुँचा और फिर वहाँ से पच्चीस मील दूर स्थित धर्मावरम् पहुँचा। फिर वहाँ से बाईस मील दूर बुक्कापटनम् और फिर वहाँ से इस मुंह से उस मुँह, इस कान से उस कान होता हुआ हर्ष और विषाद बिखेरता पुट्टापर्ती पहुँचा। तत्पश्चात राजू परिवार में और फिर अपने प्रिय सत्य का कुशल-मंगल सुनने के लिए सदा उत्सुक ईश्वराम्मा और सुब्बामा के कानों तक पहुँचा। उस पूरे समाचार में तथ्य की बात यह थी कि सत्य ने विद्यालय में पढ़ना छोड़ दिया है। पर यह समाचार भी इतना अतिशयोक्ति और उत्तेजना से पूर्ण था कि ईश्वराम्मा अत्यंत गहरी चिंता में डूब गयीं।

बुक्कापटनम् में प्रत्येक सोमवार को लगने वाला साप्ताहिक बाजार सभी प्रकार के समाचारों का केन्द्र था और आस-पास के बीस गाँवों को उत्तेजनापूर्ण तथा रोमांचक समाचार वहीं से प्राप्त होते थे। किन्तु यह केन्द्र. सत्य की अपेक्षा झूठ और बंधुत्व और सद्भावना की अपेक्षा कटुता

और बिखराव में अधिक रुचि रखता था। जहाँ किसी अफवाह को यहाँ से बल मिला, उसके पर निकल आयें और फिर तो बिना किसी आधार से अपने ही मन से तरह-तरह की मनगढ़ंत बातें फैलाकर वह भय, वेदना और निराशा प्रदान करती हुई एक तूफान-सा ला देती। उस सोमवार को जो लोग बाजार से पुट्टापर्ती लौटे, उन्होंने अफवाह के दरबे उस गाँव के शांत नीलाकाश में उन्मुक्त समाचार पक्षी उड़ाना शुरू कर दिए। “सत्य शिरडी भाग गया है...सत्य बालयोगी बन गया है...सत्य ने अज्ञातवास ले लिया है...सत्य एक ऐसे रथ में बैठ गया जो देखते-देखते पृथ्वी से उठकर न जाने कहाँ चला गया...सत्य जहाँ खड़ा था, वहाँ केवल चमेली के फूल पड़े थे...सत्य अब इस संसार में नहीं है..."

पुट्टापर्ती विभिन्न उलझनों के भँवर में फँस गया। जितने मुँह उतनी बातें। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से पूछता, "किसे सच माना जाए? ये हुआ क्या ? शेषमा राजू चुप क्यों है?' ईश्वराम्मा और सुब्बामा घंटों बैठकर चुपचाप रोती रहीं। तब वेंकपा राजू ने कंधे पर कपड़ों का एक झोला टाँगते हुए कहा, “मैं सच्चाई का पता लगाने जाता हूँ।” ईश्वराम्मा के भाग्य से उनमें उन्हें वहाँ छोड़ने का मन नहीं हुआ। वे ईश्वराम्मा को भी साथ लेते गए।

जब वे दोनों अनन्तपुर के बस स्टैंड पर जाने के लिए खड़े थे, किसी व्यक्ति ने जो बुक्कापटनम् की बस की राह देख रहा था, वेंकपा राजू को पहचान लिया और उन्हें एक पत्र दिया। पत्र शेषमा राजू का था। व्यग्रता से पिता ने उस पत्र को आदि से अन्त तक पढ़ा। फिर कुछ संतुष्ट से दिखे। समाचार

इतने बुरे नहीं थे। वे अत्यन्त आतुर ईश्वराम्मा की ओर घूमे और कहा, "लड़का जीवित है। वह बीमार भी नहीं है और वह अभी भी उर्वाकोण्डा में ही है। वह भाग गया था, पर अब वापस आ गया है। हाँ, वह घर में रहता ऐसे है जैसे कोई अपरिचित लगता है कि उसने स्कूल में यह घोषित कर दिया कि वहाँ उसके पढ़ने के लिए कुछ है ही नहीं। उसने अपनी पुस्तकें घर के चबूतरे पर फेंक दी और आबकारी इंस्पेक्टर आंजनेयुलु के मकान के सामने वाली चट्टान पर जाकर बैठ गया। यह आंजनेयुलु प्रति गुरुवार को सत्य की पूजा करने जाता है। तुम्हारा पुत्र अब जगत गुरु बनने का ढोंग करता है। उसके अनेक भक्त उसके दर्शनों के लिए। प्रार्थना करते हैं। पर शेषमा ने एक अच्छा काम किया है। उसने सत्य को इन भक्तों में से किसी के घर जाने नहीं दिया, यद्यपि अनेक उसके भक्त अत्यन्त प्रसन्नता से उसे अपने घर में रख लेंगे। शेषमा ने सत्य से कह दिया है कि वह हमें पत्र लिख रहा है और वहाँ पहुँचकर हम लोग ही उसके भविष्य के विषय में निर्णय लेंगे।”

7. वे माया हैं

उर्वाकोण्डा बुक्कापटनम् से बड़ा कस्बा है, पेनुकोण्डा से भी बड़ा है। सत्य के माता-पिता बस से उतरे और उतर कर सीधे अपने बड़े लड़के के निवास स्थान के लिए चल दिए। स्वभावतः मकान में एक अच्छी-खासी भीड़ जमा थी। काफी धक्का-मुक्की और पर्याप्त समय खोकर ही वे अन्दर के उस कमरे में पहुँच सके जहाँ से अगरबत्ती की सुगन्ध और कपूर के जलने की सुगंध उनका स्वागत कर रही थी। जैसे ही उपस्थित समुदाय ने नवागन्तुकों को पहचाना, सब एक स्वर से बोल उठे, “माता-पिता की जय" और इसी के साथ-साथ "साई बाबा की जय" का स्वर गूँज उठा।

सत्य एक कुर्सी पर बैठा था और पुष्पहारों के ढेर उसके दाहिनी ओर लगते जा रहे थे। जो भी पुष्प मालायें उन्हें भेंट की जाती, वे उसे स्वीकार करते और धीरे-धीरे मालाओं का ढेर बढ़ता जाता। हतप्रभ शेषमा राजू निरन्तर बढ़ते हुए दर्शकों की भीड़ के कारण अत्यंत व्यस्त थे। वे पहले से बैठे हुए भक्तों से प्रार्थना करते कि वे आने वाले दर्शकों के लिए स्थान खाली करें। अपने माता-पिता को देखकर उन्होंने एक निश्चितता की साँस ली। वे अपने माता-पिता साथ सत्य के निकट पहुँच कर बोले, “बताओ, ये दोनों कौन हैं?" जो उत्तर उन्हें मिला, वह वेदान्ती था, किन्तु अत्यंत आघातपूर्ण एक चौदह वर्षीय बालक से ऐसे स्तम्भित कर देने वाले शब्दों की आशा कौन कर सकता था? जब सत्य पर यह जोर डाला गया कि वह अपने

माता-पिता को पहचाने, तो उसने एक संक्षिप्त उत्तर दिया, "वे सब माया है।"

माया? भ्रम? हममें से प्रत्येक, जैसा बाबा ने आगे चलकर वर्षों बाद प्रकट किया, एक इकाई नहीं है, बल्कि एक में ही तीन निहित है। इनमें से दो मिथ्या है, क्षणिक है और नगण्य हैं। प्रथम तो वह जो हम समझते हैं हम हैं, अर्थात् यह शरीर अपने सारे अवयवों के साथ और अपने हृदय के साथ जो एक वस्त्रावृत्त ढोल की तरह बज कर हमें मृत्यु के आने का संकेत देता रहता है। दूसरा वह, जो दूसरे सोचते हैं कि हम है, अर्थात् हमारे वे सब व्यवहार और प्रतिक्रियाएँ जो हमारी प्रवृत्तियों, प्रेरणाओं, भावों, उत्तेजनाओं और कल्पनाओं के फलस्वरूप प्रकट होती रहती हैं। तीसरी हमारी वह सत्ता जो हम सचमुच हैं, अर्थात् हमारी अमर, अजर, परमानन्द और सौंदर्यमयी सत्ता। सत्य ने जब अपने माता-पिता को 'माया' कहकर सम्बोधित किया था, तो उसने अपने सामने खड़े दोनों व्यक्तियों के प्रथम दो अस्थायी और आश्रित पक्षों की ओर संकेत करते हुए ही उन्हें भ्रमासक्ति कहकर अमान्य और अस्वीकार किया था।

यह दृश्य हमें 'न्यू टेस्टामेंट' में सेंट मैथ्यू द्वारा वर्णित एक दृश्य का स्मरण दिलाता है- “जब कि वे (ईसा) अभी भी लोगों से बात कर रहे थे, देखो, उनकी माँ और उनके भाई उनसे बात करने के लिए उत्सुक बाहर खड़े थे। तब उनमें से एक ने ईसा से कहा, "देखो, तुम्हारी माँ और तुम्हारे भाई तुमसे बात करने के इच्छुक हैं और बाहर खड़े हैं।" किन्तु उन्होंने उस

व्यक्ति को जिसने यह सूचना दी थी, उत्तर दिया, “कौन है मेरा माता और भाई? जो भी व्यक्ति स्वर्ग में निवास करने वाले मेरे पिता की इच्छा का पालन करेगा, वही मेरा भाई है, वही मेरी बहन और माता है। "

ईश्वराम्मा के मुख से निकला 'माया' और वे बेहोश हो गयीं। किन्तु वेंकपा राजू ने उस कथन की गंभीरता को समझा। उन्हें अब अनुभव हुआ कि बचपन में सत्य ने 'गुरु' और 'ब्रह्मज्ञानी' होने की जो ख्याति प्राप्त की थी तो ये उपाधियाँ उसे निरर्थक ही नहीं दी गई थीं। वे किसी गहरी अनुभूति के प्रबोधक थे और अस्थायी पारिवारिक सम्बन्धों के त्याग के महत्वपूर्ण पूर्व-सूचक थे। उन्होंने अपनी माँ को उस अपरिहार्य परिस्थिति को स्वीकार करने के लिए समझाने का प्रयत्न किया। किन्तु ईश्वराम्मा की प्रतिक्रिया रोषपूर्ण थी। वे सत्य के बगल में बैठी थीं। नेत्रों से निरंतर आँसू बह रहे थे, क्योंकि उनका पुत्र अपने पूर्व-व्यक्तित्व की छाया मात्र था। उन्होंने गिड़गिड़ाकर कहा, “सत्य, मेरे पुत्र, अपनी माँ से तो बोल।” कुछ क्षणों तक शांति रही। फिर सत्य ने अत्यंत उदासीन और असम्बद्ध भाव से उत्तर दिया, “कौन किसका है?" यह कोई प्रश्न नहीं था। यह एक विद्युत रेखा के समान माया के आवरण को चीरता हुआ एक चिरंतन उद्घोष था। सत्य ने अपना उपदेश जारी रक्खा, "यह सब माया है, केवल माया।" दर्शक यह दृश्य देखकर आश्चर्य चकित थे। एक दुबला-पतला छोकरा जो उनके समक्ष आसीन था, महान शकराचार्य के समान ही बड़े अधिकार और प्रामाणिकता से ऐसी घोषणायें कर रहा था जो इस सृष्टि के रहस्य को खोलने की वास्तविक कुंजियाँ थीं।

किन्तु ईश्वराम्मा इन गूढ बातों से तनिक भी न घबरायीं। उनकी केवल एक ही इच्छा थी कि वे अपने पुत्र को भोजन करायें, उसे अपनी गोद में बिठायें, उसके बालों में कंघी करें, जो गाने सत्य को प्रिय थे, उन्हें सुन सकें और एक बार फिर उसका पंढरी-नृत्य देख सकें। जैसे ही वे तीत के दिनों का स्मरण करतीं, वे द्रवित हो उठतीं और फूट-फूटकर रोने लगतीं, और तब उन्हें वहाँ से उठाकर ले जाना पड़ता। दुःख और विलाप से उनका ध्यान हटाने के लिए उन्हें एक प्रस्तर-खंड दिखाया गया और उससे सम्बन्धित कथा उन्हें बतलायी गयी। जब सत्य घर में रुकने से इन्कार करते हुए अपनी पुस्तकें फेंक कर बाहर निकल गया, वह जाकर पत्थर की एक चट्टान पर बैठ गया, जहाँ पत्थर का यह टुकड़ा उसके निकट ही पड़ा हुआ था। एक फोटोग्राफर ने इस पत्थर को हटाने के लिए सत्य से कहा (फोटो लेते समय)। किन्तु सत्य ने इन्कार कर दिया। जब बाद में फिल्म को साफ किया तो उस चित्र में वह पत्थर शिरडी साई बाबा की मूर्ति के रूप में दिखा। सत्य ने कहा कि “पहले मैं वही था।” कौतूहल से भरे हुए एक समुदाय ने ईश्वराम्मा को वह फोटो दिखलाया, उनके नेत्र प्रसन्नता से चमक रहे थे। पर ईश्वराम्मा पर उसका कोई प्रभाव न पड़ा। उन्होंने पूछा, “सत्य ने आज भोजन कब किया? उसने खाना खाया भी है या नहीं? उसे अब कौन-सी वस्तु खाने में अच्छी लगती है?” उस तनाव और भय से, जिससे वे अभिभूत थीं, अपने को मुक्त करने के लिए उनके मन में केवल एक ही इच्छा थी कि वे किस प्रकार स्वामी की सेवा कर सकती हैं।

इसी बीच सत्य कुछ अधीर-सा हो रहा था, मानो वह खुले वातावरण में जाने के लिए बेचैन हो और अपने प्रिय आसन, उस चट्टान पर बैठने का इच्छुक हो। किन्तु जब किसी ने उससे कहा कि उसकी माँ स्वयं रसोईघर में उसके लिए खाना बना रही हैं, तो वह अप्रत्याशित ढंग से बोला, “अच्छा मैं रुकूँगा" उन शब्दों ने माता के हृदय पर मरहम का काम किया। वे और अधिक उत्साह से अपने सत्य के लिए नाना प्रकार के व्यंजन बनाने लगीं।

अन्त में सत्य उठकर अन्दर गया। जब वह फर्श पर एक बॉस की चटाई पर बैठा तो उसके माता-पिता दोनों ओर खड़े थे। थाली उसके सामने थी। जब ईश्वराम्मा सत्य की थाली में संगटी, पुलुसु, कूरा वडियालु, चित्रान्न, चटनी और पायसम् के रूप में अपना स्नेह, अपनी चिन्ता, अपनी आकांक्षा, अपनी निराशा, अपनी प्रसन्नता मिश्रित कर मीठे, नमकीन तत्व और उबाले हुए पदार्थ परोसती रहीं, तो वह एक अत्यन्त उदासीन और निरासक्त भाव से देखता रहा।

उन्होंने परोसना बन्द करके सकुचाते हुए उस प्रस्तुत सामग्री को ग्रहण करने का संकेत किया। पलक मारते सत्य ने सभी सामग्री को एक साथ मिलाकर उसके तीन लड्डू से बना लिए। वह 'माया', 'माया' 'माया' शब्द दुहराता रहा। किसी ने सुध-बुध खोई हुई माँ से कहा कि सत्य उन्हें अपने निकट बुला रहा है। वे कुछ आगे बढ़ीं। उसने अपनी माँ की दाहिनी हथेली

पर एक लड्डू उठाकर रख दिया। फिर उसके सामने अपनी हथेली. दी, जो इस बात का संकेत थी कि वे उसे सत्य को दे दें। जैसे ही उन्होंने सत्य के हाथ में वह लड्डू दिया, उसने चुपचाप यह कहते हुए "माया चली गयी, माया छोड़ गयी" उसे खा लिया। अन्य दो लड्डुओं का भी वहीं हाल हुआ। सत्य ने उन्हें अगम्य उदासीनता के साथ खा लिया। इस असाधारण ब्यालू से घर के बड़े-बूढों, यहाँ तक कि शेषमा राजू तक को यह स्पष्ट हो गया कि सत्य ने माता-पिता, भाई-बन्धु आदि के सांसारिक बंधनों को सदैव के लिए तोड़ दिया है और उसका यह कार्य उस त्याग की एक चरम सीमा थी। सत्य ने अपने को सब के निकटतम होते हुए भी एक 'अपरिचित' की संज्ञा दे दी थी । इतिहास का एक अंग होते हुए भी वे एक रहस्य थे। अगम्य होते हुए भी वे भौतिक रूप से अत्यन्त निकट थे।

कृष्ण के माता-पिता को भी इस 'निकट किन्तु-अति दूर' वाली दुविधा में अपना जीवन व्यतीत करना पड़ा था। वे भी इस 'है भी और नहीं भी वाली पहेली के शिकार बने थे। जब कृष्ण की बहन सुभद्रा के पुत्र अभिमन्यु ने महाराजा विराट की सुपुत्री उत्तरा से विवाह किया, तो विराट ने कृष्ण के माता-पिता का स्वागत अतिथियों के रूप में किया। उस समय कृष्ण के पिता वसुदेव ने विराट से कहा "हमें कृष्ण के पिता के रूप में प्रसन्न करने का प्रयत्न न कीजिए, क्योंकि कृष्ण कहते हैं कि 'सांसारिक दृष्टि से जिन्हें माता-पिता कहकर सम्बोधित किया जाता है, उनसे मेरा कोई मतलब नहीं हैं। मैं तो केवल अपने भक्तों के प्रति ही अनुरक्त हूँ।" वे कहते हैं कि "जब उनके भक्त कष्ट में होते हैं, उन्हें भी कष्ट होता है और जब वे जो पूर्ण

रूप से उनके प्रति समर्पित हैं, प्रसन्न होते हैं, तो उन्हें भी प्रसन्नता होती है। वे पत्नी, सन्तान, भाई, बहन आदि के प्रति तनिक भी चिंतित नहीं होते। उनकी अर्थ अथवा सत्ता में थोड़ी भी आसक्ति नहीं है। वे तो केवल उनके प्रति अनुरक्त है जो उन्हें 'हरि', 'नारायण' अथवा किसी भी अन्य नाम से पुकारते हैं। मेरे पुत्र का व्यवहार अन्य व्यक्तियों को भाँति नहीं है। जब उनके भक्तों का अपमान होता है अथवा उन्हें पीड़ा पहुँचायी जाती है, तो वे द्रवित हो उठते है। क्यों? जो कृष्ण का अपमान करते हैं या उन्हें कष्ट पहुँचाते हैं, वे अपने आपको उन्हीं को समर्पित कर देते हैं। उनका यह कथन है कि उनका जन्म ही मानव जाति का कष्ट से उद्धार करने के लिए हुआ है। " स्वामी के पूर्व ईश्वर के कृष्णावतार के सम्बन्ध में कही गयी महाभारत के काव्य की ये पंक्तियाँ बाबा द्वारा अपने माता-पिता के प्रति किए गए व्यवहार पर पर्याप्त प्रकाश डालती है।

संसार त्याग के इस स्मरणीय दिवस की रात्रि उस 'भजन प्रस्तर खंड पर बितायी गयी, जिस पर बैठ कर सत्य ने गाया- 'मानस भज रे गुरु चरणम्।' इस पंक्ति के माध्यम से उन्होंने उपस्थित जन समुदाय को अपने हृदयों में गुरु चरणों को आसीन करने का आह्वान किया। ईश्वराम्मा उस ठंडी रात में उन्हें बाहर न छोड़ सकी। वे भी उस भक्त समुदाय में सम्मिलित हो गई जो बहुत रात्रि तक और पुनः प्रातः काल भजन संकीर्तन में संग्लन रहा, किन्तु उस पूरी रात ईश्वराम्मा अपने घर के भयावह भविष्य की कल्पना कर उससे जूझती रहीं। वे जानती थीं कि उनकी वह संतान, जो यह घोषणा करती है कि “मैं तुम्हारा नहीं हूँ। मैं

तुम्हारे लिए इस संसार में नहीं आया हूँ। मुझे अपने कार्यों की ओर ध्यान देना है..." आज नहीं तो कल पर्वतों और कंदराओं की यात्रा करेगी, पवित्र नदियों और तीर्थो के दर्शन करेगी और हिमालय के शिखर पर भी पहुंचेगी। वह भिक्षा माँग कर, फल-फूल और कन्द-मूल आदि खाकर भी अपना जीवन-यापन कर सकती है। यहाँ तक कि सूखी पत्तियाँ खाकर और मात्र वायु-भक्षण कर भी जीवित रह सकती है। उन नेत्रों के सामने सत्य के भावी जीवन के चित्र आते गए। उनकी कल्पना सत्य की युवावस्था को बेधती हुई, उसकी प्रौढ़ावस्था और उसके बाद आने वाले वर्षों तक पहुँच गयी। उनके नेत्रों के समक्ष सत्य का जो चित्र आया, उसमें उन्होंने उसे अत्यन्त दुर्बल, एकाकी, धंसी आंखों वाला और मग्न देखा, जिसकी दाढी बढ़ आयी थी और गले में माला पड़ी थी, किन्तु जिसके नेत्रों में एक विचित्र ज्योति थी जो उसके आत्मिक प्रकाश की सूचक थी। माता का मन इन सब की कल्पना मात्र से काँप गया और उन्होंने निश्चय किया कि पहला अवसर पाते ही वे अपने पुत्र से एक वरदान माँगेंगीं।

किन्तु ईश्वराम्मा के पति उनकी इस चिन्ता में उनके साझीदार न थे। उन्होंने ईश्वराम्मा को समझाया कि शीघ्रता में कोई कदम उठाकर परिस्थिति को न बिगाड़े। उन्होंने कहा, “कुछ समय तक उसे अकेला छोड़ दो; यह सब बातें कुछ समय पश्चात् अपने आप समाप्त हो जायेंगी।" किन्तु शेषमा राजू ने अपनी माँ की बात का पूर्ण समर्थन किया और यह आश्वासन दिया कि वे भी सत्य को माँ को बात मनवाने में पूर्ण युक्ति से काम लेंगे। अतः जब उस चट्टान के आसपास केवल लगभग एक दर्जन

व्यक्ति ही रह गये थे, ईश्वराम्मा और शेषमा राजू सत्य के पास पहुँचें। उनकी माँ ने कहा, “सत्य, हम तो माया में फंसे हुए हैं, हम माया है, किन्तु तुम माया से मुक्त हो। हम तुम्हारे किसी भी कार्य में व्यवधान न डालेंगे; न हम तुमसे कोई तर्क करेंगे। तुम जो भी हो, बने रह सकते हो । किन्तु हमसे दूर रह कर हिमालय में नहीं, गिरि और कन्दराओं में नहीं रह सकते। मुझे वचन दो कि तुम पुट्टापर्ती में ही रहोगे। अपने भक्तों को वहाँ आने दो। हम प्रसन्नता से उनका स्वागत करेंगे और उनके साथ मृदु व्यवहार करेंगे।” इस प्रकार सत्य के तात्कालिक उत्तर के लिए मानों भाग्य ने एक दृश्य की तैयारी कर दी। “मैंने पुट्टापर्ती को ही अपना कर्मक्षेत्र चुना है," स्वामी ने घोषणा की। “किन्तु यह वरदान तुम्हें नहीं, इस ग्राम को दिया गया है, सम्पूर्ण विश्व को दिया गया है।

मैं इस स्थान को छोड़ दूँगा और वहाँ गुरुवार को पहुँचूँगा।” हर्ष से ईश्वराम्मा विह्वल हो उठीं। वाणी ने उनका साथ दिया। किन्तु शुभ समाचार को सुनाने की कल्पना से उनका मुख-मण्डल आलोकित हो उठा। उनका हृदय आनन्द से गद्गद् था, क्योंकि वे अब इस बात से आश्वस्त थीं कि जीवन पर्यन्त उन्हें अपने पुत्र की कीर्ति और महिमा के अवलोकन का शुभ अवसर प्राप्त होगा। वह इधर-उधर जाकर भिक्षा माँगने से बच जाएगा। साथ ही जहाँ तक कम से कम उसके भोजन का प्रश्न है, उसकी माँ, बहने तथा उस पर श्रद्धा करने वाली सुब्बाम्मा उसकी देखभाल करती रहेंगी।

किन्तु उनके सुखद विचारों की यह श्रृंखला एकाएक टूट गयी, जब एक व्यक्ति अकस्मात् दुस्साहस करके उनके चरणों पर “स्वामी की माँ, मुझे आशीर्वाद दो" यह कहता हुआ गिर गया। यह गौर वर्ण लम्बा सा व्यक्ति उर्वाकोण्डा का निवासी एक ब्राह्मण पंडित शास्त्री था। एक बार जब वह प्राचीन संस्कृत ग्रंथ रामायण की व्याख्या कर रहा था, सत्य ने उसे इतनी दूरी से उसे सुना, जहाँ तक उसका स्वर भी न पहुँचता था। सत्य ने उसके पास श्लोक की सही व्याख्या करके एक सदेश-वाहक से भिजवाया। स्वभावतः प्रारम्भ में तो पंडित को कुछ क्रोध आया, किन्तु उसने शीघ्र ही अपनी भूल सुधार ली। वह श्रद्धा और भय मिश्रित आनन्द से चिल्ला पड़ा, “सर्वज्ञान मूर्ति !”

इस पंडित के ज्ञान की अपूर्णता को सत्य ने जिस प्रकार पहचान लिया, इससे मुझे संत टामस द्वारा कही हुई ईशु-कथा का एक प्रसंग याद आता है, जब ईसामसीह ने उपदेशक जकेयस को भी ऐसी ही सलाह दी थी- “किन्तु ईसा ने जकेयस की ओर देखा और उससे कहा तुम्हें तो 'अल्फा' (प्रथम अक्षर 'ऐ') और उसकी प्रकृति भी नहीं ज्ञात है, फिर ऐ पाखण्डी, तुम 'बीटा' (अर्थात् अंग्रेजी का द्वितीय अक्षर 'बी') कैसे पढ़ा सकोगे? प्रथम यदि तुम जानते हो तो अल्फा का ज्ञान दो, तब हम विश्वास कर सकेंगे कि तुम 'बीटा' भी पढ़ा सकते हो ?"

ईश्वराम्मा उस शास्त्री द्वारा उनके प्रति प्रकट की हुई इस श्रद्धांजलि से बड़ी उलझन में पड़ गय; यद्यपि यह उनकी उस भूमिका की अग्रदूत थी जो

भविष्य में संसार के समक्ष उन्हें निभानी थी। किन्तु उनके मन की गहराई में यह भावना अवश्य थी कि वे चाहे माँ के रूप में अथवा ईश्वराम्मा के रूप में माया के अतिरिक्त कुछ न थी, एक ऐसा विचार अथवा प्रतिभा जो इस नाम और रूप से परे किसी अन्य तत्व पर आरोपित कर दी गई थी। कपिल मुनि के समान ही जिन्होंने अपनी जननी को ही अपने प्रथम शिष्य के रूप में चुना, सत्य ने ईश्वराम्मा की अंतर्दृष्टि केवल उस एक शब्द 'माया' के उच्चारण से खोल दी-ऐसा शब्द जो सत्यों के सत्य का रहस्योद्घाटन कर देता है। यह समाचार चारों ओर बिजली की तरह फैल गया कि सत्य पुट्टापर्ती

जाने वाला है और अब संभवतः वह लौटेगा नहीं। मानो पूरे कस्बे में आग लग गयी हो । सभी प्रकार के लोग-व्यापारी कारीगर, श्रमिक, शिक्षक, विद्यार्थी, स्त्रियाँ और बच्चे-आंजनायेलु के उस 'चट्टान वाले बगीचे' की ओर दौड़े, जहाँ बैठा हुआ सत्य लोगों को नाना प्रकार के भजनों की शिक्षा दे रहा था। सामने बैठे हुए अपने शिक्षकों को उसने तत्क्षण अपने हाथ से निकलने वाली विभूति दी। उपस्थित महिलाओं में से एक ने, जिसे शिरडी में साई बाबा के पास जाने का और उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, कहा कि “स्वामी के द्वारा दी हुई यह ऊदी (विभूति) वही है, जो शिरडी में द्वारकामाई में निरंतर जलने वाली धुनी से इकट्ठी की गई थी। वे बोलीं, "अब वह अग्नि बाबा की हथेली में स्थित है।" वास्तव में स्वामी द्वारा दी हुई वह विभूति कुछ-कुछ गर्म थी।

देखो! सारा नगर का नगर इस समय सड़क पर धीरे-धीरे जलूस की तरह जा रहा था। सत्य एक सजी हुई बैलगाड़ी पर बैठा था, जिसे सजे-सजाये बैल धीरे-धीरे खींच रहे थे। शेषमा राजू और सबसे छोटे भाई जानकी राम तुरन्त गाड़ी के आगे पहुँचकर चलने लगे। ईश्वराम्मा उनकी लड़कियाँ और बहू सैंकड़ों स्त्रियों की उस भीड़ में सम्मिलित थीं जो साथ चल रही थी। एक उत्साही भक्त ने सत्य के माता-पिता के गले में हार पहना दिए। उन्होंने प्रयत्न करके वे दोनों हार उतार दिए और उस चाटुकारिता से जो न चाहते हुए भी उन पर थोप दी गयी थी, उन्होंने मुक्ति पायी। शेषमा राजू के साले रामा राजू ने अपने मित्र सुबाना की सहायता से स्वयंसेवकों का एक दल तैयार किया, जो लोगों को छाँटकर सीधी पंक्तियों में खड़ा करता था, ताकि वे एक लाइन में चलें। उस लम्बे जलूस में सबसे आगे एक बैण्ड था, जिसमें ढोल, बीन बाजा, क्लेरिनेट, झांझें और मंजीरे आदि थे। इस प्रकार भक्ति का मानों एक समुद्र ही उमड़ पड़ा हो

जब नगर की सीमा आ पहुँची, तो नम्रतापूर्वक लोगों से वापस जाने के लिए कहा गया, किन्तु अपने प्रिय सत्य को छोड़कर लौटने का मन किसी का न था। कई लोगों ने निश्चय किया कि वे सत्य के साथ-साथ

पुट्टापर्ती जायेंगे और कम से कम एक सप्ताह रुक कर तब लौटेंगे। ईश्वराम्मा साई बाबा *पुट्टापर्ती ला रही थीं। अब वे उर्वाकोण्डा के हाई स्कूल में पढ़ने वाले एक छात्र - सत्य नारायण राजू न थे। वे माया के आवरण को चीरकर बाहर निकल आये थे और सत्य के महान् शिक्षक के

रूप में संसार के समक्ष खड़े थे। उनके चारों ओर खड़े हुए लोग उनके शिष्य थे।

---

8. प्रथम पाठ

उर्वाकोण्डा में घटित ऐतिहासिक घटना का जो सरल सारांश समाचार के रूप में आसपास की ग्रामीण जनता में फैला, वह इतना ही था कि 'सत्य ने अंत में अपना सत्य प्रकट ही कर दिया। कौतूहल आश्चर्य में बदला, आश्चर्य आकांक्षा में धर्मावरम्, पेनुकोण्डा, गोरण्टला, मुडीगुब्बा और बुक्कापटनम् से ग्रामीण और नागरिक जन अपने-अपने घरों और कुटियों से निकल पड़े। जब तक लोग पुट्टापर्ती पहुँचे, जन समुदाय समुद्र के रूप में उमड़ रहा था। सुब्बाम्मा, इस गोकुल की यशोदा ने, कर्णम्-प्रासाद के द्वारा खुलवा दिए और उस तरुण जगदोद्धारक और उसके भक्तों के स्वागत में प्रतीक्षा करने लगी।

उन्हें सत्य की ईश्वरीय सत्ता में पहले भी कभी संदेह न था। उनके ईश्वर के अवतार होने के सम्बन्ध में सुब्बामा ने पर्याप्त चमत्कार और लीलायें देखी

थीं और उन्हें यह दृढ़ विश्वास था कि नाम चाहे साई बाबा के हृदय हो या कोई और, पर सत्य है ईश्वर के अवतार ही। सुब्बामा में तो जिस दिन सत्य ने उर्वाकोण्डा के टीले पर खड़े होकर समस्त मानवता को 'मानस भजरे गुरु चरणम' का उपदेश दिया था, उससे बहुत पूर्व ही यह अंतःध्वनि सुनाई पड़ी थी। उन्होंने बहुत पहले ही स्वामी के चरणों को गुरु और परमात्मा के चरण मान कर अपने हृदय में धारण कर लिया था। उनके मन में वर्षों पूर्व यह विश्वास दृढ़ हो गया था कि कलियुग में भगवान कलि का जो अवतार होना था, वह सत्य के रूप में हो चुका है। वे इस जिज्ञासा की पूर्ति के लिए कि क्या भविष्य पुराण में पुट्टापर्ती का भी उल्लेख होगा, कभी संदेह में नहीं पड़ी। यदि पुट्टापर्ती का नाम न भी हो, तो भी उन्हें कोई चिंता न थी। उन्होंने प्राचीन ऋषियों की वाणी को अपने में पर्याप्त रूप से हृदयंगम कर लिया था।

उन्हें लगा कि समय सत्य को पुकार रहा है। क्या शंकराचार्य ने कृष्णावतार की प्रकृति के विषय में और वे किस तरह पृथ्वी पर अवतरित होंगे, इसका वर्णन नहीं किया था? शंकर ने उस परमात्मा का उल्लेख किया, जिसने मानवता को गीता प्रदान की; किन्तु सुबाम्मा यह जानती थी। कि सत्य भी मुरली को शीघ्र ही एक किनारे रखकर अपने हाथ में कोड़ा लेंगे। शंकराचार्य ने अवतार के निम्नलिखित लक्षणों का उल्लेख किया. है:–“दुख और बन्धनों से छुटकारा पाने के लिए धर्म द्वारा निर्धारित आचार-संहिता का पालन करने के उपरान्त एक समय ऐसा भी आता है, जब मानवता के मन में भौतिक सत्ता और अधिकार की लिप्सा तथा

कामेन्द्रियों द्वारा प्राप्त क्षणिक आनंद की माया प्रबल हो उठती है और धर्म की मर्यादा को तोड़ देती है। विवेक नष्ट हो जाता है। बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है। अधर्म धर्म पर हावी हो जाता है। उस समय पर ब्रह्म, सृष्टि का मूल तत्व, सृष्टि का रचयिता अपनी रचना को अपनी इच्छानुकूल चलाने के लिए अपने अंशों सहित मानव रूप में अवतरित होता है। वह अनंत स्रोत जो सशस्त ज्ञान, शक्ति, सत्ता और ऊर्जा का भंडार है, मनुष्य का रूप धारण करता है और अपनी उस माया शक्ति को, जो उसके ही अंदर नैसर्गिक सुप्तावस्था में विद्यमान रहती है, प्रेरित करता है। इस प्रकार माया प्रेरित सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण- तीनों की प्रकृति से अभिभूत वह इस प्रकार प्रकट होता है, मानो उसने जन्म लिया हो और मानव-माया के प्रति अपनी करुणा प्रकट करने के लिए उसने शरीर धारण किया हो। किन्तु यथार्थ में वह अजन्मा है, अपरिवर्तनीय है, परम पवित्र, स्वयं आलोकित तथा मुक्त है।"

ईश्वराम्मा सत्य को राजू-घर में ले जाने के लिए आतुर थीं और सुब्बामा ने माँ के प्रेम को जानते हुए सत्य को अपने यहाँ अधिक देर न रोका और ले जाने दिया। किन्तु सत्य बहुत समय तक वहाँ प्रसन्न न रह सके; क्योंकि उनके भक्त तो पूर्ण रूप से उन्हें अपने लिए चाहते थे। उन्होंने अपने माता-पिता से कहा, "मैं केवल तुम्हारा नहीं हूँ। मैं उन सबका हूँ, जिन्हें मेरी आवश्यकता है।" वे अपनी बहन वेंकाम्मा के घर में भी अशांत ही रहे। परिवार की प्रथा के अनुसार वेंकाम्मा का विवाह अपने मामा के साथ हुआ था, और वे अलग घर में रहती थीं। परिवार में क्रोध से कहा हुआ

एक शब्द, एक तीक्ष्ण दृष्टि ही उस व्यक्ति की अपेक्षा, जिसके लिए वह होती थी, सत्य के हृदय को अत्यधिक चोट पहुँचाती। ईश्वराम्मा भी अपने दूसरे पुत्र और पुत्रियों के परिवारों से, उनके जीवन के उतार-चढ़ाव से और समस्याओं से बंधी हुई थीं, विशेषकर अपने छोटे पुत्र जानकीराम के स्वास्थ्य से। जानकीराम को बहुत पुरानी सर्दी थी जो आगे चलकर ब्रोंकाइटिस और फिर भयंकर क्षय रोग में बदल गई। अतः परिवार में रहकर जीवन-यापन, जो निरंतर अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की पूर्ति में संलग्न था, इस युग के अवतार के लिए अनुकूल सिद्ध न हुआ।

कालान्तर में सुब्बाम्मा का निवास भी उन यात्रियों के लिए, जो गुरु के चरणों में शांति और शरण प्राप्त करने के लिए आते थे, छोटा पड़ने लगा। पुट्टापर्ती से पाँच मील दूर कोट्टाचेरुवु की घनी बाजारी बस्ती में एक संन्यासी हुआ था, जिसने वहाँ अपना आश्रम बना रखा था। वह एक ऊँचे टीले पर स्थित था, जिसके सामने चित्रावती से प्राप्त हुए जल से आपूरित एक मानव-निर्मित विशाल झील थी । संन्यासी ने सत्य के पिता और बाबा से कहा कि “मैं सत्य को अपने संरक्षित के रूप में वहाँ ले जाऊँगा और वहाँ वह मेरी आध्यात्मिक गद्दी का उत्तराधिकारी होगा।" उसने बतलाया कि वह स्थान धर्मावरम् से गोरण्टला जाने वाले राजमार्ग पर स्थित है और उस चौराहे से कुछ ही मिनटों की दूरी पर है, जहाँ पेनुकोण्डा से मुड़ीगुब्बा तथा धर्मावरम् से कादिरी जाने वाले मार्ग एक दूसरे को काटते हैं। सत्य की दृष्टि से वह स्थान अत्यंत अनुकूल सिद्ध होगा। किन्तु ईश्वराम्मा को जैसे ही यह पता चला कि उनके पुत्र को उनसे छीनने का

यह दूसरा प्रयास है, उन्होंने स्पष्ट मना कर दिया। उनके पति को कुछ और कहने की आवश्यकता न पड़ी।

जैसे ही सुब्बाम्मा को यह ज्ञात हुआ कि सत्य को पुट्टापर्ती से बाहर ले जाने का एक प्रस्ताव संन्यासी की ओर से आया है, उन्होंने शीघ्र ही चित्रावती के पश्चिमी तट पर अपनी भूमि का कुछ भाग दे दिया, जिस पर भक्तों की भीड़ को बैठने के लिए एक शेड (छप्पर) की व्यवस्था सरलता से की जा सकती थी। सुब्बाम्मा निर्मल आतिथ्य की मूर्तिमती अवतार थीं । वे इस बात के लिए अत्यन्त चिंतित थीं कि जो भी यात्री पैदल चलकर दूर से यात्रा करते हुए उनके प्रिय सत्य के दर्शनों के लिए पट्टापर्ती आयें, उनके स्वागत-सत्कार में कमी न हो। स्वामी आज भी उनके विषय में बात करते है तथा प्रातः काल से लेकर आधीरात तक उनके निरन्तर काम की चर्चा करते हैं। चावल पकाना, चटनी पीसना, कढ़ी बनाना, पापड़ भूनना–रसोईघर में पकाने वाले सभी काम से करती रहती थीं और वह भी उन सब प्रकार के लोगों के लिए जो दिन-रात किसी भी समय और सभी जगहों से आते थे। "उनके घर का सिलबट्टा हमेशा चला ही करता था", स्वामी कहते हैं।

बहुत से लोग जो बाल-साई (यह नाम दिन प्रतिदिन बहुत प्रचलित हो रहा था) की पूजा करने आते थे, वे उनके माता-पिता का भी पता लगाते थे, ताकि उनके प्रति भी सम्मान प्रकट कर सकें। वेंकप्पा राजू तो कठिनाई से ही मिल पाते थे, क्योंकि उनका अधिकांश समय अपने प्राविजन स्टोर्स

की देख-भाल में ही बीत जाता था। वे निकटवर्ती गाँव के बाजारों के चक्कर मारकर आवश्यक रसद एकत्र किया करते थे। अतः भक्तों द्वारा प्रदर्शित इस सम्मान और श्रद्धा का सामना करने के लिए ईश्वराम्मा ही मिल पातीं थीं, क्योंकि वे घर गृहस्थी के कारण कम बाहर निकल पाती थीं। जब कभी ये भक्त ईश्वराम्मा से कहते कि साई बाबा ने उनका घर और गाँव पवित्र करने के लिए पधारने का वचन दिया है, तो वे एकदम चिंतित हो उठती। उन्हें कितनी दूर की यात्रा करनी पड़ेगी और वे कितने दिनों तक बाहर रहेंगे- यह चिंता उनको सताने लगती। वस्तुतः वे यह कैसे जान सकती थीं कि वे अपने संकल्प से एक साथ जितने स्थानों पर चाहते प्रकट हो सकते थे? वस्तुओं को देखने और समझने का ईश्वराम्मा का ढंग इतना सरल और विश्वसनीय था कि एक बार उनका पुत्र जब कनकतारा नामक नाटक में अभिनय कर रहा था तो वे फाँसी के तख्ते से उसकी जान बचाने के लिए स्टेज पर चढ़कर दौड़ीं। अब सत्य की बाल-साई के रूप में पुट्टापर्ती की सफल वापसी के बाद वे प्रत्येक रात्रि को परम्परानुसार उनकी नजर उतारना न भूलती थीं। वे नियम से नारियल लेकर उनके चारों ओर तीन बार घुमाती और फिर उसे तोड़ती और फिर कपूर से उनकी आरती उतारतीं।

जिन्हें बाबा के दर्शन, स्पर्श और सम्भाषण से लाभ हुआ, उन्होंने यह समाचार दूर-दूर तक पहुँचाया। अधिक से अधिक लोग आते गए और वावा की महिमा के प्रति जो भजन गाए जाते, उनसे सारा वातावरण गूँज उठता। बाबा एक आठ फीट लम्बे और छः फीट छोटे कमरे से, जिसका

द्वार सड़क की ओर था, दर्शन देते। यह सड़क जो चित्रावती के तट से कर्णम् के घर तक आती थी, गुरुवार के दिन 60 गज की लम्बाई तक ठसाठस बैठे हुए भक्तों से भरी रहती। अन्य दिनों भक्तों की संख्या इससे लगभग आधी होती। सुब्बाम्मा ने भक्तों की नित्य प्रति बढ़ती हुई संख्या को. देखकर उनके बैठने के लिए एक प्रार्थना भवन बनवा दिया। इमारत के मुख्य भवन के दोनों ओर उत्तर-दक्षिण दिशा में चौड़े बरामदे भी थे। सुब्बाम्मा ने अत्यन्त दूरदर्शिता से दोनों बरामदों के किनारों को ईंट की दीवारों से घिरवा कर चार रहने योग्य कमरे भी बनवा दिए।

दोपहर का समय था। एकाएक छः व्यक्ति-स्त्री और पुरुष अवर्णनीय उत्तेजना का भाव लिए घर में आए और ईश्वराम्मा को आश्चर्य में डाल दिया। उन्होंने कहा कि हम सत्य नारायण राजू को अपनी श्रद्धा के फूल चढ़ाने आए हैं, वही सत्य नारायण जो उर्वाकोण्डा में साई बाबा के रूप में विकसित हुए। उन्होंने बतलाया कि जब बाबा उर्वाकोण्डा में थे तो उन्होंने इन लोगों से अपने पूर्व अवतार में शिरडी की अनेक घटनाओं का वर्णन किया था। इनमें एक पहलवान से कुश्ती, दास गनु के संगीतमय व्याख्यान, और वह पगड़ी भी थी, जो उन्होंने उस समय प्रदर्शित की थी, जब उनके भक्तों ने शिव, राम, कृष्ण और हनुमान के रूप में उनका स्वागत किया था। उन्होंने ईश्वराम्मा से कहा कि उनके पुत्र ने उन्हें यह समझाया था कि "मारुति (हनुमान) की अलग से पूजा करने की आवश्यकता ही नहीं है; क्योंकि मारुति राम में ही समाहित है और उनके अभिन्न अंग हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे कि हनुमान की प्रत्येक श्वास में राम विद्यमान हैं।

सत्य ने अत्यन्त गोपनीयता से उनको बतलाया था कि 'मैं ही राम हूँ, मैं ही कृष्ण हूँ, । मेरी पूजा बहुत से देशों में होती है। लोग अलग-अलग भाषाओं में मेरी प्रार्थना करते हैं। "

उनमें से एक व्यक्ति ने, जो उस घनश्याम का, गोपाल का, अनन्य भक्त था, बाबा के मुख से यह सुनकर कि वह कृष्ण हैं एकाएक प्रश्न किया "कृष्णा?" सत्य ने उत्तर दिया “हां, मैं कृष्ण भी हूँ। क्या तुम कृष्ण की वंशी सुनना चाहोगे?" भला ऐसा कौन था जो 'न' कहता, इन भक्तों ने ईश्वराम्मा से कहा। फिर सत्य ने मुझसे कहा कि मैं उनके वक्षस्थल पर अपने गाल रक्खूँ और मैंने अनुभव किया कि उनके प्रत्येक साँस में वंशी की ध्वनि का अद्भुत संगीत है। मैं आत्म-विभोर हो उठा। इस पर ईश्वराम्मा एकाएक उठीं और उन लोगों को साथ में लेकर मंदिर में चली गयीं, इस आशा में कि वे पुनः उस संगीत-लहरी को सुन सकें कि जिसके प्रभाव मात्र से यमुनातट के वृक्ष फूलों से लदकर लहलहा उठते थे, यमुना के जल का प्रवाह कम हो जाता था, आकाश में दौड़ते हुए मेघ और क्रुद्ध पवन शांत और स्थिर हो जाते थे और जिसके सौरभमय मौन में कीट-पतंग, पशु-पक्षी, मानव सभी स्नान करते और मग्न हो जाते थे। फिर भी एक बार जहाँ वे स्वामी के सामने गयीं, उनका यह सब पूछने का साहस न होता था। वे ये आशा करती थीं कि कमलापुर से आए हुए भक्तों के उस समूह के साथ ईश्वराम्मा को देखकर सत्य साई सम्भवतः उन पर ध्यान देंगे और यह, पूछेंगे कि असमय की इस बेला में वे उनके सामने क्यों उपस्थित है?

वे बहुत समय तक मन ही मन उनकी प्रशंसा करती हुई इस आशा में बैठी रहीं।

वे बैठे-बैठे थक गयीं। अंत में वे अधिक समय मौन न रह सकीं। एकाएक उन्होंने पूछा, “क्या साई बाबा ने कृष्ण की वंशी बजाई?" सत्य ने उत्तर दिया, “वह अब भी मेरे पास है और तब भी थी। मैं तब भी कृष्ण था और अब भी हूँ।” सुनकर ईश्वराम्मा ने एक गहरी लम्बी साँस ली जो स्पष्ट सुनाई पड़ी। “सुनो” बाबा ने कहा। मंदिर के मुख्य भवन के नंगे फर्श पर वे सब बैठे हुए थे। बाबा बोले, “अब वह स्वरूप (कृष्ण का) इस स्वरूप में विलय हो जाएगा"। कुछ क्षणों में मौन के उपरान्त शेड की सीढ़ियों पर लकड़ी के खड़ाऊंओं की स्पष्ट आवाज सुनाई पड़ी। यह आवाज आठ फीट चौड़े बरामदे से होती उस कमरे के फर्श पर भी सुनाई पड़ीं, जिस पर वे बैठे थे। खट-खट, खट-खट, खट-खट ध्वनि सुनिश्चित, सुनियोजित और स्पष्ट थी। ईश्वराम्मा बोल उठीं, “जूते आदि पहनकर आना मना है।" किन्तु खड़ाऊँ पहन कर जो व्यक्ति आ रहा था, अदृश्य था। साथ ही ईश्वराम्मा की दी हुई चेतावनी का भी उस पर कोई प्रभाव न पड़ा। चरण पादुकायें भी कहीं दिखाई न पड़ी, यद्यपि उनकी खटखट की ध्वनि धीरे-धीरे उस ओर बढ़ती गई, जहाँ सत्य साई उपस्थित थे। वहाँ जाकर वह शीघ्र ही समाप्त हो गयी। स्वामी ने कहा, "वह मैं तब था जब मैं टूटी हुई मस्जिद में वंशी बजाया करता था। यही कारण है कि तुम अपने को साई बाबा कहते हो।" "ऐसा तुम कहते हो पर मुझे अभी भी इस पर विश्वास नहीं,” ईश्वराम्मा ने यह शब्द मुँह ही मुँह के अन्दर कहे, इस भय से कि कहीं स्वामी सुन न लें।

यह आश्चर्य उन्हें बहुत समय तक बना रहा। कारण यह कि जब सब कुछ अपनी आँखों से देख लिया और कानों से सुन लिया, उसके पश्चात् भी जो नितान्त असम्भव है, वह यदि संभव हो जाए, तो आश्चर्य छोड़कर और कौन-सा भाव मन में आ सकता है ?

उनकी बड़ी पुत्री वेंकम्मा के मन में यह प्रबल जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि वे शिरडी से आए हुए उन भक्तों से शिरडी वाले बाबा के जीवन से सम्बन्धित जितनी भी लीलायें और घटनायें हैं, उनके विषय में जान लें। उन्होंने सत्य से कहा कि वे उन्हें अपने उस शरीर का रूप दिखायें जो उन्होंने शिरडी में धारण किया था। एक रात जब सुबह होने ही वाली थी, जिस कमरे में वेंकम्मा सो रही थीं, दीवारों से टिके हुए धान के बोरों के पीछे कुछ खड़-खड़ शब्द हुआ। वह न तो कोई चूहा था और न ही कोई साँप। बल्कि यह एक लपेटे हुए मोटे कागज का एक ताव था, जिसको निकले हुए बोरों और दीवार के बीच की खाली जगह में खोंस दिया गया था। जब उन्होंने उसे खोलकर देखा तो उसमें एक चौरस-चट्टान पर बैठे हुए एक दाढ़ी वाले वृद्ध संत महात्मा का बहुरंगी चित्र था। बाद में उन्हें पता चला कि उन्होंने अपने छोटे भाई से यही चित्र प्राप्त करने के लिए कहा था।

वे अपनी माता और बहन से शिरडी में होने वाली आश्चर्यजनक घटनाओं का बड़ी विधि पूर्वक वर्णन करतीं और ईश्वराम्मा अत्यन्त रुचि से उन रसप्रद कहानियों को सुनतीं और वेंकम्मा से नई-नई कहानियाँ सुनाने को कहतीं। उन्हें यह सुनकर प्रसन्नता हुई कि शिरडी बाबा जिस दिन से गाँव

में गये जीवन पर्य्यन्त वहीं रहे और वहीं समाधि ग्रहण की। अवसर मिलते ही उन्होंने सत्य से प्रश्न किया, "यदि तुम वह साई बाबा हो तो तुम सदैव यहाँ क्यों नहीं रहते? तब तो तुम दूर-दूर तक नहीं जाते थे। वह तो एक दिन भी शिरडी से दूर नहीं रहे।" तब सत्य ने उत्तर दिया, “उसी कमी को पूरा करने के लिए ही तो मुझे दुबारा जन्म लेना पड़ा। इस अवतार में कोई भी व्यक्ति कहीं से आया हो, और कोई भी हो, मुझे उसे आशीर्वाद देना ही पड़ेगा।" यह सुनकर माँ चुप हो गई। समय ज्यों-ज्यों बीतता गया सत्य पर धीरे-धीरे भक्तों का अधिक अधिकार

होता गया। वे अपना अधिकांश समय भक्तों के सत्संग में बिताते। अब वे परिवार से उतने ही दूर होते जाते थे। ईश्वराम्मा को कष्ट भले ही हुआ पर उन्होंने निश्चय किया कि वे अब बरामदे में बने हुए कमरों में से एक कमरे में स्थाई रूप से रहेंगे। यह उत्तरी बरामदा था, जिससे होकर लोग मुख्य हाल में आते थे। उनके परिवार के लोग अब उनसे तभी मिल सकते थे, यदि वे भक्तों की सभाओं में सम्मिलित हों। स्वामी की बहन वैंकम्मा एक उत्साही और सुन्दर भजन गायिका थी। उनके पितामह कोंडमा राजू ९५ वर्ष के होते हुए भी नित्य प्रति अपनी लकड़ी टेकते हुए भजन मंदिर में दर्शन के लिए अवश्य आते। ईश्वराम्मा दोपहर के आस-पास चुपचाप घुस आतीं और अत्यंत स्नेह से वहाँ का दृश्य देखती; साथ ही इस पर भी दृष्टि डालतीं कि स्वामी के भोजन के लिए क्या बनाया जा रहा है? भोजन बनाने का काम भक्तों का एक छोटा सा समुदाय करता था, जिन्हें भगवान के चरण कमलों में शरण मिल चुकी थी और जो वहीं बाबा के पास रहते थे।

शेड के नीचे बरामदों में जो खाली स्थान उन्हें मिला, वे वहीं जम गये। वही रसोईघर था। उन्होंने आपस में मिलकर यह तय कर लिया था कि वे अपने तरुण गुरु को क्या-क्या पदार्थ बनाकर खिलायेंगे।

शुरू के उन वर्षों में बाबा के पास आने वाले भक्तों में अधिकांश ऐसे भाग्यहीन थे, जिन पर भूत-प्रेत का प्रभाव लगता था और जिन्हें उनके घर-परिवार वाले स्वामी को क्षितिज पर उगने वाली आशा की एक नई किरण समझकर लाते थे। मैंने एक मारवाडी महिला का वृतान्त सुना। उसका सम्पूर्ण जीवन एक पिशाच ने जो उस पर हावी था, नर्क बना रक्खा था। स्वप्न में दिखाई पड़ने वाला वह राक्षस उस महिला के मुख से बार-बार यही शब्द कहलाता था, "मुझे पुट्टापर्ती ले चलो। मैं चला जाऊँगा।" 'पुट्टपर्ती' क्या है? यह कोई स्थान है, व्यक्ति है, दवा है, रत्न है, अथवा कोई मूर्ति? यह किसी को ज्ञात न था। बहुत पता लगाने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके निवास स्थान से ८०० मील की दूरी पर स्थित पुट्टापर्ती एक छोटा-सा गाँव है। उन लोगों ने उस महिला के हाथ में एक लिखा हुआ कागज का टुकड़ा देकर उसे अकेले ही पुट्टापर्ती भेज दिया। उसमें लिखा था "जिस प्रेत ने इस महिला पर अधिकार कर रक्खा है, वह केवल पुट्टापर्ती में बाल-साई द्वारा ही छोड़कर जाने को तैयार है। कृपया इसे उससे मुक्त कीजिए और वापस घर भेज दीजिए।" ऐसे भाग्यशाली लोग जिन्हें बाबा रोग या प्रेत बाधा से मुक्त कर देते थे, ईश्वराम्मा के पास उनसे आशीर्वाद लेने के लिए लम्बी पंक्ति लगाते। वे आशीर्वाद देतीं अवश्य किन्तु इसमें उन्हें अत्यंत हिचक और अनिच्छा का अनुभव होता; जो क्षम्य भी था। न

केवल वे प्रचार और ख्याति से घबरातीं थीं। वे इस बात से पूर्णतः आश्वस्त न होतीं कि उनके पास आने वाले लोग निश्चय ही स्वामी के शुभेच्छु है ।

साई बाबा के आवाहन से आकर्षित होकर प्रतिदिन दर्जनों की संख्या में लोग इस नगण्य ग्राम पुट्टापर्ती में आने लगे। आवागमन के साधनों में भी सुधार हुआ। इस क्षेत्र में बसें भी चलने लगीं। जो लोग ट्रेन से यात्रा करके पेनुकोण्डा या धर्मावरम् स्टेशन पर उतरते वे चार-पाँच घण्टे में पुट्टापर्ती पहुँच जाते, किन्तु वह यात्रा अत्यंत थकान वाली होती। श्रीमती सुशीलाम्मा ने, जिन्होंने उन प्रारम्भिक वर्षों में यह यात्रा की थी, सन् 1942 में की हुई अपनी एक यात्रा का वर्णन इस प्रकार किया है, "पेनुकोण्डा रेलवे स्टेशन से दो मील की हड्डी तोड़ यात्रा एक झटके (ताँगा) से की। तब कहीं बस्ती में आये। उसके बाद जब हम बस स्टेशन पर बस की राह देख रहे थे, लोगों की एक भीड़ जमा हो गई। इनके लिए साई बाबा केवल एक मजाक थे, या बनावटी बाबा थे। अतः ये लोग हमारी हँसी उड़ाने लगे। भला वे लोग, जिनके लिए साई-बाबा केवल गाँव के एक सामान्य बालक थे, उनके ईश्वरत्व में किस प्रकार विश्वास करते? जब हम बस पर चढ़ रहे थे तो वहाँ घूमने वाले नवयुवक छोकरे निरादर के भाव से हँसते और तरह-तरह से मुँह बनाते। जब हम बुक्कापटनम् पर उतरे तो हम थक कर चूर और अधमरे हो चुके थे। पास ही में मन्दिर का विशाल रथ था।

"पर अब क्या हो ? प्रश्न यह था शेष यात्रा बैलगाड़ी द्वारा तै की जानी थी। पर उसका कहीं अता-पता न था। उसके बैल कहीं पहाड़ी पर चरने चले गये

थे और गाड़ी कहीं दूसरी जगह खड़ी थी। उसका पिछला भाग जमीन को छू रहा था और अगला जिसमें बैल जोते जाते थे, हवा में मुँह उठाये खड़ा था। वहाँ कोई ऐसा माई का लाल न था जो उन दोनों को एक जगह एकत्र कर उसे बैलगाड़ी का रूप देने में सहयोग देता। हम लोग असहाय की तरह खड़े थे। पर अंत में किसी न किसी ने हम पर दया की। हमारी स्थिति को देखकर एक सहृदय महिला ने हमें अपने घर पर आमंत्रित किया, और यात्रा के लिए बैलगाड़ी को तैयार कराया। उनकी सहृदयता केवल उस एक दिन तक सीमित नहीं रही। उन्होंने इस बात की हमको स्वतंत्रता दी कि हम जब भी इस मार्ग से निकलें और हमें किसी भी वस्तु की आवश्यकता हो तो हम निस्संकोच उनसे माँग सकते हैं। हमें केवल यादलम्म का घर पूछना पड़ेगा।

"गाड़ी पर हमारा सामान लदा हुआ था, किन्तु हम लोग पूरे चार मील पैदल चलकर आए। रास्ता इतना खराब था और इतने दचके लगते थे कि गाड़ी पर बैठना असम्भव था। अंत में हम लोग चित्रावती के तट पर पहुँचे। नदी में बाढ़ थी। गाड़ीवान ने गाड़ी को नदी में उतारने से इन्कार कर दिया। हमारे कहने पर उसने आक्रामक रवैया अपनाया और मोड़कर गाड़ी को वापस बुक्कापटनम् ले जाने वाला था कि हमने देखा कि दो व्यक्ति जल के प्रवाह को चीरते हुए सीधे हमारी ओर चले आ रहे थे। हमें विश्वास नहीं हुआ, किन्तु साई बाबा को यह पता चला गया था कि हम लोग आ रहे हैं और उन्होंने दो व्यक्तियों को भेजा कि गाड़ी सहित हम लोगों को ले आयें। 'नदी का पानी धीरे-धीरे उतर रहा है,' उन्होंने कहा और हमने देखा कि

सचमुच पानी उतर गया। एक दूसरे का हाथ पकड़कर हम लोगों ने कमर तक पानी में नदी पार की। "

(सुशीलाम्मा की यात्रा के छः लम्बे वर्षों बाद मेरी पत्नी और मैं सन् 1948 में पहली बार पुट्टापर्ती आये। पेनुकोण्डा तक ही ट्रेन यात्रा, ताँगे के झटके, बस की परेशानी, बैलों की खोज, ऊपर-नीचे वाला धचकेदार कच्चा रास्ता, गाड़ी के पीछे की पैदल चलाई, कीचड़, बालू और अचम्भों का सिलसिला- ठीक पहले की तरह था और हमें भी उसका सामना करना पड़ा।)

पाठकगण। आइए, हम सुशीलाम्मा के शेष कहानी सुनें। “बाबा हमारा स्वागत करने के लिए राह देख रहे थे और वे इस वेग से हमारी ओर दौड़ते हुए आए, जैसे कि एक माँ अपने बहुत थके और चलने में असमर्थ बालकों की ओर दौड़कर आती है। जितनी थकान का अनुभव हम कर रहे थे, उससे कहीं अधिक मात्रा में उन्हें हमारी थकान का अनुभव हो रहा था। 'आओ आओ।' स्वामी ने कहा, 'तुम लोग अवश्य बहुत थक गए होंगे- यात्रा, भूख-प्यास और फिर यह नदी। मैं दोपहर से ही तुम लोगों की राह देख रहा था। वे हमें मन्दिर में ले गए, जहाँ कुछ भक्तगण-छायाम्मा, कृष्टाम्मा, सौभाग्याम्मा, सत्यवताम्मा उपस्थित थीं। 'ये देखो मेरे बच्चे हैं, जो अभी-अभी आये है।' उन्होंने कहा, 'इनकी थालियाँ भर दो। ये बहुत भूखे हैं। वे हमारे बगल में बैठ गए और उनके सांत्वना के मधुर शब्दों ने हमारी सारी थकान दूर कर दी। हमको वहाँ तक पहुँचने में जिस-जिस कठिनाई का सामना करना पड़ा था, उन्होंने विस्तार से सारी बातें वहाँ के उपस्थित

समुदाय को बतायीं। उनकी मधुर वाणी, प्रेममयी दृष्टि और मोहक मुस्कान हम लोगों ने अपने अंतर को इस सबसे खूब छक कर भरा। फलस्वरूप न तो हमें भूख महसूस हुई और न थकान। हमारे सामने पत्तलें डाली गयीं और उन पर खाना परोसा गया, तो हमें भूख ही न थी। हम केवल उनके मुख की ओर अपलक देखते ही रह गए। यह देखकर उन्होंने अपनी पत्तल में भोजन को मिलाया और उसके लड्डू बनाकर एक-एक लड्डू हमारी पत्तल में परोस दिया।

“गर्मी की उस पूरी रात हम अन्दर के आँगन में खुले आकाश के नीचे सोए। पुरुष साई की शैय्या के एक ओर और महिलायें दूसरी ओर । लगभग प्रातः काल दो या तीन बजे स्वामी अपने कमरे में विश्राम के लिए गए। हम लोग भी जल्दी जग गए। नदी में स्नान किया और फिर दर्शन के लिए आ पहुँचे। आह! वह कितना स्वर्गीय आनन्द का क्षण था, जब हमने कपूर जलाकर भगवान की आरती उतारी।"

छायाम्मा ने उन्हें गाँव का रास्ता बतलाया जहाँ ईश्वराम्मा रहती थीं। उन दिनों वे अपनी पुत्री वेंकम्मा के साथ रह रही थीं। उन्होंने ईश्वराम्मा के चरण स्पर्श किये, किन्तु से संकोच से पीछे हट गई, मानों जो कुछ भी हो रहा था, उससे वे दुःखी थीं। वेंकम्मा ने उन्हें समझाया कि उनके दुःख का एक मात्र कारण यही था कि उनके पुत्र (स्वामी) ने अब उनके साथ न रहकर उनसे दूर रहना पसंद किया। "मैं तुमसे सम्बन्धित नहीं हूँ। मुझे अपना काम पूरा करना है। मेरे भक्त मुझे बुला रहे हैं..." बाबा के कहे हुए ये

शब्द ईश्वराम्मा की स्मृति में सदैव गूँजा करते हैं। स्वभावतः जब बाबा के प्रिय और चुने हुए लोग उनके सम्मुख आते हैं, तो यह स्मृति और दुःखदायी हो जाती है। किन्तु सुशीलाम्मा ने कहा कि "हम लोग स्वामी की पवित्र जननी का आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए कृतसंकल्प थे। बिना निराश हुए हमने दूसरे दिन प्रयत्न किया। वे उस दिन भी वैंकम्मा के निवास स्थान पर दिखलाई पड़ीं। किन्तु उस दिन वे उन लोगों को देखकर मुस्करा पड़ीं। पूरे वार्तालाप में वे उनके प्रति अत्यंत दयालु प्रतीत हुईं और उनकी कुशल-क्षेम के प्रति सजग थीं। किन्तु इसी बीच उन्होंने प्रश्न किया, "तुम्हारे स्वामी कैसे हैं? स्वस्थ हैं? कुछ खाते-पीते हैं या नहीं?"

ईश्वराम्मा जब तब मन्दिर में चली जाती थीं। उन दिनों मन्दिर में जाने के लिए उनके अथवा किसी और के लिए भी कोई निश्चित समय न था। मन्दिर के द्वार सदैव खुले रहते थे और कोई भी व्यक्ति किसी भी समय जाकर सोलह वर्षीय साई बाबा के दर्शन कर सकता था। वे या तो मुख्य भवन में, या अपने छोटे कमरे में, मन्दिर के सामने खुले हुए स्थान में अथवा भजन के अवसर पर उपलब्ध थे। ईश्वराम्मा प्रतिदिन नवागन्तुकों को देखतीं, उनसे बात करतीं और फिर चुपचाप उन महिलाओं की ओर चली जातीं, जो माँ के ही समान उनके पुत्र की देखरेख में व्यस्त थीं। वे उनसे अत्यन्त अनुनय-विनय के साथ कहतीं, "पूरी लगन से उनकी सेवा और देखभाल करना। देखो, कितना दुबला हो गया है, उसकी एक-एक पसली गिनी जा सकती है। उसके वस्त्रों तक से वे झाँकती हैं। हम जो कहेंगे उसे तो वह सुनेगा ही नहीं। वह तो अपने ही ढंग से काम करता है। उल्टे

हमसे कहता है 'ठीक से व्यवहार करना सीखो।' इतना ही नहीं, वह जो कुछ भी करता है, उसे इस ढंग से समझाता है कि सिवा उसे ठीक मान लेने के और कोई चारा ही नहीं।”

अट्ठाईस वर्ष बाद जब न्यूयार्क के ऑर्नल्ड शुल्मेन पुट्टापर्ती पधारे थे, तब भी माँ की वेदना में कोई कमी नहीं हुई थी। उन दिनों वे प्रार्थना-भवन के पीछे बनी हुई इमारत के सात कमरों में से एक में रह रही थीं। शुल्मेन जब उनसे मिले तो उन्हें यद्यपि किसी व्यक्ति विशेष से शिकायत न थी, फिर भी सैंकड़ों और हजारों लोग अब पुट्टापर्ती आकर उनके पुत्र को घेरे रहते थे, कुछ ऐसा भाव अवश्य झलकता था। संयोगवश वे ईश्वराम्मा से ऐसे दिन मिले थे, जब वे विशेष रूप से चिंतित दिखाई पड़ती थीं। “लोग उन्हें अकेला क्यों नहीं छोड़ते? न वे सो पाते हैं, न खा पाते हैं? लोगों को केवल अपने लाभ की ही चिन्ता रहती है? और उन्होंने प्रशांति निलयम के एक निवासी डाक्टर से, जो शुल्मेन को अपने साथ उनके पास लाया था, बड़े गोपनीय ढंग से कहा, 'उसे उन लोगों का बनाया खाना पंसद नहीं आता। उसे केवल मेरा बनाया भोजन ही अच्छा लगता है। इसी कारण तो भोजन नहीं करता।' जैसे-जैसे समय बीतता गया और विश्व के भिन्न-भिन्न भागों से सर्वोच्च प्रेम, शक्ति और ज्ञान के स्रोत भगवान बाबा के विषय में पता चलता गया, ईश्वराम्मा ने भी यह अनुभव किया कि । जिन्होंने पुत्र के रूप में जन्म लिया है, वे ही इस सृष्टि के कर्ता, धर्ता और विधाता, परमब्रह्म, परमात्मा हैं और इस सृष्टि के पिता हैं। फिर भी जीवन में ऐसे भी क्षण आते थे, जब माया का आवरण उन्हें ढँक लेता था और

उनका मातृत्व उन्हें अभिभूत कर लेता था।” (ऑर्नल्ड शुल्मेन की पुस्तक 'बाबा' से)

हम पुनः सुशीलाम्मा के प्रसंग को लेते हैं। वे लोग स्वामी के पिता से मिले, जो दिन में एक-दो बार मंदिर आ जाते थे। प्रार्थना-भवन के पीछे सुशीलाम्मा ने अपने लिए अस्थायी रसोई बनाने का प्रबन्ध कर रखा था। यह देखकर वेंकपा राजू ने कहा कि उनको रसोई बनाने के लिए चावल, आटा, दाल, तेल, ईंधन आदि किसी भी वस्तु की आवश्यकता हो, वे बतायें। वे सहर्ष उसे बुक्कापटनम् अथवा किसी भी जगह से ला देंगे। जब लोग मन्दिर में और गाँव में उन्हें अच्छी तरह जानने लगे तो उन्होंने स्वामी के माता-पिता से यह प्रार्थना की कि वे उन्हें पूजार्चन के लिए श्रद्धांजलि अर्पित करने का अवसर प्रदान करें। प्रारम्भ में स्वामी ने इसके लिए कोई. रुचि नहीं दिखाई, किन्तु जब वे इस प्रार्थना पर अड़े रहे, तो उन्होंने कुछ इस भाव से सिर हिलाया कि 'ठीक है, जो तुम्हारी समझ में आये, करो।"

उनके माता-पिता एक साथ बैठे और उन्होंने वह पूजा स्वीकार की तथा आशीर्वाद दिया। इस प्रकार सुशीलाम्मा और उनके पति को जो आनन्द प्राप्त हुआ वह अवर्णनीय था। मन्दिर के निवासियों ने उन्हें बतलाया कि यह एक अलभ्य वरदान था, जो सम्भवतः बहुत कम भक्तों को प्राप्त हुआ था।

सुशीलाम्मा एक दिवस स्वामी की माँ से उनकी लीलाओं का वर्णन कर रही थीं, जो हमें एक बार पुनः श्रीमद्भागवत में वर्णित गोकुल और वृन्दावन के पुण्य स्थलों पर ले जाता है। "आप इतनी चिंतित और दुःखी क्यों होती है?" उन्होंने ईश्वराम्मा से कहा, "आप उन स्त्री रत्नों में से हैं, जिन पर प्रभु ने सबसे अधिक कृपा की है।" ईश्वराम्मा कुछ क्षणों तक चुप रहीं फिर बोली, "तुम यह कैसे जान सकती हो कि मैं क्यों दुःखी हूँ? यदि तुमने अमूल्य रत्न को जन्म दिया होता और वह बड़ा होकर ख्याति अर्जित कर तुमसे कहीं दूर चला जाता, तब तुम्हें इसका अनुभव होता। अरे! यह बालक कितना दिव्य था। पास-पड़ोस में कोई भी बालक इसके समकक्ष न था। यह देखने में इतना सुन्दर था - लाल-लाल इसके कोमल अधर थे, गालों पर गुलाबी रंग झलकता था, और इसके सिर पर इतने सुन्दर घुंघराले बालों की लटे थीं। इसकी दृष्टि इतनी लुभावनी थी कि मन सहज ही मुग्ध हो जाता था। स्वभाव अत्यन्त मृदु और सरल था। उसका व्यवहार अत्यन्त शालीन था- शांत, सौम्य और सहृदय। अपने शैशव काल के आरंभ से ही दीनों, दलितों और पीड़ितों के लिए इसके हृदय में कूट-कूटकर करुणा भरी थी। जाति, कुल, वर्ण, यहाँ तक कि स्वच्छता का भेद-भाव किए बिना यह गाँव के सभी बालकों को समान रूप से प्रेम करता था। किन्तु इसका दया भाव केवल भावनात्मक स्तर तक ही न था। यह सदैव उनके लिए. कुछ-न-कुछ ठोस कार्य करने में विश्वास रखता था। कोई भी भूखा व्यक्ति हमारे यहाँ से भोजन किए बिना जाने नहीं दिया जाता था। मैं तुम्हें कुछ ऐसी घटनाएँ बतलाऊंगी।

"एक दिन जब सत्य एक भिखारी को खाना खिला रहा था, घर के लोगों ने इसे देख लिया और सभी लोग इस पर चिल्लाने लगे। इस छोकरे को देखो तो। कितनी हिम्मत है। समझता है, घर का मालिक मैं ही हूँ। बंद करो इसकी इस आदत को। यह तो घर को बर्बाद कर देगा। इस तरह घर के सदस्य उसकी जन्मजात सद्भावना की आलोचना करने लगे और उसके तुम दोष निकालने लगे। किन्तु बालक के उत्तर से हम दंग और चुप रह रहे। वह बोला, 'मैंने भिखारी को केवल अपने हिस्से का भोजन दिया है, जो मुझे खाने को दोगी।' और जब भोजन का समय हुआ और थालियाँ परोसी गयी, उसने आने से इन्कार कर दिया। 'जब उस व्यक्ति की भूख शान्त हो गई थी, उसी समय मेरी क्षुधा भी मिट गई,' उसने कहा और अपनी बात पर अटल रहा। हम लोगों ने उसे बहुत डराया-धमकाया, बहुत अनुनय-विनय भी की, पर सत्य टस से मस न हुआ और उस दिन उसने भोजन नहीं किया।

" उन दिनों हमारा परिवार बहुत बड़ा था और किसी के भी पास आवश्यकता से अधिक वस्त्र न थे। बच्चे के पास केवल दो जोड़ी वस्त्र थे एक वे पहनते थे और दूसरी जोड़ी बदलने के लिए। एक दिन सड़क पर कोई वस्त्रहीन बालक ठंडे में थर-थर काँप रहा था। सत्य ने जैसे ही उसे देखा, खट से अपनी कमीज उतारी और उसे पहना दी। किसी भी व्यक्ति के दुःख और कष्ट को तत्काल मिटाना उसका स्वभाव है, चाहे वह व्यक्ति कोई हो, छोटा या बड़ा, तरुण या वृद्ध, कुलीन अथवा सामान्य

“बचपन के दिनों में परिवार की कठिन परिस्थितियों का सामना इसको भी करना पड़ा। पर मैं तुम्हें बताऊँ, मेरे लिए तो मेरे बच्चे ही सबसे बड़ा संतोष और सुख थे। आगे चलकर हमें सत्य को घर से बाहर दूर भेजना पड़ा, ताकि वह पढ़-लिख जाये। किन्तु हमने उसे जिस घर में भेजा था, वहाँ उससे इतना अधिक काम लिया गया कि पढ़ने के लिए उसे समय ही न मिल पाता था। किन्तु सत्य ने हमसे इस सम्बन्ध में कभी एक शब्द भी नहीं कहा। उसने सब कुछ चुपचाप शान्तिपूर्वक सहन किया। यह तो वहाँ के पास-पड़ोसियों ने हमें बताया। एक बार जब वह छुट्टियों में घर आया, तो मैंने सोचा आज इसे तेल की मालिश करके नहला दूँ। अतः मैं एक औषधियुक्त तेल उसके शरीर पर रगड़ रही थी, तभी मैंने देखा कि उसके कंधे के आसपास की त्वचा का रंग कुछ काला-सा है। मैंने उससे पूछा, 'यह क्या है?' उत्तर मिला, 'पता नहीं, मैंने तो कभी ध्यान ही नहीं दिया, क्योंकि वहाँ कभी दर्द ही नहीं हुआ। उसके पूरे शरीर पर नीले-नीले निशान थे, जिससे पता चलता था कि उसे बेंतों से पीटा गया है। बाद में चलकर अन्य लोगों ने हमें बताया कि सत्य को गाँव के बाहर एक कुँए पर जाना पड़ता था और दिन में दो बार अपने कंधों पर पानी से भरे घड़ों की काँवर रखकर लाना पड़ता था। इसी कारण उसके कंधों पर वे काले निशान पड़ गए हैं।

“परिवार में यहाँ सब लोग यही समझते रहे कि वह बहुत स्वस्थ और प्रसन्न है, नियम से स्कूल जाता है। हम इस वास्तविकता से नितांत अपरिचित थे कि उसे भरपेट भोजन भी नहीं दिया जाता था और वहाँ रहते

हुए उसे अनेक यंत्रणाओं का शिकार होना पड़ा। अंत में जब मुझे पता भी चला तो मैं कुछ न कर सकती थी सिवाय इसके कि मैं रात भी जागती पड़ी रहती और अनेकों देवी-देवताओं से यह मनौती मनाती रहती कि मेरा सत्य सकुशल पुट्टापर्ती लौट आए। कुछ वर्ष ऐसे ही व्यतीत हो गए, पर कोई छुटकारा नहीं। इसके बाद हमें बताया गया कि सत्य अत्यन्त शीघ्रता से उन्नति कर रहा है। गायन, वादन और मृदु संभाषण में उसकी प्रगति असाधारण थी। वह जिस विषय पर चाहता, बोल सकता था। किन्तु शीघ्र ही हमें उर्वाकोण्डा से एक दूसरा दुखःदायी समाचार मिला। सत्य ने एक दिन यह घोषित कर दिया कि हम उसके माता-पिता-माया हैं और वह माया में लिप्त रहना नहीं चाहता। जब मैं उसके आमने-सामने खड़ी हुई, तो वह बोला, 'माया! न तुम मुझसे बंधी हो और न मैं तुमसे' और यह कहकर उसने घर छोड़ दिया और जाकर उन लोगों के साथ रहने लगा, जिन्हें वह समझता है कि अपने है।

“बिना खाये-पीये और सोये मैंने कितने दिन और रातें रोते-रोते काटी हैं, देवी-देवताओं से यह प्रार्थना करते हुए कि वे मेरा पुत्र मुझे लौटा दें। तुम उसे सौंदर्य, सुकुमारता और आनन्द की मूर्तिमान अवतार कहती हो और मेरे विषय में यह चर्चा करती हो कि मैं वह माँ हूँ, जिसने ऐसे सुन्दर बालक को जन्म दिया है, किन्तु क्या कभी मुझे अपने हाथ से बनाया हुआ भोजन उसे खिलाने का अवसर मिलता है, उसे तेल मालिश करने और नहलाने का अवसर प्राप्त होता है जो माँ का अधिकार है? फिर मैं किस दृष्टि से अपने को उसकी माँ कहूँ?" इतना कहकर वे एक उदासी भरे भाव में मौन हो

गयीं। एक दुर्दमनीय आक्रोश, निराशा और किसी हद तक ईर्ष्या का यह दौर शीघ्र ही आत्मालोचना और आत्मभर्त्सना से बदल गया जो अन्त में एक प्रकार की दार्शनिक उदासीनता में परिणत हो गया। सुशीलाम्मा और अन्य भक्तों ने जो ईश्वराम्मा के इस गहरी निराशा भरे दुःख के साक्षी थे, बड़े धैर्य से उस समय की राह देखी, जब उनका दुःख कुछ हल्का हो जाए। तत्पश्चात् उन्होंने उन्हें साई-जननी होने की महत्वपूर्ण भूमिका से अवगत कराया। फिर भी उनकी शैय्या में अश्रु ही तकिए का काम करते थे। चाहे कोई कितनी ही श्रद्धा चरणों में अर्पित करे, उन्हें बोध न होता था।

उनकी कितनी इच्छा थी कि सत्य केवल 'सत्य' ही बना रहता। किन्तु प्रेम के इस अनन्त स्रोत के निकट भाग्यहीन प्रेम से वंचित मानवता का अनवरत प्रवाह नित्यप्रति बढ़ता ही जाता था। कितने ही लोगों ने उन्हें इस बात की बधाई दी थी कि सत्य ने पुट्टापर्ती से कहीं बाहर जाकर न रहने का वचन दिया था भले ही उनके नगर निवासी भक्त उनसे कितनी ही अनुनय-विनय क्यों न करें। किन्तु अब तो ऐसा लगता था कि उनके स्वयं के गाँव में ही उनकी विजय उनसे छिन गयी थी। अब तो केवल कुछ अमूल्य संस्मरण ही रह गए थे। वेदों में उल्लेख है कि जब पिता नवजात शिशु को माँ की गोद में प्रथम बार दूध पिलाने के लिए देता है तो कहता है, "ऐ सरस्वती! मातृ प्रेम से आपूर्ण तुम्हारा वक्षस्थल मधुर पौष्टिक आहार से भरा हुआ है, जो न केवल शरीर को पुष्ट करता है, वरन् बुद्धि और कौशल को बढ़ाता है। यह बालक तुम्हारा दुग्ध पान करे ऐसी मेरी अभिलाषा है।" उस अवसर का स्मरण कर ईश्वराम्मा कितनी प्रसन्न थीं।

पन्द्रह वर्षों के जीवन के उतार-चढ़ाव, सुख-दुख के होते हुए भी उस दिन का चित्र स्पष्ट और स्वच्छ था। समय की धूल उसे धुंधला न बना सकी थी। यह वह सम्पत्ति थी, जिसे उन्होंने अपने हृदय कोषागार में सुरक्षित संजोकर रक्खा था। जब भी वे अकेली होती, स्मृति के इस कोष को खोलकर उसे

खिलातीं और दुलराती और एक गहरी उच्छ्वास के साथ बंद कर देतीं। उन्हें इस बात का अत्यन्त भय था कि लोगों की ईर्ष्या उनके पुत्र के लिए किसी बीमारी और बदनामी का कारण न बने। कट्टरपंथी भावना ने फुफकार मारी थी, जब क्षत्रिय कुल में उत्पन्न राजू परिवार के एक लड़के ने सर्वप्रथम ब्राह्मणी सुब्बाम्मा का हृदय जीत लिया था। यही अंधविश्वास भय में परिवर्तित हो गया था, जब सुब्बाम्मा ने बतलाया कि सत्य ने उसके दिवंगत पति के शरीर को बिल्कुल वैसा ही सजीव उसके सामने प्रदर्शित किया, जैसा वह जीवित अवस्था में था। गाँव के लोग अब उनके पुत्र के विषय में इस ढंग से चर्चा करते थे, मानो किसी चमत्कार की चर्चा कर रहे हों। मानों क्षितिज पर कोई धूमकेतु उदय हुआ हो अथवा मानो आकाश से मधु की वर्षा हो रही हो। जैसे बालक अन्धकार से डरते हैं; ये लोग प्रकाश से घबराते थे। ईश्वराम्मा ऐसे भक्तों से, जो बाबा पर अटूट श्रद्धा रखते थे, अपने मन के भय और आशंका की चर्चा करती थीं, “इन राक्षसों ने सत्य को विष देने का प्रयास किया, किन्तु उसने विष से भरी वह सामग्री मुँह से उगल दी और उस ब्राह्मण महिला को, जो इसके लिए उत्तरदायी थी, क्षमा भी कर दिया। यह तो पहले की बात है। अब जब सत्य

साई बाबा के रूप में हैं, वे उसे हानि पहुँचाने के लिए क्या कुछ न करेंगे? भक्तों की इन लम्बी-लम्बी पंक्तियों से मुझे भय लगता है। जितनी अधिक भक्तों की संख्या होगी, उतना ही उन लोगों से खतरा है, जो उसका अशुभ चाहते हैं, और उसके विषय में अनुचित बातें करते हैं।" ईश्वराम्मा सम्भवतः इस तथ्य से अवगत न थी कि शनैः शनैः उन्हें प्रेम से आलोकित इस पृथ्वी रूपी रंगमंच पर ईशु की माँ मेरी से भी अधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए कभी कठोर और कभी कोमल बनाया जा रहा है।

---

९. आश्चर्य का भँवर

सत्य,जिन्हें अब लोग साई बाबा के रूप में जानते थे, अब ऐसे " लोगों से घिरे रहते थे और सेवित थे जो किसी समय शिरडी में साई बाबा के दर्शनों से शांति और आनन्द प्राप्त करते थे। अब जब उन्हें ज्ञात हुआ कि सीमोल्लंघन करके वे पुनः पृथ्वी पर अवतरित हुए हैं, वे सत्य साई.. बाबा के पास पहुँचने लगे। (सीमोल्लंघन का धार्मिक कृत्य सम्राटों और शासकों द्वारा मनाया जाता है। विजयादशमी के दिन वे अपने-अपने

राज्यों की सीमाओं को पार करते हैं। सन् 1918 में शिरडी साई बाबा ने अपने पार्थिव शरीर त्याग के लिए विजयादशमी का दिन ही चुना था। प्रतीक रूप में इस संसार-यात्रा का त्याग भी सीमोल्लंघन है।) भगवान कृष्ण ने ईश्वर के चार प्रकार के भक्त बतलाये हैं- (1) जो किसी न किसी प्रकार की शारीरिक अथवा मानसिक बाधा से पीड़ित हैं, (2) वे जो उत्सुकतावश आते हैं; (3) वे जो अपनी दरिद्रता से मुक्त होना चाहते हैं और (4) वे जो हृदय से परमात्म-शक्ति की खोज में संलग्न हैं। नवयुवक साई बाबा के पास भी इन चारों प्रकार के भक्त आते थे। बंगलौर से बहने वाली भक्तों की क्षीण धारा त्रिचनापल्ली, मद्रास, हैदराबाद, कुप्पम और इरोड से आने वाली अपनी सहायक नदियों से मिलकर एक विशाल नदी में परिवर्तित हो गयी। ईश्वराम्मा दैवी रहस्य के उस प्रभाव से, जिसने जनसाधारण में इतना प्रेम और भक्ति उत्पन्न कर दी थी, आश्चर्यचकित थीं।

सत्य उनसे बारम्बार यही दुहराते रहे कि वे माया रूपी पात्र हैं। उन्होंने अब ईश्वराम्मा को 'अम्मा' या 'थल्ली' शब्द से सम्बोधित करना बंद कर दिया था। वे अब उन्हें 'ग्रहम् अम्मायी' कहकर सम्बोधित करते थे अर्थात् गृह-कन्या। यह सम्बोधन अपने में अत्यंत नीरस और पृथकता बोधक था। इससे किसी भी प्रकार पारिवारिक सम्बन्ध का बोध न होता था। 'गृहम् अम्मायी’ शब्द केवल उस समय उपयुक्त लगते थे, जब कोई वयोवृद्ध संरक्षक इसके द्वारा घर के किसी अबोध बालक को बुलाये। 'गृहम्’ शब्द से सम्भव है उन्हें कुछ सांत्वना मिलती हो, क्योंकि इससे कम से

कम इतना तो पता चलता था कि वे घर की एक सदस्या थी, कोई घूमने-फिरने वाली लावारिस नहीं। स्वामी का कथन है कि मुझे लोग तभी जान सकते हैं, जब लोगों ने हमारे धर्म ग्रंथों का समुचित अध्ययन किया हो। बिना इसके वे मुझे अंशमात्र भी नहीं समझ सकते। श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार कृष्णावतार की घोषणा आकाशवाणी द्वारा की गयी थी। घोषण हुई, “मैं वसुदेव के घर में जन्म लूँगा।” अतः कृष्ण के लिए भी पिता 'अब्बायी' और माता 'अम्मायी' हुए। एक ऐसा अविस्मरणीय दिन भी हुआ, जब स्वामी पुट्टापर्ती में ईश्वराम्मा को एक अंधेरे कमरे में ले गए और दक्षिण-पश्चिम दिशा की ओर संकेत किया। उन्होंने देखा कि वहाँ अंधकार में एक मस्जिद चमक रही है, जिसमें एक आसन पर शिरडी साई बाबा बैठे हुए हैं। भाग्य से स्वामी ने अपने पूर्व वाले साई बाबा का वेशभूषा की दृष्टि से पूर्ण अनुकरण नहीं किया था। शिरडी बाबा को तो फटे-चिथड़े ओर पैबन्द लगे वस्त्र ही पसंद थे। उनकी कफनी में कभी कंधों पर और कभी सीने पर बड़े-बड़े छेद दिखलाई पड़ते थे।

'स्वामी' को इस शब्द से सहज उच्चारण के लिए ईश्वराम्मा को कुछ महीने लग गये। सबसे पहले उन्होंने कुप्पम से आई हुई कुछ महिला भक्तों से बाबा के लिए इस शब्द का सम्बोधन सुना। उन्हें यह सम्बोधन 'बाबा' शब्द से कहीं अच्छा लगा। 'बाबा' शब्द से तो उन्हें एक बनावट और दूरी की झलक दिखाई पड़ती थी। किन्तु यह कुणम शब्द 'स्वामी' उन्हें कुछ निकट का लगा। 'बाबा' शब्द से ऐसा भासित होता था कि स्वामी अगम्य हैं, लोगों की पहुँच के परे हैं और प्रेम व आराधना का क्षितिज भी बहुत दूर

है। किन्तु 'स्वामी' शब्द में तनिक दूरी होते हुए भी एक प्रकार का सामीप्य था। भले ही वह मन्द स्वर में एक फुसफुसाहट ही हो; वह वाणी तो थी, स्वर तो था। चरण ही सही, पर उन्हें स्पर्श करने की निहित सहमति तो थी। अतः ईश्वराम्मा भक्तों के उस दल में सम्मिलित हो गयीं जो उनके पुत्र को 'स्वामी' कहकर पुकारता था। ज्यो-ज्यों समय बीतता गया, शब्द मधुर होता गया।

सत्य के समक्ष प्रकांड पांडित्यपूर्ण प्रश्न समाधान के लिए प्रस्तुत किए गए। जब ईश्वराम्मा ने स्वामी को इन समस्याओं से घिरे देखा, उन्होंने परमात्मा से हार्दिक प्रार्थना की कि सत्य के द्वारा दिए हुए सभी उत्तर सही और संतोषजनक सिद्ध हों। प्रश्नकर्ताओं में अनेक तो धुरंधर विद्वान थे। यह बात सरलता से जानी जा सकती थी कि उनके द्वारा किए हुए अनेक प्रश्न मुख्यरूप से स्वामी के लिए चुनौती के रूप में उनकी परीक्षा लेने के लिए किये गए थे। उर्वाकोण्डा के शास्त्री महोदय ने, जो भारतीय प्राचीन ग्रंथों में पारंगत थे, ईश्वराम्मा से कहा था कि अपने पूर्वजन्म में स्वामी निश्चय ही विलक्षण पंडित रहे होंगे। फिर भी ईश्वराम्मा को लगता था कि उनकी, प्रार्थनायें निश्चित रूप से उनकी प्रतिभा सम्पन्नता और विद्वत्ता को यथावत् बनाये रक्खेंगी। तीर्थ यात्रियों ने उनसे शिकायत की कि जब वे बुक्कापटनम् की बस पर चढ़ने लगे तो वहाँ के लोग उनकी हँसी उड़ाने लगे और उन्हें वहाँ से वापस भगा देना चाहते थे। वे कहते हैं कि बाबा की कलई खुल गयी है। उनकी शक्ति नष्ट हो गयी है, और अब उन्होंने दर्शन देना बंद कर दिया है। पेनुकोण्डा और धर्मावरम् में इस बात की बड़ी

अफवाह है, कि सत्य साई बाबा वाला रूप अधिक दिन रुकने वाला नहीं और जब वह समाप्त होगा तो पुनः राजू परिवार से सम्बन्धित होने का ज्ञान अत्यधिक घातक सिद्ध होगा।' स्वभावतः ईश्वराम्मा अपनी सम्पूर्ण निष्ठा से परमात्मा से यह प्रार्थना करने लगी कि उनके पुत्र में पायी जाने वाली रहस्यमयी चमत्कारी शक्ति वर्षों तक उनमें बनी रहे।

एक दोपहर को साठ वर्षीय एक साधु जो नितान्त वस्त्रहीन और नग्न था और दोनों पैरों से पंगु था, एक डोली में मंदिर के अंतः प्रकोष्ठ में लाया गया। वह वृद्ध मौन व्रत धारण किए था; किन्तु उसके शिष्य चाहते थे कि युवा साई बाबा आकर उनके गुरु के लंगड़े पैरों को (ठूंठ) स्पर्श करें और उनसे आशीर्वाद लें। लगभग तीस व्यक्ति इस पूरी घटना को देख रहे थे। वे स्वामी की क्या प्रतिक्रिया होती है, इसे जानने को उत्सुक थे। सर्व प्रथम तो बाबा ने उस वृद्ध की ओर एक तौलिया फेंकी, जिससे कि वह अपने शरीर को ढक ले। ईश्वराम्मा धक् से रह गई। उनका शरीर भय से काँप उठा। इस व्यक्ति के शिष्य अब न जाने क्या करें? किन्तु बाबा ने मृदु और मंद स्वर में कहना आरम्भ किया, "मौन व्रत में भी इस बात की व्यवस्था रहती है कि जब अत्यंत आवश्यक हो, तो व्रत तोड़ सकते हो" उन्होंने सन्यासी से कहा, “शांति तो मनुष्य के मस्तिष्क, हृदय और मन में होनी चाहिए, वाणी पर नहीं। जब तुम चलने में असमर्थ हो और लोगों को तुम्हें इस प्रकार उठाकर चलना पड़ता है, भले ही वे तुम्हारे अनन्य भक्त हों, सबसे अच्छा यह है कि तुम किसी एक स्थल पर स्थायी रूप से रहो। भला अपना बोझ चार मनुष्यों पर क्यों डालते हो? मैं तुम्हारा भारवहन करूँगा। तुम कहीं भी हो

मैं तुम्हें भोजन दूँगा, वस्त्र दूँगा और रहने के लिए स्थान दूँगा। मैं इसीलिये पृथ्वी पर आया हूँ कि तुम्हें पथ दिखलाऊँ और लक्ष्य तक ले जाऊँ।" सब लोगों ने चैन की साँस ली। शिष्यों ने उसकी डोली उठाई और अपने गुरु को लेकर चुपचाप चले गए। जाते समय उसके शरीर पर तौलिया लिपटी थी। वे उसे लेकर बुक्कापटनम् और उससे भी आगे कहीं चले गए। जो लोग मंदिर में रह गए, वे एकदम शांत थे। ईश्वराम्मा ग्रामीण भारत में प्रचलित लोक रीतियों से अवगत थीं। उन्हें भय था कि वह मौन साधु कहीं बाबा से बदला लेने के लिए काले जादू का प्रयोग न करें। अतः उन्होंने तुरन्त ही मन में यह संकल्प किया कि वे उसके निवारण के लिए शिव मंदिर में प्रायश्चित पूजा अवश्य करेंगी, ताकि ऐसी किसी पूजा का प्रभाव उनके पुत्र पर न हो। बेचारी माँ साहस और भय के झूले में झूलती। पर जब बाबा के आशीर्वाद स्वरूप माया का आवरण हट जाता और उन्हें उनकी उस सार्वभौम अगम्य सत्ता की झलक मिल जाती तो उन्हें एक अनिर्वचनीय आनन्द की झलक मिलती और उसकी अनुभूति में वे खो जातीं।

धीरे-धीरे ईश्वराम्मा का मंदिर में आना-जाना बढ़ गया। वे अपलक स्वामी की ओर देखती रहती और अधिक समय तक मंदिर में रुकी रहतीं। वे भयमिश्रित आश्चर्य से स्वामी के निरंतर फैलते हुए प्रेम के प्रभा-मंडल को देखती रहतीं। शनैः शनैः किन्तु दृढ़ता से वे पुत्र स्नेह के बंधन से अपने को मुक्त कर रही थीं और भक्त की भूमिका को अनजाने में ही अपनाती जा रही थीं।

भगवान के भक्तों में चिंचोली की रानी, संदूर की राजकुमारी, मैसूर की राजकुमारी और 'कॉफी क्वीन', सकाम्मा आदि के प्रयत्नों से दशहरा के लोकप्रिय पर्व को दस अत्यंत पवित्र दिनों में बदल दिया गया। वे लोग दशहरे के अवसर पर अपने-अपने अमूल्य रत्नाभूषण ले आई। उन्होंने अनुरोध किया कि दशहरे के अवसर पर स्वामी उन रत्नाभूषणों को धारण करें। स्वामी ने घंटों इसका विरोध किया, उन्हें खिझाया, किन्तु अंत में उन लोगों के आग्रह के सामने स्वामी को झुकना पड़ा और उन्होंने उन आभूषणों को धारण किया। कर्नाटक, आंध्र और तमिलनाडु की महिला-भक्तों को इस बात पर हार्दिक प्रसन्नता थी कि उन्होंने अपने गुरु को नारंगी जरी के किनारे वाले वस्त्र पहनाये, जरी के किनारे वाली रेशम की धोती पहनायी और जरी के कामदार चप्पल पहनाये। स्वामी के हाथ की सभी अंगुलियों के लिए हीरा, जंबुमणि, नील हरित (बेरूज), लहसुनिया, पन्ना, नीलम, फिरोजा आदि अनेक प्रकार के रत्नों की अंगूठियाँ थी। दशहरे के इन दस दिनों तक प्रत्येक दिन अपने पुत्र को सुन्दर वस्त्रों और रत्नाभूषणों को धारण किए हुए फूलों से सजी हुई पालकी में बैठे देखकर ईश्वराम्मा की हार्दिक प्रसन्नता की कोई सीमा न थी।

प्रत्येक रात्रि को ठीक 9 बजे मंदिर से पालकी निकलती और फिर पूरे गाँव में जलूस घूमता हुआ वापस मंदिर आता। ईश्वराम्मा पहले मंदिर में रुकतीं। उनके सामने जब सारा जलूस निकल जाता, तब स्वयं गाँव जातीं और वहाँ अपने घर के सामने से जलूस को भजन-मंडलियों, बिगुल बाजों,

ढोल वालों, तुतुहरी वालों, भक्तों और गाँव वालों के साथ रथ के पीछे निकलता हुआ देखतीं। जलूस के वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते लगभग आधी रात से अधिक समय हो जाता। वास्तव में जल्दी तो किसी को थी ही नहीं। जलूस हर चौराहे पर रुकता और बंगलौर से आए हुए संगीतज्ञ वहाँ अपने अपने प्रिय रागों को विस्तार के साथ गाते। साथ ही गाँव में प्रत्येक व्यक्ति हिन्दू, मुसलमान, अमीर-गरीब, उच्च कुल वाले और नीची जाति वाले सभी यह चाहते कि स्वामी का रथ उनके दरवाजे पर रुके और उन्हें कपूर की आरती करने और भगवान को माला चढ़ाने का अवसर प्राप्त हो। ऐसे अवसरों पर स्वामी की भौहों से विभूति और कुमकुम को सहसा झरता हुआ देखकर जहाँ ईश्वराम्मा आश्चर्य से साँस रोक लेतीं, वहीं भक्तगण श्रद्धा से अभिभूत होकर नमन करते और जय जयकार बोलते।

दशहरे के अंतिम दिन विजयादशमी को हाथी की सवारी और शमी-पूजन का साहसपूर्ण कार्य होता। (परम्परा से क्षत्रिय शासक इसे प्रति विजयदशमी को सम्पादित करते हैं।) पुट्टापर्ती में भी राज-वंश के भक्तों ने इस परम्परा को निबाहा। स्वामी को मुख्यासन पर बिठलाकर वे एक उल्लासपूर्ण यात्रा में गाजे-बाजे के साथ गाँव की सीमा के बाहर उगे एक शमी वृक्ष तक गए, जहाँ उन्होंने प्रतीक स्वरूप एक बाण से उसे बेधा, मानों उन्होंने मानव प्रगति में बाधक सभी दुष्प्रवृत्तियों और शक्तियों के नाश का बीड़ा उठाया हो और फिर विजयोल्लास के साथ वापस मंदिर लौट आये। ईश्वराम्मा को चिंता हुई कि कहीं इससे जनता भड़क तो न उठेगी। किन्तु इस भय के अन्दर छिपी आंतरिक हर्ष की भावना को भी वे कैसे

दबा सकती थीं। उन्होंने सत्य को इस विशाल ब्रह्माण्ड के शक्तिशाली स्वामी के रूप में श्री सत्य साई "सत् चक्रवर्ती" के रूप में जाते हुए देखा।

शीघ्र ही सुब्बाम्मा के निवास स्थान के पूर्वी किनारे पर बना हुआ मंदिर दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई भक्तों को संख्या के लिए बहुत छोटा पड़ने लगा। सुब्बाम्मा तो उस मंदिर को बनवाने के बाद ही दिवंगत हो गयी थीं। वे स्वामी द्वारा उसे प्रयोग में लाया जाता न देख सकीं। स्वामी ने मंदिर के दक्षिणी भाग की ओर फैली हुई विस्तृत गिरिमाला की तलहटी में फैले एक विशाल भूखंड की ओर संकेत किया और यह भविष्यवाणी की कि यह शीघ्र ही एक अन्य तिरुपति के रूप में विकसित होगा, जहाँ लाखों भक्त दर्शन और सत्संग के लाभ के लिए एकत्र होंगे। जब स्वामी ने यह बात कहीं तो उपस्थित जन समुदाय में लोगों ने सोचा "क्या कोरी कल्पना है? क्या लम्बी-चौड़ी डींग है? कहाँ तिरुपति और कहाँ यह निर्जन अज्ञात स्थान।" किन्तु उन्हें आश्चर्य हुआ, जब स्वामी के भक्तों ने सारी भूमि पर अधिकार कर लिया। इंजीनियरों ने नाप-जोख आरम्भ कर दी और निर्माण कार्य आरम्भ हो गया।

---

10. प्रशांति योजना

ईश्वराम्मा को यह जानकर अत्यंत दुःख हुआ। उन्होंने सोचा कि पुट्टापर्ती गाँव को अपने निवास स्थल से अलग और थोड़ा दूर रखने की स्वामी की यह नियम-बद्ध योजना है। जिस मंदिर में अभी स्वामी थे (आज का कल्याण-मण्डप), वह वैसे ही बिल्कुल गाँव की सीमा था और यह नया स्थल तो मंदिर से भी आधा किलोमीटर दूर था। इस नयी योजना के विरुद्ध वे जितने तर्क एकत्र कर सकतीं थीं, किये और मंदिर गयीं। प्रवेश करते ही वे हाल में घुसती चली गयीं। वहाँ स्वामी कुप्पम से आये हुए भक्तों से घिरे बैठे थे। घुसते ही रुआँसे स्वर में वे बोली, "स्वामी, मैं यह क्या सुन रही हूँ? लोग कहते हैं कि आप उस पहाड़ी पर एक नया मंदिर बनवा रहे है। आप किसी ऐसी जगह कैसे जायेंगे जो गाँव से इतनी दूर हो और जो जंगल, साँप और बिच्छुओं से भरी हो? वृद्ध और अस्वस्थ लोग आप के पास तक कैसे पहुँचेंगे ? मातायें अपने छोटे-छोटे बच्चों को लेकर वहाँ कैसे पहुँच सकेंगी? क्या इसके बाद उनके कष्टों और आपत्तियों से आपका कोई सरोकार नहीं? क्या आप उन्हें अपने दर्शनों से वंचित रखना चाहते हैं? भविष्य में जो आपके दर्शनों के लिए आयेंगे, उनके भाग्य का क्या होगा ?"

"आपके तलवों में चक्र का चिन्ह है; इसलिए आप एक स्थान पर कभी न रुकेंगे।" ईश्वराम्मा दुःख और उत्तेजना से पूर्ण कहती चली गई, "बैठकर भजन गाने के लिए स्थान खोजने तक में आपके लिए यह आवश्यक है

कि कभी नदी पार करें, कभी पहाड़। अब कौन-सा निर्जन कोना आपने चुना है, जहाँ मनुष्य तो क्या देवता भी न जायें। क्या आप यह भी नहीं जानते कि इस स्थल से किसी दूसरे स्थान में जाकर रहने के पूर्व आप ज्योतिषियों से तो परामर्श ले लें? और मेरी बात सुनो।" उन्होंने चेतावनी दी, "तुम्हारे लिए यह मंदिर पर्याप्त है। छोटा ही सही, पर जो स्थान लोगों से सदा भरा रहे, वह लाख दर्जे अच्छा है, किसी ऐसे विस्तृत भवन से, जो आधा खाली पड़ा रहे।" माँ द्वारा नए स्थान के विरोध में दिए गए तर्कों की झड़ी का स्वामी की ओर से कोई विरोध नहीं हुआ। स्वामी पूर्ण धैर्य और शांति से जो कुछ ईश्वराम्मा को कहना था, उसे सुनते रहे। अंत में जब उन्होंने कहना समाप्त किया तो केवल मुस्करा दिए। इससे उनकी परेशानी और बढ़ गई। उन्होंने अंत में तंग आकर कहा, “मुझसे बात करो। मेरी बात का उत्तर दो।" स्वामी कुछ नम्र हुए। मृदु स्वर में बोले, *लोगों के कहने में तुम क्यों आ जाती हो? मैं जब वहाँ पहुचूँगा, तो न कोई जंगल होगा, न कोई साँप। प्रतिदिन सैंकड़ों भक्त वहाँ चारों दिशाओं से आयेंगे और वह स्थान एक दिन शिरडी, तिरुपति और काशी बन जाएगा।"

स्वामी द्वारा की हुई इस गुंजायमान घोषण के आगे ईश्वराम्मा के सारे तर्क कट गए। अंत में जैसे व्यक्ति अपनी अंतिम अपील उच्चतम न्यायालय में करता है, वे अपने बड़े पुत्र के पास पहुँची और उनसे कहा, “स्वामी को किसी तरह समझाओ कि वे अपने आपको इसी पुट्टापर्ती के मंदिर में रहने "दें।" उनके कहने से शेषमा राजू ने स्वामी को पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने स्वामी के नया मंदिर बनाकर उसमें रहने के निर्णय का विरोध

किया। किन्तु उस पत्र का जो उत्तर उन्हें मिला, उसने तो उन्हें ऐसा परास्त किया कि साँस लेना भी कठिन हो गया- "एक सोलह वर्ष के लड़के का असीम दुस्साहस तो देखो। लिखता है कि उसे भविष्य में पुत्र न समझा जाए, क्योंकि वह उनका सचमुच पुत्र नहीं है। वह तो अपने संकल्प से मनुष्यों के बीच में मनुष्य बन कर जन्मा है, ताकि वह समस्त मानव जाति को अच्छे-बुरे सबको, कष्ट और त्रास से मुक्ति दिला सके। लाखों लोग संसार के काने-कोने से उसकी खोज करते हुए आयेंगे और उस समय उस विशाल जनसमुदाय के अंतिम छोर पर खड़े हुए वे लोग भी, जिन्हें उस दूरी से उनके नारंगी वस्त्रों की हल्की झलक भी दिखलाई पड़ जाएगी, अपने को बड़ा भाग्यशाली समझेंगे। "

“लाखों आयेंगे? और यहाँ? भला आयेंगे तो ठहरेंगे कहाँ? खड़े कहाँ होंगे?" ईश्वराम्मा ने कहा। शेषमा राजू काफी चतुर थे। उन्होंने परिस्थिति और अधिक न बिगड़े, इसलिए सत्य के व्यवहार के सम्बन्ध में जो उनकी प्रिय तथा निन्दात्मक मान्यता थी, उसे दुहराना टाल गए। किन्तु लक्ष्मय्या ने, जो सत्य का एक भक्त था और जिसे स्वामी अपने साथ उस स्थल को दिखाने ले गए थे, जहाँ नये मंदिर का निर्माण होने वाला था और जिससे उन्होंने लाखों मनुष्यों के वहाँ आने की तथा नारंगी धब्बे के समान अपने दर्शन की बात कही थी, यह पूरी वार्त्ता वहाँ दोहराई, तो शेषमा राजू अपने क्रोध पर संयम न रख सके और बड़े व्यंग्यात्मक स्वर में बोले, “इस रामायण पर कौन विश्वास करेगा?" उधर ईश्वराम्मा ने तो सारे देवी-देवताओं की प्रार्थना और विनती की कि वे इस विशालकाय आयाम वाली

भूल-भुलैय्या का शीघ्र ही कोई हल निकाल दें, जिसने सभी व्यक्तियों को अजीब चक्कर में डाल रखा था।

किन्तु स्वामी के हृदय में इस ग्रामीण महिला (ईश्वराम्मा) के प्रति करुणा उमड़ आई जो उन्हें लगा कि अपनी सरलता के कारण हर चमकने वाली वस्तु को सोना और हर अफवाह को सत्य मान बैठती है। अतः उन्होंने निश्चय किया कि उनके दृष्टिकोण को व्यापक बनाने के लिए यात्रा ही श्रेष्ठ उपाय है, क्योंकि जीवन भर देश के एक ग्राम के आंचलिक समाज से बँधा उनका मन स्वामी की सर्वज्ञता को कैसे समझ सकता है? सत्य ने उनसे कहा कि वे उनके तथा अन्य भक्तों के साथ बंगलौर चलें। वे तेज गति के वाहनों में बैठकर उस दिशा की ओर चल पड़े। वे दोनों ओर फैली हुई लाल रंग की पथरीली और बंजर भूमि और फिर हरे भरे ठंडे ज्वार, धान और रागी, गन्ने और कपास के खेतों के बीच से जाने वाले पक्के मार्गों से गुजरे। मद्रास पहुँचकर ईश्वराम्मा को पहली बार समुद्र देखने को मिला। स्वामी ने उनसे इस महासागर का वर्णन पौराणिक ढंग से किया। उन्हें बताया कि "यही वह सिन्धु है, जहाँ त्रेता युग में भगवान राम ने अपनी बानर सेना के साथ डेरा डाला था और सेतु बाँधकर लंका जाते हुए उसे पार किया था। यदि इस स्थल का थोड़ा भी जल व्यक्ति अपने शरीर पर छिड़क लेता है तो पूर्ण रूप से पवित्र हो जाता है, क्योंकि इसमें गंगा, यमुना, कावेरी और गोदावरी ऐसी पवित्र नदियाँ आकर मिलती है।"

ईश्वराम्मा ने उस अथाह जलराशि के प्रथम दृश्य को जब विस्फारित' नेत्रों से देखा तो देखती ही रह गयीं। उनके अंतर्मन में स्थित सागर स्वयं हिलोरें लेने लगा और आत्मा की गहराई में एक अज्ञात अनुभूति का कंपन हुआ। उन्हें अनुभव हुआ कि निस्सीम विस्तार सहित अपनी तरंगों के उत्था और पतन की लय में अंतकाल से लीन यह महासागर निरन्तर परिवर्तित होते हुए भी सदा की भाँति मर्यादा नहीं छोड़ता। इसका विस्तार अनन्त है। क्षितिज इसकी सीमा है। आकाश इसकी छत है और अंतरिक्ष के सूक्ष्म रंग नीला, भूरा, हरा और मेघवर्णी श्वेत रंग मानों इसके अपने हैं। सहसा ईश्वराम्मा के मुख से विस्मय से भरे शब्द फूट पड़ें, " यही तो ईश्वर ... का दर्पण है, जिसमें उसकी विभिन्न मनोदशाओं की तेजस्विा प्रतिबिम्बित होती है।'

जीवन में प्रथम बार ईश्वराम्मा ने शहरी जीवन की व्यस्तता और बाजारों में होने वाले शोर का अनुभव किया। मैसूर के चिड़ियाघर में उन्होंने शेर, बाघ, अजगर, मोर और ईश्वर की सृष्टि के अत्यंत विचित्र प्राणी जिराफ और कंगारू को विस्मय से देखा और उन्हें प्रेम से बुलाया। बंगलौर की शीतल विश्रान्ति हरने वाली जलवायु उन्हें रुचिकर लगी। तमिलनाडु की नीलगिरि पर्वत श्रेणियों के मध्य स्थित उटकमंड की कटकटाती ढंड को भी उन्होंने सहन किया। उन्होंने भारत की पौराणिक कथाओं में वर्णित प्रसिद्ध मंदिर भी देखे और पवित्र नदियों में स्नान भी किया। इस पूरी यात्रा में स्वामी अपना पूरा ध्यान उनकी ओर देते रहे और उनकी उतनी ही चिंता करते रहे, जितनी कि अपने भक्तों की करते हैं। ईश्वराम्मा भी इसे भली

भाँति समझती थीं कि ये स्वामी की उन पर विशेष कृपा है, क्योंकि अभी तक उनके मन में मातृ-प्रेम जन्य भय और शंकायें पूरी तरह नहीं मिट सकी थीं और उनका मन विश्वास और और भक्ति के आकाश में उन्मुक्त मंछी की तरह न उड़ सका था।

---

11. क्षितिज का विस्तार

यह वह समय था जब नव-भारत का निर्माण हो रहा था। युगों के बाद मिली स्वतन्त्रता के फलों की प्राप्ति अभी शेष थी- वह उत्सुक उसकी बाट देख रहा था। स्वतन्त्रता के अग्रिम नेता समाज की परम्परागत ऊँच-नीच की बेड़ियों को तोड़ने की जी-जान से कोशिश कर रहे थे। किन्तु यह सीधी-सादी ग्रामीण महिला, जिसने संभवतः अन्धविश्वास और रूढ़ियों के विरुद्ध चलाए गए अभियान के विषय में कुछ भी न सुना था, वह मन ही मन जाने अनजाने समाज के द्वारा धर्म और मर्यादा के नाम पर खड़ी की हुई पाखण्ड और आडम्बर की दीवारों के विरूद्ध थी। ईश्वराम्मा न केवल रानी-महारानियों के बीच बैठतीं, वरन् ऐंग्लो-इंडियन तथा विदेशी महिलाओं के सम्पर्क में भी आतीं और हिन्दू समाज के अछूत कहलाने वाले वर्ग की महिलाओं से भी उन्हें कोई परहेज न था। भक्तों में भेदभाव कैसा? उनकी न कोई जाति होती है न सम्प्रदाय । मानव मात्र का यह

अनन्य अधिकार है कि वह परमात्म-तत्व को प्राप्त करे, और फिर ईश्वराम्मा तो विभिन्न नगरों में फैले हुए भक्तों के समूहों के लिए 'माँ' थी। उनकी पुत्रियाँ उनके सामने नाना प्रकार की भाषायें बोलती हुई उन्हें घेर लेती। उनके प्रश्न चाहे हिन्दी, मराठी, तमिल अथवा तेलुगू में होते, किन्तु उनका एक सीधा सादा उत्तर, जो तेलुगू में होता केवल यह था "अंतः स्वामी दया, अम्मा!" अर्थात् 'मेरी बच्ची! यह सब स्वामी की कृपा है। " वे अन्य कोई भाषा तो जानती न थीं। किन्तु ये शब्द इतने सद्भाव, शुभेच्छा और विश्वास से कहे जाते, कि उनके उच्चारण के माधुर्य को सुनने से कोई वंचित होना न चाहता था।

भक्तों में उन दिनों मद्रास प्रेसीडेंसी के इंस्पैक्टर जनरल ऑफ पुलिस श्री हनुमन्त राव, मैसूर के एक्साइज कमिश्नर श्री नवनीतम् नायडू, मैसूर के आई० जी० पुलिस श्री रणजोध सिंह, संदूर के राजा साहब तथा अन्य कई गणमान्य सज्जन थे, जो सरकारी और व्यक्तिगत सभी समस्याओं पर स्वामी से परामर्श लिया करते थे। ईश्वराम्मा जब स्वामी के समक्ष इन प्रभावशाली और प्रतिष्ठित व्यक्तियों की पंक्ति लगी देखती, तो आश्चर्यचकित और हतप्रभ रह जाती। उनकी यह समझ में न आता कि भला सत्य कैसे उन राज महलों की बड़ी-बड़ी गुत्थियों को सुलझा सकता था? जब मैसूर राजघराने के प्रतिष्ठित एवं गणमान्य सज्जन स्वामी के चरणों में बैठते, तो वे निरन्तर सोचती रहतीं कि भला स्वामी इन राजघरानों की समस्याओं को कैसे सुलझायेंगे? वे दिल्ली में रहने वाले पटेल (बल्लभभाई पटेल) को कैसे जानते होंगे? जब स्वामी के महाराजा

को कहे हुए शब्द ईश्वराम्मा के कानों में पड़े, तब उन्हें एक प्रकार का कौतूहल और जिज्ञासा अवश्य हुई। पर उन्हें इस विषय पर कि स्वामी अपने सामर्थ्य की सीमा के बाहर जा रहे हैं, अधिक परेशान न होना पड़ा। कुछ ही समय बाद ये लोग दिल्ली से वापस स्वामी के पास आए। उनके चेहरे आनन्द से खिले हुए थे।

सत्य अब बहुधा पुट्टापर्ती से अनुपस्थित रहते। माँ ने पुत्र से जो वचन लिया था कि वे पुट्टापर्ती में ही रहेंगे, भला उसकी चिन्ता कौन करता? बंगलौर की सकाम्मा, मैसूर की राजकुमारी, हैदराबाद से आया हुआ चिंचोली राज-परिवार, मद्रास का मुदालियार परिवार तथा कुप्पम, करूर, उदुमलपेट और त्रिचनापल्ली से आए हुए चेट्टियार आदि भक्तों को इसकी चिंता भला क्यों होती? उन्हें यह पूर्ण विश्वास था कि स्वामी तो उनके ही हैं, क्योंकि क्या उन्होंने भक्तों के लिए अवतार नहीं लिया है? उधर सत्य को भी इसकी चिन्ता न थी। कृष्ण के समान ही उनकी भी यही सतत इच्छा रहती कि उनके जो भक्त गरीब हैं, रोगी है अथवा वृद्ध है और जो पुट्टापर्ती तक की यात्रा करने में समर्थ नहीं है, उन्हें भी उनका पूर्ण आशीर्वाद और कृपा प्राप्त हो। वे सब लोग जिन्हें स्वामी के सहचर्य का सौभाग्य प्राप्त था और जो उनकी विनोद-प्रियता, उनके गायन और उनके वार्तालाप में निरन्तर डूबे रहना चाहते थे, वे उन सभी लोगों को, जो उनके सम्बन्धी, पास-पड़ोसी अथवा परिचित थे, उनके मित्र अथवा शत्रु थे, उनके प्रतिद्वन्द्वी अथवा सहयोगी थे, अपने इस आनन्द के स्त्रोत की अतुलनीय खोज के विषय में बताने में कभी न थकते थे। वे स्वामी से कुछ

दिनों ' और रुकने की प्रार्थना करते थे, पर स्वामी यदि उनके संतोष के लिए एक महीने भी रुक जायें तो भी वे कुछ दिन पूरे न होते थे। स्वामी जब भी अपना स्थान (अर्थात् अपना स्थायी निवास पुट्टापर्ती

जिसे ईश्वराम्मा प्रेम से 'स्थान' कहकर पुकारती थीं ऐसा कहते समय उन्हें एक सुख और आश्वासन सा मिलता था।) से बाहर जाते तो ईश्वराम्मा की भी इच्छा उनके साथ जाने की रहती। किन्तु परिवार की प्रमुख सदस्या होने के नाते उनके सामने अनेक पारिवारिक समस्यायें खड़ी रहतीं। अतः वे हर बार स्वामी के साथ न जा पाती। उनकी छोटी पुत्री पार्वताम्मा अभी कुछ दिन पहले विधवा हो गई थीं। उसकी दो संतानें थीं- एक लड़की और एक बहरा और गूँगा लड़का। इन दोनों का पालन-पोषण करना था। उधर उनके सबसे छोटे पुत्र जानकी राम थे, जो क्षय रोग से ग्रस्त थे और अस्पताल में भर्ती थे। अतः जब भी सत्य पुट्टापर्ती से बाहर अपनी यात्रा पर जाते, तो ईश्वराम्मा सभी प्रमुख देवी-देवताओं से उनकी कुशलता और रक्षा की प्रार्थना करतीं कि उनके पुत्र को जो नयी-नयी जगहों में नये प्रकार का जल, वायु और भोजन ग्रहण करना पड़ेगा, उससे उत्पन्न होने वाली बीमारियों और कष्टों से बचायें।

स्वामी ने अपनी किशोरावस्था पार ही की थी कि जैसा ईश्वराम्मा को भय था, वे बंगलौर में बीमार पड़ गए। राजा शेट्टी और सकाम्मा ने, जिनके कि वे अतिथि थे, डाक्टरों को बुला भेजा। किन्तु कोई डाक्टर बीमारी का पता न लगा सका। वे पता लगाते भी तो कैसे? क्योंकि बाद में स्वामी ने

बताया, “बीमारी मैने अपने संकल्प से बुलाई थी!" उन्होंने राम और शिरडी बाबा के पूर्व जीवनों के ऐसे प्रसंग बताये, जब उन्हें भी अपनी किशोरवस्था में कुछ वर्षों तक भोजन तथा आमोद-प्रमोद दोनों से अरुचि हो गई थी। अतः अपने भक्तों को बार-बार आश्वस्त करते हुए उन्होंने कहा कि इस 'बीमारी' का आना तो अनिवार्य ही था। इससे घबराने की कोई बात नहीं।

अन्त में जब लोगों ने उन्हें चारों ओर से तरह-तरह के प्रश्नों से घेर लिया, तब उन्होंने यह राज खोला कि वे अपने इस पार्थिव शरीर को अधिक सुदृढ़ साँचे में पुनः ढाल रहे थे, ताकि उनके अन्दर उभरने वाली दिव्य शक्ति को, जो उनके अवतारी कार्यों के लिए आवश्यक थी, वहन करने की क्षमता प्राप्त हो सके। ऐसे गूढ़ कथन और ऐसी असाधारण रहस्यमयी घटनायें- भला ऐसा कौन था जिसने पहले कभी इन्हें सुना होता या इनका अनुभव किया होता? उनके चारों ओर एकत्र स्त्री-पुरुष बिल्कुल स्तम्भित थे।

जब मुझे स्वामी के दर्शनों का प्रथम सौभाग्य प्राप्त हुआ, तो मुझे बताया गया कि स्वामी का शरीर कुछ ही समय पहले अपने स्वाभाविक स्वरूप को प्राप्त हुआ है। उनका स्वर अभी भी क्षीण और दुर्बल था। उनकी चाल भी धीमी और रुक-रुक कर थी। उनके सिर पर बालों की राशि भी उनकी गर्दन के लिए भारी थी। मैं माता के हृदय की यंत्रणा की कल्पना कर सकता था। वे सृष्टि के मूल स्त्रोत, उस परमात्म शक्ति द्वारा अपने पुत्र के शरीर को पराजित होता अपनी आँखों से देखती, पर निस्सहाय थी। पर

अन्त यहीं पर न था। अभी तो भविष्य में भी उन्हें ऐसे संकट और तनाव के क्षणों का सामना करना था। स्पष्ट रूप से वे स्वयं स्वामी द्वारा रचे हुए कुछ इस प्रकार के पाठ थे, ऐसी लीलायें थीं, जिन्हें पढ़-देखकर उनकी 'सत्य' की माँ होने के ज्ञान को क्रमशः 'ईश्वराम्मा' (अर्थात् ईश्वर की माँ) की चेतना में बदल देना था। उनके इस भ्रम को कि वे एक सामान्य 'सत्यनारायण' नामक पुत्र की माँ है, इस सत्य में परिवर्तित करना था कि वे ही वह भाग्यशाली महिला हैं, जिन्हें स्वयं ईश्वर ने अपनी माँ के रूप में चुना है। अतः उन्हें शीघ्र ही समस्त प्राणिमात्र पर अपना स्नेह र वर्षा करने वाली माँ की भूमिका के लिए तैयार होना था। सत्य ने उनसे कहा, "मैं तुम्हारा कोई नहीं हूँ।” इस पर उन्होंने प्रश्न किया, “तो फिर मेरा कौन है?" "यह समस्त विश्व और इसके सारे प्राणी, ये सब तुम्हारे हैं।" स्वामी मानों ईश्वराम्मा को यह पाठ सिखा रहे थे।

जिसे ईश्वराम्मा ने बिच्छू का काटना समझा था, उर्वाकोण्डा में इस प्रकार सत्य का गिरकर मूर्छित हो जाना वास्तव में स्वामी की एक लीला मात्र थी। ईश्वराम्मा को ऐसी अभी अनेक लीलायें देखनी थी। विजयादशमी के दिन शिरडी साई बाबा ने अपना पार्थिव शरीर छोड़ा था। इधर अब जब पुट्टापती में पूजा, भजन आदि हो रहे थे, जलूस निकाले जा रहे थे और गरीबों को भोजन कराया जा रहा था, स्वामी, जिन्होंने पहले ही यह घोषणा कर रखी थी कि वे शिरडी साई की ही आत्मा हैं, जो अपने कार्य के व्यापक विस्तार के लिए पुनः पृथ्वी पर आयें हैं, एकाएक गिरे और यहाँ समाधि लेकर उसी समय अपने भक्तों को आशीर्वाद देने के लिए शिरडी में

प्रगट हुए। जब उन्होंने पुनः लौटकर अपने इस शरीर में प्रवेश किया, तो उन्होंने मन्दिर में एकत्र भीड़ को बताया कि वे शिरडी गए थे, और प्रत्येक विजयादशमी के दिन उन्होंने वहाँ अपने भक्तों को दर्शन देना निश्चय किया था। इस प्रकार वर्ष के बाद वर्ष बीतते गए। ईश्वराम्मा ऐसे चमत्कारों को देखती रहीं और धीरे-धीरे उन्हें यह विश्वास हो गया कि उनका पुत्र निश्चय ही कोई दिव्य आत्मा है।

किन्तु ऐसी घटनायें केवल विजयादशमी के दिन तक सीमित न रहीं। ईश्वराम्मा को शीघ्र ही यह भी ज्ञात हो गया कि उनका पुत्र सम्पूर्ण विश्व का स्वामी है। अतः उनका भौतिक शरीर स्पष्ट रूप से माँ के सामने होते हुए भी वे फौरन किसी भी कष्ट में पड़े भक्त की पुकार पर उसके पास पहुँच जाते हैं, अर्थात् वे एक ही समय में अपने को दो, तीन अथवा जितने स्थानों पर चाहें प्रकट कर सकते हैं। इस प्रकार दिन और रात में निरंतर उनकी शरीर के बाहर की यात्रायें (सूक्ष्म शरीर के माध्यम से) होती रहती हैं। जब वे अपनी इन अदृश्य यात्राओं से जो किसी के कष्ट निवारणार्थ होती थीं, वापस आते थे, तो वे भक्तों को अपनी उन यात्राओं के विषय में विस्तार से बतलाते थे। कभी तेलंगाना घाटी में पड़ने वाले किसी के के विषय में, कभी राजामुद्री में बाढ़ के बारे में, कभी कर्नाटक जाने वाली सड़क पर होने वाली किसी कार दुर्घटना के विषय में, कभी मद्रास में लगी हुई किसी आग के विषय में। वे यहाँ, वहाँ, सब समय सब जगह मौजूद रहते थे। घर हो, अस्पताल हो, जंगल हो, जहाँ भी दैवी सहायता की आवश्यकता होती वे पहुँच जाते।

ईश्वराम्मा आश्चर्य में डूबी यह सब सुनतीं। स्वाभाविक था कि उनका मन अवतारों द्वारा किए हुए चमत्कारों से सम्बन्धित पौराणिक कथाओं की ओर दौड़ता। गाँव के सहज आस्था और विश्वास वाले वातावरण में तो ऐसी कथायें लोकप्रिय होती ही हैं। जब भरी सभा में कौरवों ने पाण्डवों की पत्नी द्रोपदी के वस्त्राहरण का प्रयत्न किया, तो क्या कृष्ण उसकी रक्षा के लिए वहाँ तत्काल नहीं पहुँच गए थे? इसी प्रकार जब कौरवों ने एक षड्यंत्र रचकर पाण्डवों के विरुद्ध उनके अज्ञात वास के काल में एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी, जिसके फलस्वरूप दुर्वासा ऋषि उनसे रुष्ट हो जायें और उन्हें श्राप दे दें, उस समय भी क्या उस परिस्थिति से अपने भक्त पाण्डवों को बचाने के लिए क्या कृष्ण स्वयं उनके साथ न थे? जैसे ही स्वामी अपनी ध्यानावस्था से चेतनावस्था में आते ईश्वराम्मा उनसे अनेक कौतूहल और उत्तेजनापूर्ण प्रश्न करतीं। "क्या द्रौपदी ने तुम्हें हस्तिनापुर में बुलाया था, या तुम जंगल में पुकार सुनकर पहुँचे थे? जब मगर ने गजराज का पैर जल में पकड़ लिया था और उसे घसीटकर जल के अन्दर लिए जा रहा था, तब तुमने क्या उसकी चीत्कार सुनी थी?" (अन्तिम कथन का सम्बन्ध पुराणों में वर्णित गजेन्द्रमोक्ष की कथा से है।) स्वामी उत्तर देते, "हाँ। आज भी द्रौपदियाँ हैं और दुष्ट कौरवों की भी कमी नहीं है, जो उनका अपमान करने पर तुले हुए हैं। आज भी दुर्वासा जैसे क्रोधी ऋषियों की कमी नहीं है, जो अपनी शक्ति का थोथा प्रदर्शन करने के लिए निस्सहाय व्यक्तियों को परेशान करते रहते हैं। समाज के छद्म शान्ति के सरोवरों में आज भी ऐसे मानव-मगर-मच्छ छिपे हुए हैं,

जो अपने शिकार पर आक्रमण करने के लिए सदैव तैयार रहते हैं। मैं उन सबको यह प्रदर्शित करने के लिए आया हूँ कि जो संकट की घड़ी में परमात्मा को पुकारेगा, मैं उसकी रक्षा के लिए यहाँ सदैव उपस्थित हूँ।"

स्वामी ने ईश्वराम्मा से जो वचन कहे, वे वही थे जो एक बार परमात्मा ने जोशुआ से कहे थे, "क्या मैंने तुम्हें यह आज्ञा नहीं दी? दृढ़ और साहसपूर्ण बनो। निर्भय बनों और कभी निराश मत हो, क्योंकि तुम्हारा प्रभु परमात्मा सदैव तुम्हारे साथ है, चाहे तुम कहीं भी रहो।"

"तुम कभी निराश न हो"- ठीक है। पर दिन-प्रतिदिन स्वामी द्वारा अपनी शक्ति के नये-नये प्रदर्शनों से कौन चिंतित न होता? अब उन्होंने सर्जरी के ऑपरेशन शुरू कर दिए। उन्होंने समाज के एक सम्मानित व्यक्ति मद्रास के इंस्पेक्टर जनरल ऑफ प्रिजन्स के भतीजे का, जो गले के टॉसिल से पीड़ित था, ऑपरेशन किया। उन्होंने बंगलौर के डा० पद्मनाभन से बड़ी निश्चिन्तता से कहा कि वे अपने १७ वर्षीय भाई को पुट्टापर्ती भेज दें। वे बोले, "उसे विक्टोरिया अस्पताल में भरती कराने का झंझट क्यों उठाते हो? मैं इसका हर्निया का ऑपरेशन कर दूँगा, और ऑपरेशन के दस मिनट बाद ही वह भला-चंगा हो जाएगा।" बंगलौर के अन्य लब्ध प्रतिष्ठित व्यक्ति श्री तिरुमल राव का भी ऑपरेशन किया था। उनके ऑपरेशन में चाकू, कैंची, सुइयों और रुई की फुरेरी की आवश्यकता पड़ी। ये सारी वस्तुएँ स्वामी ने कुछ ही सेकण्डों में अपना दाहिना अथवा बायाँ हाथ घुमाकर उत्पन्न कर दी। जो विभूति उन्होंने उत्पन्न की और खिलायी, उसमें

बेहोशी करने, विष-हरण और शक्तिदायक - सभी गुण विद्यमान थे। निर्दिष्ट समय के अन्दर ही रोगी रोग से मुक्त हो गए। यह सब देखकर ईश्वराम्मा के नेत्र और स्वर दोनों ही विस्मय द्योतक थे। अब वे जब भी 'स्वामी' शब्द का उच्चारण करतीं, तो उनके प्रत्येक कथन में एक नवीन उत्साह झलकता था।

पर यह केवल विस्मय ही न था। समय के साथ-साथ एक प्रकार की उदासीनता भी उन पर अधिकार करती जा रही थी। पहले की सी उलझन अथवा भय धीरे-धीरे उनके मन से निकलता जा रहा था। उन्होंने यह तथ्य स्वीकार करने के लिए अपने मन को तैयार कर लिया कि उनके जीवन की परिस्थितियाँ, कि कौन क्या है, कहाँ है और क्यों है, उनके वश में नहीं है, वरन् समझ में न आने वाली उस परमात्मा की लीला का एक अंग है और अपरिवर्तनीय है। पौराणिक कथाओं और भारत की महान लोक-संस्कृति ने जो प्रत्येक भारतीय के अचेतन मानस पर सदैव छायी रहती हैं, उन्हें अत्यन्त प्राचीन काल से यही सिखाया है कि जीवन के 'शाश्वत सत्य एक रहस्य हैं, जिन्हें समझना सामान्य मानव की बुद्धि से परे है। फिर भी अभी मायावी रजकणों का एक झीना आवरण उनके सामने था, जिसके कारण उनकी दृष्टि अब भी स्वामी के सम्पूर्णत्व को हृदयंगम न कर पाती थी। अपनी इस मान्यता से वे पूरी तरह छुटकारा न पा सकी थीं कि उनके इस अद्भुत पुत्र को किसी की भी कुदृष्टि लग सकती है। वे मना करते थे, फिर भी ईश्वराम्मा उस आने वाले अमंगल को टालने के लिए नारियल को उनके चारों ओर घुमाकर पृथ्वी पर अवश्य तोड़ती थी, मानो

उसके टूटने से वे सारे बुरे विचार और भावनायें, जिनसे स्वामी को हानि हो सकती थी, सहज ही नष्ट हो जायेंगे।

---

12. प्रशांति निलयम

इसी बीच नए स्थल पर मन्दिर का भवन निर्माण अत्यन्त शीघ्रता से पूर्ण हो रहा था। इसके साथ-साथ ईश्वराम्मा के लिए मन को दुखाने वाला और कारण उपस्थित हो गया। गोपालस्वामी मन्दिर के समीप स्थित एक पुराना मन्दिर (कल्याण मण्डप) बिल्कुल गाँव की सीमा से लगा हुआ था। और वहाँ वे कभी भी आ सकती थीं। किन्तु नया मन्दिर तो पर्याप्त दूर एक अलग पहाड़ी स्थल पर स्थित था। एक निराश और बैठते हृदय से ईश्वराम्मा ने यह समझ लिया कि इसके साथ ही साथ स्वामी के जीवन में एक नये अध्याय का आरम्भ हो रहा है। गाँव का मन्दिर छोटा तथा हर दृष्टि से सुविधाजनक था और वहाँ का जीवन भी अपेक्षाकृत अनौपचारिक था। अनेक वृद्ध भक्तों ने पुराने मन्दिर में शरण ले रखी थी तथा अन्य लोगों ने मन्दिर की उत्तरी दिशा में रहने के लिए तम्बू गाड़ रखे थे अथवा झोंपड़ियाँ डाल रखी थीं। स्वामी के दर्शन कभी भी हो सकते थे, वे चाहे बैठे

हों अथवा खड़े, स्वामी का आशीर्वाद और मार्गदर्शन लेने उनके पास आते, जिसको वे प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रदान करते। तीर्थयात्री भी स्वच्छन्दता से अन्दर-बाहर आ-जा सकते थे और उन्हें बिना अधिक समय तक राह देखे साक्षात्कार और आशीर्वाद भी
मिल जाता था।

पर नये मन्दिर के नियम निश्चय ही कुछ भिन्न होंगे। ईश्वराम्मा को वह दो मंजिला भवन तथा ऊपर बने हुए स्वामी के कमरों तक जाने वाला घुमावदार सीढ़ियों का रास्ता पसन्द न आया। इसका सीधा-सादा अर्थ यह था कि स्वामी तक पहुँचना अब और भी कठिन था। निश्चय ही निचली मंजिल पर किसी व्यक्ति को नियुक्त किया जाएगा जो ऊपर चढ़कर स्वामी को बतलाये कि नीचे कोई भक्त उनकी अनुमति की राह देख रहा है। अब ऐसा नहीं था कि कोई भी स्वेच्छा पूर्वक उनके समीप पहुँच जाए। नए मंदिर को जो नाम दिया जाने वाला था, वह ईश्वराम्मा की दृष्टि से शुभ न था। 'प्रशांति निलयम्'... अर्थात् परम शांति का निवास स्थल पर क्या उससे ईश्वराम्मा को शांति मिल सकेगी? वरन् उन्हें तो लगता था कि मानो वहाँ सम्पूर्ण विश्व से बहकर आने वाली भक्त-सरिताओं का संगम होगा।

एक दिन चित्रावती के रेतीले तट पर बैठे हुए भक्तों को स्वामी ने प्रशांति निलयम् के वास्तविक महत्व का आभास दिया- "वह एक आश्रम नहीं है; क्योंकि तुम लोग चारों आश्रमों में से मुझे किसी विशेष आश्रम में नहीं रख

सकते। (आश्रम का अर्थ यहाँ पर वर्णाश्रम धर्म के चार आश्रमों- ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास से है।) न ही मैं एक तपस्वी, संन्यासी अथवा साधु हूँ। न ही यह एक मन्दिर है, क्योंकि मैंने यहाँ किसी भी विशेष प्रकार की पूजन-पद्धति नहीं डाली है, और न ही मैं किसी साई-सम्प्रदाय का प्रचार करना चाहता हूँ। मुझमें कोई तान्त्रिक शक्ति भी नहीं है। फिर भी सच्चे अर्थों में यह एक मन्दिर है, एक गिरजाघर है, एक मस्जिद है, एक (यहूदी) उपासना-गृह है, एक गुरुद्वारा अर्थात् सभी कुछ यह है, जहाँ प्राणिमात्र स्वयं को अनन्त प्रेम स्वरुप परमात्मा में जो यहाँ अवतरित हुआ है, लीन करके परम शांति अर्थात् 'प्रशांति' को प्राप्त कर सकता है। मेरा कार्य प्रत्येक हृदय को 'प्रशांति' निलयम्' में बदल देना है; ताकि यह सम्पूर्ण विश्व ही एक स्पंदित शक्तिप्रद प्रशांति मन्दिर के रूप में प्रकाशित हो उठे। मैं इस संकल्प को साथ लेकर पृथ्वी पर अवतरित हुआ हूँ।”

'प्रशांति निलयम्' इस नाम मात्र से ईश्वराम्मा काँप जाती थी। इस शब्द के अर्थ की गूढ़ता और उसकी व्यापकता, इसके द्वारा झलकने वाली अपनी और स्वामी के बीच की न पटने वाली दूरी (जो अब किसी भी दशा में उनके पुत्र न समझे जा सकते थे) तथा स्वामी और अनेक स्वामियों के मध्य पाई जाने वाली दूरी- इन सभी लक्षणार्थों को सोच सोचकर वे कभी-कभी भयभीत-सी हो जाती थीं। वे क्या कभी अपने को इस योग्य बना पायेंगी कि इस विशाल निलयम् के आवास में प्रवेश पा सके ?

इस नए मन्दिर के प्रवेश महोत्सव पर ईश्वराम्मा ने स्वामी से दूसरा वरदान प्राप्त किया कि यद्यपि उन्होंने अपने निवास के लिए पश्चिम की ओर के अन्त वाले कमरे निश्चित किए थे, किन्तु वे पूर्व दिशा में स्थित एक कमरे को भोजन कक्ष के रूप में प्रयोग करेंगे। स्वामी इस अनुशासन के बड़े पक्षधर थे कि पुरुष और महिलायें एक दूसरे से अलग रहे। अतः जहाँ पुरुष स्वामी से मिलने के लिए पश्चिम सिरे पर स्थित सीढ़ियों का प्रयोग करते थे, ईश्वराम्मा और उनकी पुत्रियाँ पूर्व की सीढ़ियों से ऊपर चढ़कर स्वामी से बात करती थीं। वे अब स्वामी के कक्ष में स्वेच्छापूर्वक पहले की तरह आ जा न सकती थीं। किन्तु स्वामी का यह वचन भी बहुत कुछ उनके द्वारा दिए हुए पूर्व वचन की भाँति ही था कि वे पुट्टापर्ती में ही रहेंगे। भला उस परम पिता को कौन-सा व्यक्ति, कौन-सा वचन, कौन-सा पदार्थ... रोक सकता था? वह जो मूलतः आत्म-तत्व हो और दुग्राह्य हो, भला वह किसी की पकड़ाई में आ सकता है?

वे भोजन-कक्ष में बैठे-बैठे घण्टों राह देखतीं और राह देखते-देखते पूर्ण रूप से निराश होने लगतीं तो, सत्य लम्बे बरामदे से टहलते हुए वहीं उनके पास आते। पर वास्तव में वे उनके पास भोजन करने के लिए नहीं, वरन् केवल दर्शन देने के लिए आते थे। वहाँ पड़ी हुई छोटी-सी मेज के किनारे बैठकर वे थाली में रखे हुए अत्यन्त रुचि से बनाये हुए और अत्यन्त आग्रह से परोसे हुए पदार्थों में से कोई एक-आधा पदार्थ निकाल लेते, थोड़ा सा मनो-विनोद कर उन्हें हँसाते, अथवा उनके प्रश्नों का उत्तर देते और पुनः अपने उसी कक्ष में पहुँच जाते, जहाँ प्रवेश-निषेध था। शिरडी बाबा की

भाँति स्वामी अपने प्रत्येक आतुर भक्त को यह अवसर प्रदान करते कि वह भोग के रूप में जो भी पदार्थ चाहे उनकी मेज पर रख दे, किन्तु अधिकांश दिनों यह अधूरी ही रहती, क्योंकि स्वामी कभी-कभी ही उसमें से कुछ लेकर ग्रहण करते थे।

पुराने मन्दिर वाले वे सरल और परिचित दिन अब न रहे। किन्तु स्वामी ने अपनी कृपा के रूप में ईश्वराम्मा को यह अनुमति दे रखी थी कि उन्हें जब भी स्वामी से मंगलकारी विभूति की आवश्यकता पड़े अथवा दैनिक जीवन के बोझ से वे कुछ मुक्ति चाहें तो कुछ मिनटों के लिए वे स्वामी के पास आ सकती है।

अपने मन को शांति देने के लिए ईश्वराम्मा के पास केवल एक ही उपाय रह गया था और वह था— स्मृति के सहारे अपने सत्य के शैशव और बाल्य काल के दिनों को उसकी लीलाओं और वाक चातुरी को फिर से जीना। जब स्वामी ने यह घोषणा की कि उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक स्थान पर आनन्द और ज्ञान प्रदान करने का संकल्प किया है, तो ईश्वराम्मा ने अपने मन को आश्वस्त किया कि वह स्वामी के इन शब्दों पर भरोसा रखें। आखिर अपने बाल्यकाल में वह कितने भिखारियों को हाथ पकड़ कर द्वार तक लाता और भोजन कराता था और उन्हें पहनने के लिए जाड़े में गर्म कपड़ा देता था। उनकी इच्छा थी कि स्वामी अब भी उसी प्रकार के चमत्कार प्रकट करें, ताकि अपनी स्मृति के सहारे वे उनके पूर्व-जीवन की घटनायें चुनकर इन लीलाओं और चमत्कारों की पुष्टि कर सकें।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उन्हें भक्तों द्वारा कही हुई शिरड़ी बाबा तथा स्वामी से सम्बन्धित कहानियों और उनके अपने अनुभवों को सुनने में अधिक रस आने लगा। उनकी आस्था अधिक दृढ़ हो गई और उनकी सहानुभूति व्यापक जो भी तीर्थयात्री उनके पास स्वामी के प्रेम और विद्वत्ता की कथायें लेकर आते, उनके परामर्श से उन्हें और भी सांत्वना मिलती। उन्हें बालकों से बड़ा प्रेम था। प्रत्येक बालक में उन्हें सत्य छिपा

हुआ दिखाई पड़ता था, जो उन्हें आमंत्रित करता था कि आओ मुझे खोजों और प्राप्त करो। स्वभावतः झुण्ड के झुण्ड बच्चे उन्हें घेरे रहते थे। जब ईश्वराम्मा उनसे विनोद करती थीं और हँसती थीं तो उनके, नेत्रों में पाई जाने वाली चमक और चेहरे की झुर्रियों को प्रसन्नता भरे नेत्रों से देख और आनन्द लेते। जब वे बातचीत में किसी विशेष बात पर बलदेने के लिए अथवा उन्हें सावधान करने के लिए अपने हाथ का संचालन करती और उसमें पहनी हुई सोने और काँच की चूड़ियाँ खनक उत्पन्न करतीं, तो बच्चों का ध्यान उस ओर जाता और वे मुस्कराते। जब वे किसी स्वस्थ भरे गाल वाले बालक को देखती, तो वे उसके गाल में चिकोटी काटती और उसे खींचतीं और फलस्वरुप जो लाल निशान उसके मुख पर पड़ता, उसकी मनोहारिता को देखकर आनंदित होतीं।

कौतूहल और जिज्ञासा से भरे बालकों के ध्यान को पूर्णतया आकर्षित करने के लिए उन्हें सरलात से रोमांचकारी और भावपूर्ण कहानियाँ सुनाने

के लिए फुसलाया जा सकता था। वे अपने मधूर और लचीले स्वर में कथन के मध्य आवश्यकतानुसार कभी तो किसी अपहरण की हुई नायिका के विलाप की, कभी किसी घायल दैत्य के चीत्कार की, कभी किसी भयभीत पुत्र की कंपकंपी की, कभी किसी विजयी शूर-वीर की गर्जना की और कभी घने जंगल में खोए किसी अबोध बालक के रोने की हू-बहू नकल करती। इतना ही नहीं, वे कहानियों के अपने इस खजाने में शिरडी साई बाबा से सम्बन्धित और स्वामी से सम्बन्धित कहानियाँ भी जोड़ देती।

उनके द्वारा किए गए वर्णन इतने सजीव होते थे कि श्रोताओं के सामने पूरी घटना का और उसके पात्रों का एक चित्र-सा खिंच जाता था। कभी वे एक जोड़ी खड़ाउओं के ऊपर तने हुए एक श्वेत छत्र की बात करती, जिसमें सोने के फुंदने लगे थे; कभी वे विशाल राजसी-महल के संगमरमर के स्तम्भ को तोड़कर प्रकट होने वाले नृसिंह भगवान का वर्णन करती; और कभी शेषनाग के फन पर नृत्य करने वाले बाल कृष्ण की लीला का वर्णन करतीं। ईश्वराम्मा जब कहानी कहने में खो जातीं, तो वे अपने शारीरिक कष्ट, आंतरिक अभाव और मन की शांति पर होने वाले प्रहार सब भूल जातीं। अन्ततः उनकी सारी कहानियों का अंत किसी-न-किसी मानव-मूल्य की शिक्षा से होता, चाहे नम्रता हो, ईमानदारी और सच्चाई हो, प्रेम हो अथवा स्वामिभक्ति हो। बच्चे इन उपदेशों को सरलता से हृदयंगम कर लेते; क्योंकि वे तो उनके प्रेमपीयूष में पूर्णतः मग्न थे।

पुट्टापर्ती में रुकने के बाद जब भी मैं वहाँ से चला तो मुझे बुक्कापटनम् के लिए एक बैलगाड़ी किराये पर लेनी पड़ती थी; क्योंकि मेरे साथ सामान का एक ट्रक और एक बिस्तर तो होता ही था। बैलगाड़ी केशव की थी, जो रत्नाकर परिवार के पड़ोस में ही रहता था। वह सत्य की ही आयु का था और चूँकि ईश्वराम्मा गाँव में कहानियाँ सुनाने में सर्व प्रसिद्ध थीं, वह उनसे कहानियाँ सुनने का बड़ा शौकीन था और उसे सब कहानियाँ याद थीं।

पच्चीस वर्ष बाद जो घटनायें होने की थीं, मैं कुछ उनकी पूर्व-भूमिका भी बता दूँ। जिस दिन ईश्वराम्मा ने अपने इस पार्थिव शरीर का त्याग किया, उसकी पूर्व रात्रि को वे स्वामी के साथ वृन्दावन के बँगले में थीं। बगल से होस्टल लगा था, जहाँ लगभग 1000 विद्यार्थी थे। वे स्वामी के मार्ग-दर्शन में भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिकता पर आयोजित एक माह के कोर्स में भाग ले रहे थे। बँगले में पूरी चहल-पहल थी। मैं भी वहीं था। लगभग 9 बजे रात मैं इस कमरे से उस कमरे में अपने बिस्तर की तलाश में घूम रहा था। मैंने देखा कि बँगले के एक ओर खुले हुए चौकोर बरामदे में ईश्वराम्मा अपने तीन प्रपौत्रों के साथ कहानियाँ सुनाने में मग्न थीं और वे तीनों बड़े ध्यान से उन कल्पित कहानियों को सुनने से मग्न थे। घटना क्रम के साथ उनके मुख पर आने वाले भाव और नेत्रों की चमक देखने योग्य थी।

केशव ने मुझे बताया कि जब भी ईश्वराम्मा देखती कि अब बच्चों का ध्यान सुनने में न लगकर इधर-उधर भटक रहा है, वे तुरंत कथानक के

भीतर दूसरा नया कथानक जोड़ देतीं, नये नायकों और खलनायकों की सृष्टि कर लेतीं, नये जोखिमों और घटनाओं का वर्णन उसमें जुड़ जाता, और इस प्रकार कहानी कथन अपने धारावाहिक रूप में चलता रहता।

अपनी कल्पना से रची हुई कहानियों में से ईश्वराम्मा ने जो कहानियाँ सुनाई, केशव ने उनमें से एक मुझे इस प्रकार सुनाई। एक समय की बात है कि एक गाँव में एक विधवा माँ अपने इकलौते बेटे के साथ रहतीं थी। वह उसका इतना लाड़ प्यार करती थी कि जब वह बड़ा हुआ और उसकी शादी हुई, तो वह बजाय इसके कि अपनी बहू को अपनी पुत्री की दृष्टि से देखे, उससे ईर्ष्या करने लगी। जहाँ पुत्र उसे एक सुन्दर देव-कन्या समझता था, उसकी माँ उसे अपना प्रतिद्वन्द्वी समझने लगी। सास उसके प्रत्येक कार्य में कोई न कोई दोष निकालने लगी। उसकी जबान दिन रात उसे डाँटने-फटकारने में और उसकी बुराई करने में लगी रहती। बहू भी अपनी सास के स्वभाव को एक सीमा के बाद सहन न कर सकी। एक दिन वे तीनों रोग और प्रतिहिंसा की देवी, मारी माता के मन्दिर में एकत्र थे। गाँव की लगभग पूरी जनसंख्या वहाँ उपस्थित थी, क्योंकि यह वार्षिक मेला था। इस उत्सव के अवसर पर देवी अपने उपासकों में से किसी एक या दो के ऊपर अपना प्रभुत्व जमा लेती और उनके माध्यम से अपने भक्तों को उनके दोष बतलातीं और उन्हें चेतावनी देती कि उन्हें किस ढंग का व्यवहार करना चाहिए। ढोल ऐसे बजते कि कान को फाड़ डालेंगे, बिगुल अलग कर्कश आवाज में बोलते रहते, बकरों की बलि दी जाती। मन्दिर का पुजारी झूम-झूम कर नाचता। बहू ने सोचा कि इसके पहले कि पुजारी

और दूसरे लोग चिल्ला-चिल्ला कर लोगों को चेतावनी देना शुरु करें, वह इस ढंग से रूपक रचायेगी मानों देवी उस पर आ गई हों। अतः उसने झूम-झूमकर, चिल्ला-चिल्ला कर अपने को आवेश की एक चरम सीमा तक पहुँचा दिया। जैसा उसने उन लोगों को देखा था जिन पर देवी आती थीं, उसने भी जोर-जोर से सिर हिलाना, चक्कर काटना और हाथों को घुमाना शुरू किया। कभी वह हुँकार मारती, कभी उसके मुँह से फैन निकलने लगता, कभी खिलखिला कर हँसती और कभी फुंकार-सी मारती, कभी जोर से चिल्लाती और कभी-कभी मुँह ही मुँह बड़बड़ाती। वह कूदकर उस जगह पहुँची, जहाँ उसकी सास मारे डर के थर-थर काँपती हुई बैठी थी। सभी लोग मारे डर के अपने-अपने दोनों हाथ जोड़े प्रार्थना कर रहे थे। फिर मारी माता स्पष्ट शब्दों में उसके माध्यम से बोलीं, "मैं तुम्हारे घर को आग लगा दूँगी। मैं तुम्हारी हड्डियाँ चीर कर अलग-अलग कर दूँगी। जो महिला तुम्हारी शरण में रहती है, अगर उसकी आँख से आँसू का एक बूँद भी गिरा, तो जलते कोयले पर मैं तुम्हारा शरीर रखकर उसे राख कर दूँगी। बंद करो। अपनी गंदी जबान को निगल जाओ। खबरदार! अब अगर कभी ऐसा किया।" सास हर बात के उत्तर में यह दुहराती रही, "मैं अब कभी ऐसा न करूँगी। आप जैसा कहेंगी, करूँगी।" तब मारी माता उस पुत्र की ओर मुड़ी और उसे डाँट पिलायी कि वह कितना डरपोक है। अपनी पत्नी की रक्षा भी नहीं कर सकता। पर, वह तो था ही नहीं। अपनी पत्नी को मारी के रूप में देखकर वह डर के मारे वहाँ भाग गया, और फिर कभी न दिखाई पड़ा।

बच्चे ही नहीं, बड़े लोग भी उनसे कहानी सुनने का आग्रह करते थे।वे स्वामी के शैशव और बाल्यकाल की कहानियाँ सुनने के लिए उत्सुक थे। ईश्वराम्मा बिना विरोध किए हुए और बिना झुंझलाहट के कहानी सुनाने को सहमत न होती थी, क्योंकि जब भी वे किसी घटना के लिए अपनी स्मृति को टटोलतीं, उनके समक्ष स्वामी का चित्र विट्ठल, कृष्ण, मोहिनी अथवा साई बाबा के रूप में आ जाता और उनके नेत्र अश्रु से भर जाते। उस छवि को पुनः प्राप्त करने की इच्छा से वे कुछ समय मौन रहतीं, किन्तु जब वे देखतीं कि उनका मौन रहने अथवा कहानी न कहने की इच्छा से अन्य लोग दुःखी होते हैं, तो वे बीच-बीच में क्षमा माँगते हुए, उन्हें एक दो घटनायें अवश्य सुनातीं। “आप लोग उनके विषय में अधिक जानते हैं, वे आप लोगों को अधिक अवसर प्रदान करते हैं, हम लोगों से तो वे हमेशा से थोड़ा दूर-दूर ही रहे हैं। उनकी लीलाओं और शक्तियों के विषय में सुब्बाम्मा आपको अधिक बता सकेंगी। सुब्बाम्मा ने बहुत से लोगों को वह घटना बतलाई है, जब एक दिन स्वामी उनके मृत-पति को मृत-लोक से वापस ले आए थे और सुब्बाम्मा को आँगन में वे खड़े दिखाई पड़े थे। वह आपको यह बतायेंगी कि किस प्रकार गाँव की एक स्त्री ने यह परीक्षा लेने के लिए कि क्या वे सचमुच भगवान है (जैसा कि वे कहा करते थे), उनको विष खिला दिया था।” ईश्वराम्मा ने एक गहरी साँस ली और कहा, “हम लोगों का परिवार एक संयुक्त परिवार था। घर में लगभग बाईस लड़के-लड़कियाँ थी, जिन्हें नहलाना, कपड़े पहनाना, खिलाना और सुलाना अपने में एक काम था। हमारे लिए तो प्रतिदिन एक नए स्वामी मौजूद थे।"

ईश्वराम्मा छोटे बालकों के उत्साह और तीव्र इच्छा की अत्यन्त सराहना करती थीं। उनके नाती-पोते सभी पढ़ने में तेज थे और वे हमेशा इस बात पर बल देती थी कि वे ऊँची कक्षाओं में भर्ती हों, और अपने को अधिक से अधिक योग्य बनायें। वे दूसरों के पुत्रों और पौत्रों को भी उत्साहित करती थीं। उन्होंने स्वामी को अपनी इस इच्छा की पूर्ति के लिए सहमत कर लिया कि स्वामी उन बच्चों की ट्युशन फीस, पुस्तकों का तथा खाने-पीने का खर्च वहन करें। मैं वह व्यक्ति था जो उन बालकों के लिए मनीआर्डर के फार्म भरता था और आवश्यक राशि उन्हें भेजता था। कुछ वर्षों तक में स्वयं ही पोस्ट मास्टर था। अतः ईश्वराम्मा मुझसे इस बात की जानकारी प्राप्त करती रहती थीं कि विभिन्न स्कूलों में पढ़ने वाले लड़कों को समय-समय पर फीस आदि का पैसा भेज दिया गया या नहीं। जब उन्हें पता चलता कि पैसे भेजने में देर हो गई है तो उन्हें कष्ट होता। वे कहतीं, “अब बच्चे ठीक से न पढ़ सकेंगे। खर्च की चिंता से उनका ध्यान पढ़ाई की ओर न लगेगा।" यदि उन्हें पता चलता कि स्कूल छोड़ने के कारण किसी बालक का नाम कट गया है, तो वे जोर डालकर कहतीं, “उसके माँ-बाप को पत्र लिखकर समझाओ। बालके मुझ पर को उस समय तक तो स्कूल में पढ़ने दें कि वह किसी योग्य बन जाए।”

जहाँ तक रोगियों का प्रश्न था, उनके प्रति ईश्वराम्मा की चिन्ता सबसे अधिक थी। जब स्वामी ने यह घोषणा की कि मन्दिर के दक्षिण की ओर पहाड़ी पर एक बारह बिस्तरों का अस्पताल खुलने वाला है, तो उन्हें परम संतोष हुआ। फिर भी जिस स्थल पर वह खुल रहा था, उससे वे संतुष्ट न

थीं। "जो लोग बीमार हैं, वे भला उतनी ऊँचाई तक कैसे जा सकेंगे ?" वे प्रश्न करतीं। किन्तु वे स्वामी के इस उत्तर से संतुष्ट हुई कि उन्हें स्वयंसेवक अथवा भक्त लोग उठाकर स्ट्रेचर पर ले जायेंगे अथवा यह कि वे अस्पताल तक विशेष रूप से बनाई गई सड़क पर बैलगाड़ी पर जा सकते हैं। फिर भी अस्पताल खुलने का उन्होंने मुक्त हृदय से स्वागत किया।

स्वामी जब तक गाँव के मन्दिर में रहे और उसके बाद भी उन्हें डा० लक्ष्मी की विशिष्ट डाक्टरी सलाह सदैव उपलब्ध रहती थी। डा० लक्ष्मी नेल्लोर की प्रसिद्ध औषधि-विशेषज्ञ तथा स्त्री रोग विशेषज्ञ थीं और हफ्तों स्वामी के सान्निध्य में रहती थीं। जब कभी ईश्वराम्मा को उनकी पुत्रियों अथवा परिवार की अन्य महिलाओं को डाक्टर की विशेष सलाह की सुविधा प्राप्त होती, तो ईश्वराम्मा उनसे प्रार्थना करतीं कि वे गाँव की अन्य स्त्रियों की भी डाक्टरी जाँच कर लें और आवश्यकता पड़ने पर उनके रोग का निदान करें और उन्हें उपचार के लिए दवायें भी लिख दें। उनकी यह इच्छा थी कि अस्पताल में एक लेडी डाक्टर नियमित रूप से सदैव रहे और संकट के समय महिलाओं की देखभाल और उपचार करे।

वे उन भक्त महिलाओं के साथ जाकर मिल जाती थीं, जो सड़क से अस्पताल के स्थान तक बालू, पत्थार, ईटें तथा सीमेंट ढोकर ला रही थीं। अन्य महिलाओं के मना करने पर भी वे ईटें ढोकर लाती। अस्पताल में जब रोगियों के लिए वार्ड तैयार हो गए, तो उन्होंने रोगी स्त्रियों की खोज की, उन्हें डाक्टर के पास लाई तथा उनसे प्रार्थना की कि वे उन्हें अस्पताल

में भर्ती करके उनकी तब तक देखभाल करें, जब तक कि वे सामान्य रूप से चलने-फिरने न लगें और घर व खेत में अपना सामान्य काम काज न देखने लगें। स्त्री रोग विशेषज्ञ डा० जयलक्ष्मी ने, जो वेल्स में उच्च शिक्षा प्राप्त हैं, मुझे बतलाया कि गर्भवती स्त्रियाँ और बच्चों की सेवा और देखरेख करने में ईश्वराम्मा अग्रणी थीं। वे सदैव लोगों को जादू-टोने के विरुद्ध तथा मरियाम्मा और अन्य छोटे देवी-देवताओं को रोग निवारण के लिए प्रसन्न करने के लिए भेड-बकरियों तथा मुर्गी आदि बलिदान देने के विरुद्ध सलाह देती। जब रोगियों से पूछताछ की जाती, वे बराबर उनके साथ बैठतीं, जब तक रोग का पूरा निदान न हो जाता, धैर्य से राह देखती और जब इंजेक्शन की डराने वाली सुई लगाई जाती तो रोगी को कसकर पकड़े रहतीं। जब स्त्रियाँ अस्पताल में वार्ड में भर्ती की जाती तो वे कई बार उस पहाड़ी के टीले पर चढ़कर उनके पास पहुँचती, यह आश्वासन देने के लिए कि उन भाग्यहीनों की भी एक माँ है, जो उनके शीघ्र रोग-मुक्त होने की इच्छुक है।

प्रशांति निलयम् के उद्घाटन के कुछ वर्षों के बाद ही ईश्वराम्मा को भाग्य का एक बहुत बड़ा आघात लगा। उनकी बड़ी लड़की, जो उनके ही भाई को विवाहित थी, अत्यन्त दुःखदायी परिस्थितियों में विधवा हो गई। उसके पति को एक कुत्ते ने काट लिया और पागल होने के कारण, उसके पति को भी बीमारी हो गयी। गाँव वालों ने उस समय तक पैस्चर का नाम नहीं सुना था। उन्होंने उसका अर्थ यही लगाया कि किसी ने कोई जादू-टोना किया है, अथवा किसी प्रेत आदि की कुदृष्टि है। अतः इन अदृश्य शक्तियों

को शांत करने के लिए वे प्रयत्नशील हो गए। किन्तु मंत्रोच्चारण तथा जड़ी-बूटियों के लेप आदि का कोई प्रभाव न पड़ा। जब तक रोगी को अनन्तपुर के अस्पताल ले जाया गया। बहुत देर हो चुकी थी। अस्पताल चवालीस मील दूर था। इस प्रकार सुब्बाराजू का सेवा में समर्पित जीवन अचानक करुणाजनक स्थिति में समाप्त हो गया। जब प्रशांति निलयम् भवन का निर्माण हो रहा था, वे कुछ वर्षों तक वहाँ काम करने वाले श्रमिकों के सुपरवाइजर थे।

"इस आकस्मिक निधन से ईश्वराम्मा लड़खड़ा गई। उन दुःख और निराशा के अन्धकारमय दिनों में स्वामी ने उन्हें सांत्वना दी और दुःख वहन करने की शक्ति दी। उन्होंने ईश्वराम्मा का हृदय साहस से भर दिया। उनके शब्दों ने ईश्वराम्मा के घायल मन के लिए मलहम का काम किया। भाग्य से प्रताड़ित अपनी दुःखी पुत्री के बालक की देखरेख वे और अधिक तन्मयता से करने लगीं। कुछ वर्षों पूर्व उनकी दूसरी पुत्री भी विधवा हो गई थी। उसके दो पुत्र और एक कन्या थी। उनमें से एक पुत्र बहरा और गूँगा था। ईश्वराम्मा को जब भी इसका स्मरण हो आता, मन दुःख और कष्ट से भर जाता। उनके कंधों पर जो सलीब (क्रास) था, निश्चय ही भारी था किन्तु उन्हें उसे लेकर चलना ही था।

फिर भी जब कभी वे उन तमाम प्राणियों की शारीरिक और मानसिक स्थितियों पर विचार करतीं, जो स्वामी के दिव्य स्पर्श से रोगमुक्त होने के लिए अनवरत आते रहते थे, तो उन्हें लगता कि जीवन तो महान कष्ट की

एक स्थिति से दूसरी स्थिति तक की यात्रा मात्र है। नवजात शिशु केवल इसलिए रोता है, क्योंकि किसी ने उससे बतला दिया है कि जीवन में उसे अनन्त कष्ट का सामना करना पड़ेगा। विश्व के इस रंगमंच पर खेले जाने वाले जीवन नामक इस अनवरत दुःखान्त नाटक का अन्त, जो पर्दे के गिरने से होता है, वही मृत्यु है। ऐसे विचारों, घटनाओं और अनुभवों ने यद्यपि उन्हें कटु नहीं बनाया, किन्तु कठोर तो बनाया ही। उन्होंने जीवन को सहन करने की नयी शक्ति अर्जित की और शोकसागर की खारी लहरों पर भी उनकी नौका उत्फुल्ल तैरती रही। उन्होंने निश्चय किया कि वे निराशा और उदासी से ग्रस्त प्राणियों का पता लगायेंगी, फिर उनके मुर्झाय हुए। हृदयों में करुणा और सहानुभूति के ओस-बिन्दु डालकर उन्हें फिर से खिलने का अवसर प्रदान करेंगी। वे प्रशांति निलयम् आने वाली दुःखी महिलाओं को अपनी सरल, सच्ची आशा की किरण रूप भाषा में घण्टों समझाती और सांत्वना देती तथा उनमें ईश्वर के प्रति आस्था और स्वयं में विश्वास भरने का प्रयास करतीं।

ईश्वराम्मा का मन ऐसी युवती विधवाओं के लिए अत्यन्त कोमल था, जिन्हें भाग्य की मार ने विधवा बना दिया था और जिनके प्रति समाज का व्यवहार ऐसा था, मानों वे कोई छूत की बीमारी हों, जिससे सदैव बचना ही चाहिए। वे ऐसी युवतियों का भी पता लगातीं, जिन्हें उनके पतियों ने त्याग दिया था और जो अब समाज में निस्सहाय और बेसहारा थीं। अनेक ऐसी दुःख की मारी महिलायें या तो माता-पिता द्वारा या सगे-सम्बन्धियों द्वारा लाई जाती, ताकि वे इस आर्थिक आघात को सहन कर सकें और पुनः

अपने जीवन का निर्माण करने का बल प्राप्त कर सकें। उन्हें ज्ञात हुआ कि एक बहुत बड़ी संख्या में लाई जाने वाली ऐसी स्त्रियाँ जिन्हें भूत-प्रेत से पीड़ित बताया गया था, प्रेम और सहानुभूति से प्रभावित होकर सामान्य व्यक्तियों की तरह व्यवहार करने लगती थीं। कितनी ही भाग्यहीन महिलाओं का विकट क्रोध और रोदन-चीत्कार ईश्वराम्मा के करुणा भरे शब्दों को सुनकर और उनकी मधुर सांत्वना से काफी सीमा तक शांत हो जाता था, क्योंकि उनकी बीमारी का मुख्य कारण प्रेम से वंचित होना था। वे जिन प्रेम भरे शब्दों से इन स्त्रियों को समझाती, वह दिन-प्रतिदिन स्वामी द्वारा उन्हें रोगमुक्त होता हुआ देखकर और भी विकसित होता गया। स्वामी न केवल उन पर प्रेम की वर्षा करते थे, बल्कि उनकी भौंहों और मस्तक पर प्रचुर मात्रा में विभूति भी लगाते थे। वे जब अपनी सामान्य स्थिति में वापस आ जाती थीं और उनके घर वाले उन्हें घर लौटा ले जाते थे, तब स्वामी बतलाते थे कि उन महिलाओं के विचार इतने गड़बड़ कैसे हो गए और उनकी वाणी ईर्ष्या में कैसे डूब गई। स्वामी को सुनकर ईश्वराम्मा ने निश्चय किया कि वे किसी भी महिला को उसके वाह्य अपराधों अथवा दोषों के आधार पर भला-बुरा नहीं कहेंगी और उसकी भर्त्सना न करेंगी, क्योंकि अब वे जानती थीं कि उनमें पाए जाने वाले सारे दोष और किए जाने वाले अपराधों के मूल में या तो परिवार तथा समाज में एक समायोजन का अभाव है, अथवा उसकी उपेक्षा और क्रूरता अथवा दरिद्रता।

इस प्रकार नित्य प्रति बढ़ती हुई ऐसी स्त्रियों की माताओं की अपेक्षा वे उनकी सच्ची माता बन गई। वे एक उज्जवल मन वाली उनकी मित्र एवं माता थी। स्वामी द्वारा इस प्रकार जिन स्त्रियों का उद्धार किया गया, उनके मध्य माँ की उपस्थिति पर विचार करते हुए में यहाँ कविवर रवीन्द्रनाथ द्वारा 'नारी' कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करना चाहूँगा

“नारी, यह वरदान तुम्हें है;
तुम गृहणी हो,
गृह का सारा भार तुम्हारे कंधों पर है; उसमें तुमने ऐसी सन्धि छोड़ रखी है,
कितना ही व्यस्त कार्यक्रम
जिसमें होकर दुर्बल का कातर-स्वर तुम सुन ही लेती हो।
और उसी क्षण सेवा का उपहार साथ ले, निर्मल प्रेम-सलिल देती हो
उन तृषितों को।
एक ओर उनकी निरीहता दया-दान की अभिलाषी है;
और दूसरी ओर तुम्हारे धीरज का सागर अनन्त है।"

भक्तों ने ईश्वराम्मा से शक्ति और ज्ञान का अनन्त स्त्रोत प्राप्त किया। वे अधिकाधिक अवसरों पर उनकी खोज करने लगे, और विशेष पर्वो और पवित्र दिनों में उन्हें महत्वपूर्ण दायित्व सौंपने लगे। किन्तु महिलायें जैसे ही उन्हें घेरती और उनसे निर्देशन अथवा आशीर्वाद लेने का आग्रह करतीं, ईश्वराम्मा सरलता से यह स्वीकार न करतीं। किन्तु वे उन्हें कितने समय

तक टाल सकती थीं। जो पवित्र दिन वरलक्ष्मी पूजन के लिए अथवा गौरीपूजन के लिए निश्चित थे, उन्हें उस प्रत्येक महिला से जिसका आग्रह होता, उन दिनों पूजा की प्रथम भेंट स्वीकार करनी पड़ती। नवरात्रि के नौ दिवसों में पहले तीन दिन उनका पूजन दुर्गा के रूप में होता, अगले तीन दिन वे लक्ष्मी के रूप में तथा अंतिम तीन दिन सरस्वती के रूप में सम्मानित की जाती।

नवरात्रि के इन नौ दिनों स्वामी उपस्थित भक्त स्त्रियों से प्रशांति निलयम् के प्रार्थना भवन में प्रातः सायं एकत्र होने के लिए कहते और अष्टोत्तर सहस्त्र नामावली के पवित्र पाठ द्वारा आदि शक्ति का आवाहन और पूजन करने का आदेश देते। इस नामावली के पाठ में माँ की अनंत •महिमा की झलक विद्यमान है। उन्होंने आदि शक्ति माँ के प्रत्यक्ष प्रतीक के रूप में अपनी प्रतिष्ठा कराने से स्पष्ट इनकार कर दिया। यहाँ तक कि जो भक्त महिला-समूह पूजन में भाग लेने के लिए एकत्र हुआ था, वे उससे भी निकलकर एकदम अलग हो गई, क्योंकि वह ईश्वराम्मा पर जोर डाल रहा था कि कम से कम वे उस पूजन में सबसे अग्रणी रहें। उन्हें बिना किसी सूचना के चुपचाप आना, पूजन में भाग लेना और उसी प्रकार बिना किसी का ध्यान गए चुपचाप चले जाना अधिक रुचिकर था।

किन्तु पर्व की जिस संध्या को भगवान का झूला श्रंगार था, उन्हें सामूहिक आग्रह के समक्ष झुकना पड़ा। फूलों से सजे हुए झूले पर बैठकर स्वामी का भक्तों को दर्शन देना नवरात्रि पर्व की अन्तिम परिणति थी। जब स्वामी

झूले पर विराजमान थे, तो भक्त स्त्रियों ने उनके समक्ष फल-फूल और मिठाइयों के ढेर के ढेर लगा दिए और बड़े मनमोहक ढंग से दीपकों को भी सजाया। जब वे झूले से उतरते थे, भक्तगण उनकी आरती उतार थे। अतः जब स्वामी ने यह संकेत दिया कि अब वे जाना चाहते हैं और कपूर की आरती तैयार होनी चाहिए, तो महिलाओं ने क्रमशः अनेक आरतियाँ जलाकर उनका वंदन किया और भजन गाए। उन्होंने ईश्वराम्मा की खोज की और समय पर उनको प्रशांति मन्दिर ले आईं, ताकि स्वामी की प्रथम आरती वे उतारें। ईश्वराम्मा उन लोगों से बहाने बनाती रही और यह कहकर टालती रहीं कि अमुक महिला स्वामी की अधिक भक्त है, उसमें स्वामी के प्रति अगाध श्रद्धा है। अतः यह अवसर उसे मिलना चाहिए। पर उनकी चली नहीं और भगवान की प्रथम आरती उन्होंने ही

उतारी। कैसा संयोग था स्वयं माँ पुत्र की आरती उतार रही थी। 'प्रत्येक हिन्दू बालक अपना जन्म दिन एक विशेष पर्व के रूप में मनाता है, जब कि विशेष प्रार्थना की जाती है और कुलदेवता का पूजन किया जाता है। एक स्वच्छ पाटे पर बालक को पूर्व की ओर मुख करके बिठाया जाता है। माँ बालक के सिर में कुछ तेल की बूँदे डालती है और उसकी मालिश करती है। परिवार की अन्य स्त्रियाँ इसका अनुसरण करती है। तत्पश्चात् शरीर के अन्य अंगों में तेल लगाकर उसे स्नान कराया जाता है और नए वस्त्र पहनाये जाते हैं। उसे अपने माता-पिता तथा अन्य वयो-वृद्धों के चरण स्पर्श करने पड़ते हैं और जितने समय उसके माता-पिता उसके स्वास्थ्य, दीर्घायु, स्मृद्धि और कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं, उसे मंदिर

में बैठना पड़ता है। सन् 1950 में स्वामी के जन्मदिवस पर ही प्रशांति निलयम् का उद्घाटन हुआ था। उसके पूर्व स्वामी के जो जन्मदिन मनाये जाते थे, वे अनौपचारिक रूप से मना लिए। जाते थे। स्वामी माता-पिता के और उनके अन्य पुत्र-पुत्रियों के घर जाकर और उन सबके साथ बैठकर भोजन करके सबको आनन्दित करते। जब उनके माता-पिता उनके बालों में दो-चार बूँदे तेल डाल देते, तो वे विधिपूर्वक स्नान करते और किसी एक अनन्य भक्त द्वारा चरणों में अर्पित किया हुआ परिधान (धोती और कुर्ता) स्वीकार कर उसे धारण। करते। उस समय उपस्थित जन समुदाय उनके चरण स्पर्श करता और मनोवांछित वरदान की कामना करता ।

प्रशांति निलयम् ने भक्तों के समक्ष एक प्रकार की चुनौती रखी थी कि उसके उद्घाटन के अवसर पर वे अपने प्रिय भगवान का जन्म-महोत्सव एक प्रभावोत्पादक ढंग से मनायें। 23 नवम्बर को ब्रह्म मुहूर्त की बेला में वरिष्ठ एवं वयोवृद्ध महिलायें प्रशांति निलयम् में एकत्र हुई। प्रत्येक की थाली में फूल, फल, मिठाई, नारियल, हल्दी, कुमकुमए अक्षत, ताम्बूल, सुपारी, चंदन, गुड़, काँच की चूडियाँ तथा अन्य शुभ कार्यों में लगने वाली वस्तुएँ थी। अपने कूल्हों पर वे पवित्रजल से भरे हुए चमकते धातु पात्र लिए हुए थीं। इन महिलाओं में से एक झुण्ड एक चाँदी की थाली में रेशम की साड़ी रखे था। कुछ वयोवृद्ध भक्त पुरुष स्वामी के पिता के लिए एक रेशमी धोती लेकर उस समूह में शामिल हो गए। इस प्रकार वे बाजे-गाजे के साथ पुट्टापर्ती गाँव की ओर चले। जब वे रत्नाकर परिवार के घर पहुँचे तो उन्होंने माता-पिता को सूचना दी कि आज स्वामी का जन्म-महोत्स

है और भक्तगण उन्हें प्रशांति निलयम् में आमंत्रित करते हैं। इस सूचना मात्र से दोनो व्यक्तियों को एक अजीब सा अटपटापन लगा, जिससे उनकी आँखें भर आई। उनकी हार्दिक इच्छा यही थी कि बजाय मंच के बीचोबीच सैकड़ों कैमरों और फ्लड लाइट का सामना करने की अपेक्षा उन्हें अकेला छोड़ दिया जाये। किन्तु वे सहस्रों भक्तों की इच्छा की अवहेलना कैसे कर सकते थे? अतः उन्हें उनकी बात स्वीकार करनी पड़ी। स्वामी द्वारा उन्हें ऐसा अवसर प्रदान किए जाने के लिए वे भावोद्रेक से पूर्ण थे।

पेड्डा वेंकमा राजू तथा ईश्वराम्मा जैसे ही स्वामी के सामने खड़े हुए, समय और स्थान-दोनों का उन्हें ध्यान ही न रहा। ईश्वराम्मा ने स्वामी के चरणों पर सुमन अर्पित किए और गुलाब का एक फूल तेल में डुबोने के लिए खड़ी हुई। जब उन्होंने अपना हाथ ऊँचा उठाया, ताकि तेल की कुछ बूँदे स्वामी की केशराशि पर गिर सकें, स्वामी ने अपने सिर को स्वयं ही इतना झुका लिया, ताकि ईश्वराम्मा का हाथ सरलता से वहाँ तक जा सके। उनके पिता ने भी यही किया और जब वे दोनों मंच के नीचे उतरे, तो भक्तों ने हर्ष से जय-जयकार करके उस अवसर की पवित्रता को । और भी बढ़ा दिया। ईश्वराम्मा पूरे समय इतनी खोई हुई थीं कि उन्हें किसी बात का ज्ञान ही न था, मानों सब कुछ यंत्रवत् रहा हो । जब यह हर्ष ध्वनि उनके कानों में पड़ी, तब उन्हें प्रार्थना-भवन का, उपस्थित जनसमुदाय का, प्रशांति निलयम् का, गाँव का-सबका आभास हुआ। वह क्षण उनके लिए एक असमंजस का क्षण था। किन्तु शीघ्र ही उन्हें उस स्थिति से छुटकारा मिला, क्योंकि उनके बाद एक अन्य दम्पति ने सीढ़ियों पर चढ़कर स्वामी

के चरणों पर फूल समर्पित किये और तेल अर्पण किया। इस आनन्ददायक पूजन के लिए स्वामी आठ अन्य दम्पतियों को चुनते हैं। वे विभिन्न भाषा-भाषी प्रांतों से और भौगोलिक क्षेत्रों से आते हैं, साथ ही वयोवृद्ध तथा प्राचीन धर्म और पूजा विधियों में श्रद्धा रखने वाले होते हैं। ईश्वराम्मा हर प्रकार के प्रचार से घृणा करती थीं और स्वयम् को किसी प्रकार की प्रमुखता देना उन्हें पसन्द न था; वरन् वे तो भक्तों के समुदाय में ही अपने को खो देना चाहती थी। किन्तु स्वामी के जन्म-दिवस पर जिस वस्तु से वे डरती थीं, वह असाधारण भूमिका भी उन्हें निभानी पड़ती थी। स्वामी के प्रवचन के समय ईश्वराम्मा कुछ क्षणों तक श्रोताओं के अंतिम छोर पर खड़ी रहती थी और धारावाहिक उनके मुखारविन्द से निकलने वाली रुपहली वाणी को सुनकर मुग्ध हो जाती थीं। प्रवचन समाप्त होने पर तालियों की गड़गड़ाहट को सुनकर उन्हें आश्चर्य होने लगता था कि सत्य ने ऐसी कौन-सी बात कह दी, जिसके फलस्वरूप यह तात्कालिक प्रशंसा उन्हें मिली। उसके बाद जब भी वे मेरे निवास के पास से निकलतीं, तो अत्यंत गोपनीयता से मुझसे पूछतीं, “क्या स्वामी ने जो प्रवचन दिया, वह इतना गहन था? उन्हें उतने सारे मंत्र कहाँ से याद आ जाते हैं? " 'मंत्र' शब्द से उनका तात्पर्य संस्कृत श्लोकों, उपनिषदों की पंक्तियों और वेद की ऋचाओं से था, जिन्हें स्वामी अपने प्रवचन में उन्मुक्त होकर प्रयोग करते थे। जब 'सनातन सारथी' पत्रिका का उद्घाटन हुआ और उसका प्रथम संस्करण निकला, तो वे अपनी इस जिज्ञासा को न दबा सकीं कि वह पत्रिका कितने लोगों के पास भेजी गई है। जब मैंने उन्हें बताया

कि भक्त लोग न केवल इस पत्रिका की माँग करते हैं, बल्कि अत्यंत उत्सुकता से इसकी राह देखते हैं कि वह कब डाक से उन्हें प्राप्त होगी, क्योंकि इसे वे स्वामी का दिया हुआ प्रसाद समझते है, तो उन्हें कुछ अधिक प्रसन्नता न हुई। वे भला इस बात को कैसे भूल सकती थीं कि सत्य ने तो बहुत जल्दी पढ़ना छोड़ दिया था। मानी बात है कि वे इस पत्रिका में लेख लिखकर इतना बड़ा दुस्साहस का काम कर रहे थे, जो कम से कम ईश्वराम्मा की जानकारी में तो कोई कर न सकता था।

ईश्वराम्मा ने देखा कि डाक्टर हो या वकील, संन्यासी हो या व्यापारी, राजा हो या राजकुमार-सभी पुट्टापर्ती आ रहे थे। वे स्वामी को घेर कर बैठते और अपने संदेह, समस्याएँ और प्रश्न स्वामी के समक्ष निवारण के लिए रखते और उनसे अनुनय-विनय करते कि वे उनका मार्गदर्शन करें। वे केवल तेलुगू में जो वार्तालाप होता था, वही समझ पातीं थीं, किन्तु स्वामी द्वारा अपने प्रश्नों का समाधान पाकर प्रश्नकर्ताओं के चेहरों पर जो आनन्द और संतोष झलकता था, उससे वे समझ जाती थीं; कि स्वामी ने सभी को संतुष्ट कर दिया। वे अवाक् रह गयीं, जब स्वामी ने उन्हें आश्वासन दिया, "चिन्ता मत करो। मैं तुम्हारे साथ रहूँगा... जब मैं तुम्हारा हूँ, तो तुम्हें क्या परेशानी ?" उन्हें घबराहट में ऐसा लगा कि वे बहुत से लोगों को बहुत सी बातों में आश्वासन दे रहे हैं। अपने इस भय और आशंका से छुटकारा पाने में उन्हें वर्षों लग गए। उन्हें इस बात का ज्ञान न था कि अवतारों के लिए कुछ भी असम्भव नहीं है। वे अपनी वाणी के रसायन से बड़ी-बड़ी सभाओं को सम्बोधित भी कर सकते हैं और लोहे को सोने में भी बदल

सकते हैं। वे इतना ही जानती थीं कि राम और कृष्ण तो सामान्य गृहस्थ की भाँति ही रहे थे और उन्होंने जो भी विद्या प्राप्त की वह महान ऋषि-मुनियों से प्राप्त की। कृष्ण ने दूसरों को प्रेरणा दी और उपदेश दिया कि लोग उनकी शिक्षा को माने और अपनी रक्षा करें। राम के पास न तो समय था और न धर्म पर उपदेश देने की रूझान ही ।। उनका स्वयं का जीवन ही सबसे श्रेष्ठ उपदेश था। लोगो ने उसे देखा और उसका अनुसरण किया। ईश्वराम्मा को सदैव यह भय लगा रहता था कि किसी दिन कोई वयोवृद्ध प्रकांड विद्वान आएगा और उनके पुत्र को शांत कर देगा। काफी वर्षों के बाद उनके मन से यह भय निकला और स्वामी के ईश्वरत्व के प्रति आश्वस्त हुआ। इसी बीच सभी जातियों, धर्मों और सभ्यता के विभिन्न स्तरों के लोग उनके पास आते रहे और स्वामी के अन्तरंग आदेशों को जो उनकी ही भाषाओं और बोलियों में उन्हें दिए जाते थे, सुनकर अत्यन्त श्रद्धा और विश्वास के साथ वापस जाते रहे।

जब स्वामी माँ की आँखों के सामने उपस्थित रहते, तो उन्हें स्वाभाविक प्रसन्नता होती। किन्तु जब भी वे पुट्टापर्ती छोड़कर किसी दूर गाँव या नगर जाने का प्रस्ताव बनाते, तो वे व्याकुल हो जातीं। उन्हें यह भय रहता था कि स्वामी वहाँ न जाने कितने समय तक के लिए जाएँ अथवा वह वहाँ से कहीं दूसरी जगह चले जाएँ। उन्होंने सुन रखा था कि देश के दक्षिणी भाग में गाँव-गाँव में नास्तिकता और धर्म के प्रति अश्रद्धा 'की लहर फैली हुई थी। अतः जब से कुछ प्रौढ़ों और बड़े-बूढों का एक दल वहाँ आया और

उसने स्वामी से उनके गाँव चलने की प्रार्थना की, तो उन्होंने यह निश्चय किया कि वे किसी भी मूल्य पर स्वामी के वहाँ जाने का विरोध करेगीं।

श्रीमती सुशीलाम्मा ने जिन्होंने उनके इन प्रयत्नों को प्रत्यक्ष देखा, उनकी उद्विग्नता का वर्णन इन शब्दों में किया है, "उन लोगों को उस गाँव की सही परिस्थिति का पता तो है नहीं और अगर है भी तो उन्हें इस बात की कोई चिन्ता नहीं कि स्वामी को क्या होता है, अथवा उन्हें स्वयं क्या होता है। यह केवल एक मूर्खतापूर्ण बहादुरी है, एक दुस्साहस है। " ईश्वराम्मा जैसे-जैसे अत्यन्त शीघ्रता से प्रशांति निलयम् की ओर बढ़ी, मन-ही-मन यह बड़बड़ाती जा रही थीं। स्वामी भोजनकक्ष में मेज के पास बैठे थे और दोपहर का भोजन लेने जा रहे थे। उसी समय बिना एक पग रुके, एक साथ सारी सीढ़ियाँ चढ़कर ईश्वराम्मा काँपती हुई उनके पास आई। "इतना उद्वेग क्यों? क्या हुआ?" स्वामी ने ऐसे पूछा, जैसे उन्हें कुछ ज्ञान ही न हो। माँ बोली, "मैंने एक बात सुनी है। क्या वह सच है?" "पहले तुम यह बतलाओ कि लोगों ने तुमसे कहा क्या है?" ईश्वराम्मा ने बल देते हुए कहा, "जब तक तुम मुझे यह वचन न दोगे कि अब तुम किसी भी गाँव या शहर न जाओगे, मैं तुम्हें कुछ न बतलाऊँगी।" स्वामी उनकी चिन्ता और उद्विग्नता को देखकर ठहाका मार कर हँसे। फिर बोले, "मैं हर समय भला इस एक कमरे में बन्द कैसे रह सकता हूँ? जहाँ मैं पहले रहता था, वहाँ से यहाँ तो इसीलिए आया कि मैं पास हो या दूर, आवश्यकता पड़ने पर कही भी जा सकूँ।" ऐसी बात नहीं है। तुम मुझे यह बताओं कि क्या तुम इन लोगों के साथ में....जाने के लिए सहमत हो गए हो ?" ईश्वराम्मा काँपती

आवाज में आगे बोली, “मुझे यह वचन दो कि तुम वहाँ नहीं जाओगे। मैं केवल इतना चाहती हूँ। मेरी बात सुनो। मेरी प्रार्थना पर ध्यान दो लोग कहते हैं कि वह जगह बदमाशी और क्रूरता का अड्डा है। जब मैंने कहा 'नहीं,' बस और कुछ नहीं।” ईश्वराम्मा ने अपना अधिकार दिखाते हुए कहा। "यही तो कारण है कि मैंने वहाँ जाना निश्चय किया है। डाक्टर तो रोगी के पास जायेगा ही। और भला जो लोग भयंकर रूप से बीमार हैं, वे डाक्टर को क्या हानि पहुँचा सकेंगे? मैं उनसे घृणा नहीं करता; फिर भला वे मुझसे घृणा क्यों करेंगे? जब मैं उनसे रुष्ट नहीं हूँ तो वे मुझसे क्यों रुष्ट होंगे?" स्वामी ने उत्तर दिया। किन्तु माता के मन ..का भय बना ही रहा। वे रोने लगीं और स्वामी के नेत्रों की ओर सीधे देखते हुए बोलीं, “मैं और कह ही क्या सकती हूँ। भैया, इन लोगों को वापस भेज दो। मुझे यह एक वरदान दे दो।” स्वामी उठे और उनके दोनों हाथ अपने कोमल हाथों से पकड़ लिए। फिर उनकी आँखों से स्वयं आँसू पोंछे और इतने मृदु-स्वर में उनसे बात की कि वे अत्यन्त सन्तुष्ट होकर कमरे से निकलीं।

फिर भी वे उस यात्रा में स्वामी के मेजबानों से मिली और उनसे यह प्रार्थना की कि वे सदैव इस बात को ध्यानपूर्वक नोट किया करें कि स्वामी से कौन लोग मिलने आते हैं और कब? बाबा उस यात्रा में जितने दिन पुट्टापर्ती से बाहर रहे वे निरन्तर भगवान की प्रार्थना-पूजा में ही लीन रहीं। और जिस दिन वे बाहर से लौटे वे ठीक द्वार पर ही उनका मंगल-स्वागत करने को तैयार थीं। जैसे ही स्वामी ने उन्हें देखा, वे बोले, “तुम्हें मालूम है, मैंने वहाँ क्या किया? मैंने वहाँ हर विषैले साँप के दाँत निकाल दिए।"

13. सरिता, सिकता, सागर

जुलाई 1957 में डिवाइन लाइफ सोसायटी (दिव्य जीवन संघ) के स्वामी सच्चिदानन्द के साथ स्वामी ने ऋषिकेश के लिए प्रस्थान किया। उसी वर्ष मार्च में सच्चिदानन्द जी का साक्षात्कार स्वामी से वेंकटगिरि में हुआ था। तभी से वे स्वामी के साथ सम्बद्ध हो गए। डिवाइन लाइफ सोसाइटी के सभापति प्रख्यात स्वामी शिवानन्द सरस्वती थे। वे ऋषिकेश में स्थापित शिवानंद विश्वविद्यालय के संस्थापक तथा कुलपति थे। ईश्वराम्मा को हम लोगों से स्वामी शिवानंद जी के विषय में उनकी विस्तृत तथा निरन्तर बढ़ती हुई मठीय शिष्य परंपरा विद्वत्ता और आयुर्वेद में उनकी निपुणता के विषय में जानकारी प्राप्त हुई। उन्हें बताया गया कि शिवानंद जी का स्वास्थ्य दिन प्रति दिन गिर रहा था जो चिन्ता का विषय था। स्वामी सच्चिदानन्द का स्वामी के पास आने का मुख्य उद्देश्य स्वामी को अपने साथ ऋषिकेश ले जाना था; ताकि वे अपनी कृपा और आशीर्वाद से उनके वयोवृद्ध गुरु के कष्टों का निवारण कर सकें।

ईश्वराम्मा ने अनेक संन्यासियों और आनन्दों (सच्चित् आनन्द) के विषय में सुन रक्खा था। अपने सरल स्वभाव तथा अज्ञानता के कारण वे अब भी अपनी माँ की भूमिका से अपने को अलग न कर सकीं थीं। यद्यपि यह सब एक क्षेपक के ही समान था। अतः नाना प्रकार के काल्पनिक भय उन्हें सताया करते थे। जिन संन्यासियों ने संस्थायें स्थापित की है और शिष्यों की परम्परा पाली है, उनके दृष्टिकोण अत्यन्त संकीण हो जाते हैं, ऐसा उन्होंने सुन रक्खा था। जो स्वामी शिष्यों से घिरे रहते हैं, वे स्वामी न रहकर आश्रितों में बदल जाते हैं। जगत तो एक ही है, पर उनमें से प्रत्येक अपने को उस जगत का एकछत्र गुरु कहता है। फलस्वरूप इस प्रकार के स्वामियों तथा गुरुओं में विवाद, संघर्ष, निंदा, आक्रमण और प्रत्याक्रमण, मंत्र-तंत्र का प्रयोग, प्रतिशोध आदि अनेक भयंकर और अहितकर क्रियाओं की होड़ सी लग जाती है। ईश्वराम्मा को प्राचीन काल के विश्वामित्र और वशिष्ठ ऋषियों के बीच चलने वाली घोर प्रतिस्पर्धा का स्मरण हो आया।

इसका वर्णन उन्होंने रामायण में भी पढ़ा था। अतः ईश्वराम्मा स्वामी की उत्तर भारत यात्रा का महत्व न समझ सकीं।

वे मेरे पास आयीं और अन्य कई व्यक्तियों के पास गयीं कि हम लोग स्वामी को उनकी इस यात्रा से रोकें। जब हम लोगों ने इस सत्य का उद्घाटन कर उनके नेत्र खोले कि स्वामी का संकल्प टल नहीं सकता और उसे कोई 'न' में नहीं बदल सकता, तो उन्होंने हमसे प्रार्थना की कि हम

लोग सूदूर उत्तर में निवास करने वाले 'आनन्दों' की गतिविधियों पर अपनी दृष्टि रक्खें। मैंने उनसे कहा, "अब मैं समझा कि स्वामी द्वारा आपके सम्बन्ध में बतायी हुई कहानी कैसे घटित हुई होगी ?" "कौन सी कहानी ?" उन्होंने पूछा। "वही जब आप कोताचेरुवु के मंदिर में पर्व के अवसर पर होने वाले एक नाटक में रंगमंच पर दौड़ कर चढ़ गयी थीं, केवल इसलिए कि नाटक के नायक के रूप में स्वामी को निरपराध और निर्दोष होते हुए भी दण्ड मिलने वाला था। आपका प्रेम उसे सच मान बैठा और आप नाटक के बीच में ही आपत्ति करने लगीं। आप यह भूल गयीं कि वह तो एक नाटक मात्र था और सैकड़ों लोग उसे देख रहे थे।" "हां! वह तो नाटक था, ठीक है", उन्होंने तर्क किया, "पर अब तो वास्तविक खतरा है- कोई उन्हें अपंग बना दे अथवा..." मैं ताली बजाते हुए हँसा, ताकि उनके घबराहट और शंका के बादल छँट जायें और उन्हें आश्वस्त करते हुए बोला, "हम पवित्र गंगा जी जा रहे हैं और एक अत्यन्त सम्मानित गुरु ने स्वामी को आमंत्रित किया है। हजारों उच्चपदाधिकारी, जज और न्यायाधीश उनसे निर्देश लेते हैं। स्वामी सच्चिदानंद जो हमारे साथ जा रहे है, स्वयं भी पहले मद्रास सरकार में एक बड़े पद पर थे। अब वे उनके शिष्य और संन्यासी बन गये हैं। "

उन्होंने परामर्श दिया, "फिर भी सावधान रहने में क्या बुराई है ? राम तो एक राजकुमार थे। कृष्ण की माता स्वयं कंस राजा की बहन थी। किन्तु हम तो सामान्य ग्रामीण जन है। स्वामी ने तो शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया, जबकि ऋषिकेश तो ऋषियों का देश है। चित्रावती तो वर्ष के

अधिकांश महीनों में सूख जाती है, किन्तु गंगा तो अपने पूर्ण प्रवाह में और तीव्र गति से बहती है। भला ऐसे स्थान में स्वामी को क्यों ले जाओगे?" वे अपनी बात पर दृढ़ रहीं। मुझे स्वामी के शब्दों का उदाहरण देते हुए वार्तालाप को मोड़ देना पड़ा, "अम्मा! स्वामी ने आपसे, मुझसे तथा इस सम्पूर्ण विश्व से जो कुछ कहा है, उसे न भूलिये। उनके जीवन के प्रथम सोलह वर्ष तो लीलाओं के प्रदर्शन में व्यतीत होंगे। आपको उन्हें देखने और आनन्द उठाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उसके बाद सोलह वर्ष ईश्वर की महिमा और चमत्कार प्रदर्शन के हैं। हम सब लोगों को उस आनन्द का अनुभव हुआ है। अब वे बत्तीस वर्ष के हो रहे हैं। उनके कार्यों का यह तृतीय चरण है। उन्होंने आने वाले सोलह वर्षों के लिए क्या कहा है? यह समय धर्मोपदेश और उसके द्वारा संसार को परिवर्तित करने का है। अतः वे हिमालय के वनों में निवास करने वाले ऋषियों को उपदेश देने जा रहे। हमें हृदय से यह सब देखना चाहिए, विस्मय करना चाहिए, श्रद्धा और पूजा करनी चाहिए।”

स्वाभाविक था कि वे स्वामी की तीन सप्ताह की अनुपस्थिति में अत्यन्त तनावपूर्ण स्थिति में रहीं और जब स्वामी अपनी यात्रा से वापस आये तो जिस एक व्यक्ति को सबसे अधिक निश्चितता और प्रसन्नता हुई, वह ईश्वराम्मा थीं। यहाँ तक कि स्वामी के पिता ने भी ईश्वराम्मा के काल्पनिक भय और चिन्ताओं में भाग लेने से इंकार कर दिया था। अन्यथा शायद उनकी घबराहट कुछ कम होती।

जब स्वामी ने अपनी अद्वितीय चित्रात्मक शैली में हरिद्वार के सुन्दर घाट, मथुरा के मयूर, सतलज के नौकागृहों का वर्णन किया, तो ईश्वराम्मा के हृदय में भी यह अभिलाषा जागृत हुई कि वे भी स्वामी की भावी यात्रा में सम्मिलत हों, विशेषकर यदि स्वामी उन पवित्र स्थानों पर जाते हैं, जहाँ प्राचीन मंदिर हैं और जिनका हमारे पुराणों में महत्व है। वे यह कभी न भूली थीं कि उनका राम ईश्वराम्मा इसलिए रक्खा गया था, क्योंकि उनके माता-पिता ने ईश्वर अर्थात् शिव की कृपा के फलस्वरूप ही उन्हें प्राप्त किया था। अतः उन्होंने यह निश्चय किया कि भविष्य में यदि उन्हें कोई अवसर उन स्थलों पर जाने का मिलेगा, जहाँ भगवान शंकर का मंदिरों में निवास है और जहाँ युगों से भक्तगण जाते और अपनी श्रद्धा अर्पित करते हैं, तो उसे उन्हें नहीं खोना चाहिए।

जब स्वामी ने अपने दो भक्तों की बहुत दिनों से की जा रही प्रार्थना पर विचार किया और अन्त में उनके निवास, सुरंदाई ग्राम में जाकर उन्हें कृतार्थ करना निश्चय किया, तो स्वामी ने सुझाव दिया कि ईश्वराम्मा भी उन भक्तों की पत्नियों तथा अन्य महिलाओं के साथ यात्रा में सम्मिलित हो सकती है, क्योंकि स्वामी कोयम्बतूर (जहाँ पेरूर में रत्न सभापति का मंदिर है). त्रिवेंद्रम (पद्मनाभ मंदिर), कोर्तल्लम प्रपात (पवित्र ताम्रपर्णी नदी) और कन्याकुमारी होते हुए जायेंगे। मद्रास स्थित मायलापुर के पार्थसारथी का मंदिर और उसके गगन-चुम्बी गोपुरम को देखकर ईश्वराम्मा पहले ही मुग्ध हो गई थी। उनके हृदय में ऐसे अन्य मंदिरों को देखने और वहाँ प्रतिष्ठित देवी-देवताओं के पूजन की प्रबल इच्छा थी,

जिन्होंने कलाकारों और कारीगरों को इतनी सुन्दर और नयनाभिराम भवनों की रचना कर मानव आकांक्षाओं को साकार रूप दिया। त्रिवेंद्रम में स्वामी सुरंदाई भ्राताओं में से एक के ससुर (जो हेडमास्टर थे) के यहाँ अपने दल के साथ ठहरे। ईश्वराम्मा ने भी अपने तीन दिन उन भक्त महिलाओं के साहचर्य्य में व्यतीत किए और अत्यंत आनंदित हुई। मद्रास में जहाँ ईश्वराम्मा ने उस सागर की विशालता को देखकर, जिसमें गोदावरी, कृष्णा और कावेरी जैसी पवित्र नदियों का जल मिलता है, अपने नेत्रों को कृतार्थ किया था, वहीं दूसरी ओर कन्याकुमारी अंतरीप में तीनों महासागरों के जल को एक दूसरे में विलय होते हुए देखकर उन्हें जिस आनन्द की अनुभूति हुई, वह वर्णन से परे है।

स्वामी दोबारा फिर पश्चिमी तट गए। केरल के राज्यपाल डा० बी. रामकृष्ण राव को जो स्वामी के वर्षों से भक्त थे, यह पता चला कि स्वामी केरल राज्य में गए थे और उस नगर में, जहां वे स्वयं थे, तीन दिन तक ठहरे थे, यद्यपि उन्हें इसकी कानों कान भनक तक न पड़ी। गवर्नर ने अपने गुरु और ईश्वर की उपस्थिति की अनभिज्ञता के लिए अपने को ही दोषी ठहराया और स्वामी से जाकर प्रार्थना की कि उनसे जो भूल हुई उसके प्रायश्चित के फलस्वरूप वे उनकी प्रार्थना स्वीकार करें और पुनः एक बार वहाँ पधारें। इस बार स्वामी के साथ ईश्वराम्मा को मिलाकर भक्तों की संख्या इतनी थी कि छः मोटर कारें खचाखच भरी थीं। स्वामी इस बात के लिए सहमत न थे कि राजभवन को जाकर इस भीड़ से भर दिया जाए। अतः उनके साथ केवल राजा रेडी और मैं था। फिर भी उन्हें गवर्नर की

पत्नी की इच्छा के आगे झुकना पड़ा। वे चाहती थीं कि ईश्वराम्मा उनके साथ ठहरें, ताकि उन्हें ईश्वराम्मा की सेवा का अवसर प्राप्त हो। किन्तु ईश्वराम्मा किसी प्रकार का विशेष ध्यान उनके प्रति दिया जाए, इसके लिए सहमत न थीं। वे अत्यन्त संकोच में थी और इस प्रस्ताव से कतरा रही थीं। वे सदैव ऐसी भक्त महिलाओं के समूह में घुल मिलकर रहना चाहती थीं, जो उनकी प्रचार तथा आकर्षण से बचने की भावना का आदर करती थीं और जो उनके प्रति इस कारण कि वे भगवान की माँ हैं, किसी बाहरी दिखावे से तटस्थ रहती थीं। इसलिए उस उत्सव की भीड़-भाड़ से अपने को चुपचाप निकाल लायीं और उतने समय हेडमास्टर के घर में ठहरी रहीं, जिनका घर पद्मनाभ मन्दिर के बगल से जाने वाली गली में था।

ईश्वराम्मा की यह विनम्रता कोई बनावट न थी। वे कैमरे के सामने आने से बड़ा संकोच करती थीं और इस बात का निरंतर विरोध करती थीं। कि कोई उनका फोटोग्राफ ले। यह कोई इस प्रकार की विनम्रता न थी, जिसका लोग हर समय केवल इसलिए प्रदर्शन करते हैं कि लोगों का ध्यान ऐसे व्यक्ति के प्रति जाए। अनेक व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जिन्हें केवल इस बात का अभिमान होता है कि उन्हें किसी प्रकार का अभिमान नहीं है। वे प्रशंसा का विरोध तो करते हैं, किन्तु उनकी प्रशंसा न की जाए तो अत्यन्त दुःखी होते हैं। किन्तु ईश्वराम्मा स्वभावतः अत्यन्त संकोची प्रवृत्ति की थीं और लोक प्रसिद्धि में आने से घबराती थीं। वे एक रूढ़िवादी परिवार में जन्मी थीं और अपने को उन्हीं सीमाओं के अन्दर रखना उन्हें प्रिय था जो उनके

पूर्वजों ने नारी मात्र के लिए निर्धारित कर रक्खी थीं। यह उनका भाग्य था कि उनके द्वार पर संसार के कोने-कोने से अलग-अलग धर्म, भाषा, जाति और वर्ण से सम्बन्धित स्त्रियाँ आती थीं। वे उन्हें आने देती थीं और वे जो कुछ भी कहना चाहती थीं, कहने देती थीं। उन्होंने कभी यह जानने की चेष्टा नहीं की कि वे क्या कहती थीं। एक समय उन्होंने स्वयं यह स्वीकार किया, "भाई! जिन इच्छाओं को हम पूरा नहीं कर सकते और जिन समस्याओं का हमारे पास समाधान नहीं है, उनके विषय में सिर मारने से क्या लाभ?" वे कभी भी अपने पास आने वाले भक्त यात्रियों को ऐसा प्रदर्शित करके कि स्वामी के पास तक उनकी सहज पहुँच है, भ्रम में डालना नहीं चाहती थी। वे यह धारणा भी उत्पन्न करना नहीं चाहती थीं कि जो उनके कृपा पात्र भक्त हैं, उनके लिए वे स्वामी से विशेष कृपा अथवा आशीर्वाद के लिए कह सकती हैं। वास्तविक स्थिति ऐसी थी भी नहीं। वे यह भली भाँति जानती थीं कि स्वामी के करोड़ो ऐसे भक्त थे जो उनकी कृपा के पात्र थे, और उसी लम्बी पंक्ति में लगने के लिए वे स्वयं अपने को तैयार कर रही थीं।

अपने पति के प्रति उनके मन में परम्परा से चला आने वाला एक श्रद्धा का भाव था, जिसके अनुसार उन्हें पारस्परिक दूरी रखनी चाहिए तथा अधिक बात भी नहीं करनी चाहिए। साथ ही प्रचलित कुल और समाज मर्यादा के अनुसार उन्हें एक कमरे में अथवा एक ही आसन से जनता के समक्ष उपस्थित न होना चाहिए। जब भी पेड्डावेंकपा राजू आस-पास होते, वे घर के अन्दर चली जातीं और पारस्परिक वार्तालाप की हर सम्भावना से

बचतीं। किन्तु अपना अनिवार्य कर्त्तव्य समझ कर स्वामी के जन्म-दिवस पर उन्हें भक्तों की माँग और इच्छा के सामने झुकना पड़ता और स्वामी के जनक जननी के रूप में लोग जो उनकी पूजा करते और उन्हें जलूस में प्रशांति निलयम् मंदिर ले जाते, उसे स्वीकार करना पड़ता। प्राचीन धर्म शास्त्रों के अनुसार बद्रीनाथ और बनारस में भगवान की पवित्र मूर्तियों का स्नान और पूजन पति-पत्नी को मिलकर करना पड़ता था। लिखा तो यहाँ तक है कि यदि इस सम्मिलित पूजन में पत्नी उपस्थित न हो तो पूजन का फल ही नष्ट हो जाता है। पुरुष जो भी वस्तु समर्पित करता है, उसकी पुष्टि नारी द्वारा होनी चाहिए। दक्षिणा अथवा पूजन के समय पति अपने हाथ में रुपया-पैसा जो भी देना हो, ग्रहण करता है, और पत्नी उस पर जल डालती है। उसके पश्चात् वह भगवत् अपर्ण किया जाता है। राम ने सीता को बनवास दे दिया; उसके पश्चात् वे उन्हें पुनः वापस न बुला सके। अतः जब उन्होंने वैदिक राजसूय यज्ञ किया, तो सीता के स्थान पर उनकी स्वर्ण प्रतिमा बनवाकर स्थापित की और यज्ञ के आचार्यों और प्राचीन सिद्धांतों की संतुष्टि के लिए उस प्रतिमा को अपने बगल में आसीनकर उसमें सीता की प्राणप्रतिष्ठा की।

ऐसे तथा अन्य अवसरों पर ईश्वराम्मा एक आदर्श हिन्दू नारी की भूमिका निभाती थीं। मुझे इस अवसर पर एक पूर्व घटना का उल्लेख करने की आज्ञा दीजिए। जिस दिन स्वामी और उनके भक्त लखनऊ से बनारस की ओर चले तो उत्तर प्रदेश के गवर्नर के सचिव ने साथ में जाने वाली मोटर कारों की प्राथमिकता के अनुसार एक सूची बनायी। सर्वप्रथम पायलट

कार, फिर स्वामी के साथ गवर्नर की कार, पुलिस कार, फिर स्वामी के माता-पिता की रोल्स रायस कार, फिर सेक्रेटरी की कार, फिर 'सनातन-सारथी' के सम्पादक की कार आदि-आदि। किन्तु ईश्वराम्मा इस भेद भाव को अस्वीकार कर दिया। उन्होंने रोल्स रायस में जाने की अपेक्षा अन्य भक्त महिलाओं के साथ में जाना पसंद किया, जिन्हें वे स्वामी के जीवन की रोचक घटनाओं तथा अपनी विनोद प्रियता से हँसाती रहतीं।

अन्य भक्तों के साथ उन्होंने भी स्वानी के चमत्कार देखे। पर उन्हें देखकर विस्मय की अपेक्षा वे चिन्ता से ही अधिक ग्रस्त पायी गयीं। उन्होंने अनुमान लगाया कि एक चमत्कार के बाद स्वामी दूसरा चमत्कार दिखायेंगे, क्योंकि जो उससे आकर्षित होंगे उनकी अधिकाधिक माँग करेंगे। ईश्वराम्मा को यह भय था कि प्रत्येक चमत्कार के बाद स्वामी की दैवी शक्ति क्षीण होती चली जाएगी। पुट्टापर्ती के कुछ लोगों ने उनके कानों में यह बात डाल दी थी कि स्वामी जिस तेजी के साथ ये चमत्कार तथा लीलायें दिखाते हैं, उसके कारण यह सिद्धि उनके पास अधिक दिनों तक रहने वाली नहीं। एक-दो बार उन्होंने स्वामी को इस संभावना के प्रति सावधान भी किया था। पर प्रत्येक बार जब उन्होंने यह प्रयत्न किया, स्वामी ने जोर से हँसकर कहा, "वाह! मैं हर एक को प्रसन्न करूँगा। मैं तो आया ही इसलिए हूँ कि दीन-दुखियों को आनंद प्रदान करूं। उनका आनंद ही तो वह भोजन है जो मुझे शक्ति देता है। "

भोजन! दोपहर, रात, दिन का भोजन हो अथवा रात का ईश्वराम्मा के सामने यह पहेली-बनी ही रहती। भला दूसरों का आनंद इसके लिए भोजन कैसे बन सकता है? वे और उनकी पुत्रियाँ मद्रास, बंगलौर और हैदराबाद से आई हुई छः सात भक्त महिलाओं के साथ कमरे में मेज के चारों ओर बैठी थीं। स्वामी को भोजन करते देखकर उनमें से किसी को तनिक भी प्रसन्नता न थी। वे इतना सूक्ष्म भोजन करते थे। वे बहुत कम पदार्थों में रुचि लेते थे और अधिकांश भोजन एक किनारे रख देते थे। प्रत्यक्ष रूप से उनको कोई वस्तु विशेष प्रिय न थी, न ऐसा लगता था कि उन्हें भूख भी लगती है, न कोई स्वाद अथवा भूख की संतुष्टि के प्रति वे रुचि रखते थे। उनके पास किसी वस्तु के लिए समय न था। भला ऐसे नीरस और आनंदरहित वातावरण से कैसे संपोषण प्राप्त करते हैं? वे विनय करती थीं, जिद करती थीं, विरोध करती थीं—पर सब बेकार। केवल उनकी शिकायतों को दूर करने के लिए कि वे रोएँ-चिल्लायें नहीं, वे एक दो कौर खा लेते थे। फिर उठते और अपने कक्ष में चले जाते।

स्वामी के इस अवतारी लक्षण को पूर्णतः स्वीकार करने में ईश्वराम्मा को अनेक वर्ष लग गए। वे जब भी मंदिर में होतीं, स्वयं जाकर देखतीं कि जिन गृहस्थ भक्तों के यहाँ स्वामी के लिए रसोई तैयार की जाती है, वहाँ क्या-क्या पदार्थ बन रहे हैं और किस ढंग से बन रहे हैं। उन्हें ऐसा विश्वास था कि यदि भोजन तेलुगू प्रदेश का सा होगा, विशेषकर असली रायलसीमा क्षेत्र का जिसमें पुट्टापर्ती स्थित है, तो निश्चय ही स्वामी दो-चार कौर अधिक खायेंगे। जब स्वामी जाम नगर में राजमाता नवा नगर

के अतिथि थे, तो उन्हें भय था कि गुजराती खाना संभवतः उनके पुत्र के अनुकूल न हो और वे उसे स्वीकार न करें। अतः वे राजमहल रसोई कक्ष में किसी प्रकार घुस गयीं और यह आज्ञा माँगी कि वे उबली हुई दालों से बनाया हुआ एक रसमय पदार्थ 'चार' बना दें। हम जब स्वामी के साथ मेज पर दोपहर का भोजन ले रहे थे। हमारे सामने फर्श पर स्वामी के दाहिने और बायें भक्तगण-स्त्री और पुरुष–पंक्तिबद्ध बैठे थे तो मैंने स्वामी को ईश्वराम्मा से यह कहते हुए सुना, “मुझे पसंद आया। मैंने तो पूरा एक प्याला भर कर चार पिया।” मेरे चेहरे पर प्रश्न का भाव देखकर स्वामी मुझसे बोले, “माँ समझती थीं कि मुझे तो गुजराती पदार्थ ही खाने को मिलेंगे। अतः उन्होंने स्वयं जाकर मेरे लिए पुट्टापर्ती का चार तैयार किया।”

माँ की चिन्ता ने कभी उन्हें चैन से न बैठने दिया। उनकी दृष्टि सदैव उनकी भोजन की थाली पर रहती थी, यह जानने के लिए कि उन्होंने परोसी हुई वस्तुओं में से क्या खाया और कितना? साथ ही यह कि स्वामी ने अपने ऊपर जो स्वयं प्रतिबन्ध लगा रक्खें हैं, उनका उनके स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ा है? आर्नल्ड शुलमेन ने अपनी पुस्तक 'साई बाबा' में एक दृश्य का वर्णन किया है, जिसमें ईश्वराम्मा किसी व्यक्ति विशेष से नहीं पर सर्व-साधारण से एक शिकायत करती है कि स्वामी निरंतर जिस मात्रा में काम करते हैं, उसको देखते हुए उनके भोजन की मात्रा बहुत कम है। डा॰ जयलक्ष्मी ने लेखक के लिए ईश्वराम्मा के शब्दों का अनुवाद इस रूप में किया, “उसे उन लोगों की रसोई बिल्कुल पसंद नहीं। जब वह लड़का था।

और मैं उसका खाना बनाती थी तो वह भर पेट भोजन करता था। पर अब तो वह मेरी रसोई की ओर ध्यान ही नहीं देता। वह कहता है कि अब मुझे शान्ति और विश्राम करना चाहिए और इन छोटी-मोटी वस्तुओं की चिन्ता न करनी चाहिए।" सन् 1970 में जब आर्नल्ड शुलमेन प्रशांति निलयम् आए भगवान 44 वर्ष के थे।

ईश्वराम्मा ने मन ही मन यह संकल्प किया कि गृहस्थी का कितना ही भार क्यों न हो, पर दुबारा जब स्वामी उत्तर भारत की यात्रा करेंगे तो वे उनके साथ अवश्य जायेंगी। उस अवसर के आने में तीन वर्ष लग गये। सन् 1960 के आरम्भ में स्वामी डा॰ बी॰ रामकृष्ण राव के इस प्रस्ताव से सहमत हो गए कि वे कुछ सप्ताह उनके साथ उत्तर प्रदेश में बितायें। इसीं समय वे त्रिवेन्द्रम छोड़कर उत्तर प्रदेश के गवर्नर पद पर नियुक्त किये गए थे। स्वामी की माँ इस अनुमान से अत्यन्त प्रसन्न थीं कि गवर्नर की पत्नी जो उन्हें पहले से जानती थी, मुक्त रूप से उन्हें अपने साथ की महिलाओं के साथ घूमने-फिरने देगी और अलग से कोई भी व्यक्ति उन्हें स्वामी की माँ के रूप में न जान सकेगा और न उनकी निरर्थक प्रशंसा करेगा, न चापलूसी करेगा और न उनकी ओर विशेष ध्यान देगा। इस कार्यक्रम में अयोध्या, काशी तथा प्रयाग की तीर्थ यात्रा सम्मिलित थी। अतः उन बीस यात्रियों में जो स्वामी के साथ जा रहे थे, उनके पिता भी सम्मिलित हो गए। सरयू, गंगा तथा यमुना जैसी पवित्र नदियों में स्नान करने का जो अवसर ईश्वराम्मा को मिला, उसके लिए वे कृतज्ञता से अभिभूत थीं। अयोध्या पहुँच कर एक बार फिर वे त्रेतायुग में पहुँच गयीं और जब उन्होंने

सरयू नदी में स्नान कर पुष्पार्पण किए तो यह सोचकर कि किस प्रकार अपनी पार्थिव काया का विसर्जन कर पुनः बैकुण्ठ धाम पहुँचने के लिए भगवान राम सरयू नदी के अन्दर पैठते चले गए और अन्त में जलसमाधि ले ली. उनका हृदय करुणा और व्यथा से भर गया। यमुना तो उनके लिए कृष्ण की चित्रावती बन गयीं। दोनों माता और पिता गंगा का पवित्र जल काशी में प्रसिद्ध विश्वनाथ के मंदिर में लिंग पर चढ़ाने के लिए ले गए। उस समय पंडितों द्वारा वैदिक मंत्र पढ़े जा रहे थे तथा स्वयं स्वामी वहाँ उपस्थित थे। तत्पश्चात् स्वामी ने वहाँ एक वर्तुलाकर रत्न की सृष्टि की जो लिंग पर चढ़ा दिया गया। उससे न केवल उस लिंग की शोभा बढ़ी वरन् उसमें एक दिव्य शक्ति का समावेश भी हुआ।

दुर्भाग्य की भाँति सौभाग्य भी अकेला नहीं आता। यदि परमात्मा की कृपा तुम्हें प्राप्त हो जाए तो वह बार-बार तुम्हारे जीवन में आएगा। जून सन् 1961 में ईश्वराम्मा को पुनः स्वामी के साथ उत्तर प्रदेश की यात्रा का शुभावसर प्राप्त हुआ। हिमालय के पवित्र क्षेत्र में यह बद्रीनाथ की पावन यात्रा थी। ईश्वराम्मा के लिए यह उनकी अभिलाषा का चरम बिन्दु था। इस यात्रा में जाने वाले लोगों की संख्या बहुत अधिक थी। कड़ी छँटनी के बाद भी स्वामी के साथ जाने के लिए और उनकी दिव्य उपस्थिति के प्रकाश में अवगाहन करने के लिए कम से कम सौ और पुरुष भक्त तो थे ही।

वे ग्रांडट्रंक एक्सप्रेस से मद्रास से दिल्ली गए। वहाँ से वे बस द्वरा हरिद्वार ले जाए गए। वहाँ गवर्नर अपने पचास व्यक्तियों के साथ स्वामी की उस यात्रा में सम्मिलित हुए। वहाँ से भक्तगण सामान्य से कहीं छोटी बसों में बैठे। ये बसें विशेष रूप से बनायी गयी थीं जो हिमालय पर्वत पर बहने वाली नदियों के गहरे ढलान वाले तटों पर तथा घुमावदार मोड़ों पर सरलता से मुड़ सकती थीं। हरे-भरे वृक्षों तथा घास से ढंकी चट्टानों के मध्य बसा हुआ श्रीनगर पहला पड़ाव का स्थल था। भगवान के दर्शन करने के लिए सैकड़ों जन-जाति के निवासी संकरी पहाडी पगडंडियों से कभी चढ़कर और कभी ढलान के ऊपर से रेंगकर सड़क के किनारे आ खड़े हुए। उनका हर्षोल्लास पर्वतीय लोक गीतों और नृत्य के रूप में अभिव्यक्त था। वे तब तक नृत्य करते रहे, जब तक कि उनके पैरों ने उनका साथ दिया। नृत्य की समाप्ति पर ईश्वराम्मा ने मुझसे कहा, "यह तो पुट्टापर्ती में होने वाले लम्बरी नृत्य गान के ही समान है। केवल अन्तर इतना ही है कि यह लोग युवकों की भाँति उछलते-कूदते हैं और एक दूसरे की हँसी उड़ाते हैं।”

प्रातःकालीन कलेवा करने बाद हम लोग बसों में फिर से बैठे। ऋषिकेश से उत्तर की ओर जाने वाली सड़क कभी दाहिनी ओर और कभी बाईं ओर मुड़ती हुई सर्पाकार ढंग से ऊपर जाती थी। हमारी बस भी उस पर हिचकोले खाती और इधर-उधर बलखाती हुई जाती थी, जिससे कभी तो हमें एक अजीब गुस्सा सा आता और कभी मिचली लगती। यात्रा की इस पहली मंजिल में हम में से कई लोगों का उत्साह धीमा पड़ गया। स्वामी

के पिता तो थोड़ी-थोड़ी देर में जैसे ही बस तेज घुमावदार मोड़ों पर मुड़ती, उल्टी करते रहे और श्रीनगर में तेज बुखार में पड़े रहे। दूसरे दिन प्रातःकाल जब हम सैकड़ों लोग फिर से बसों में बैठकर आगे की यात्रा पर चलने वाले थे, हमें पता चला कि वे गंभीर रुप से बीमार हैं और डाक्टरों का तो यहाँ तक कहना था कि सम्भवतः उनका अन्तिम समय आ पहुँचा है। किन्तु ईश्वराम्मा में असाधारण साहस था। वे बोली, "क्या स्वामी ने हरिद्वार में स्वयं ही यह नहीं कहा था कि वे स्वयं नारायण के साथ नारायण की प्रतिमा के दर्शन करने जा रहे हैं। वे जैसे ही आयेंगे, वेंकमा राजू तुरन्त जग जायेंगे और स्वस्थ होकर चलने लगेंगे।" स्वामी के पास जब यह सूचना पहुँची, वे स्नान कर रहे थे। वे आराम से और निश्चितता पूर्वक मंथर गति से आये।। वे रोगी के पास बैठे. उनकी नाड़ी पर अपनी अंगुलियाँ रक्खीं और बोले, "वे बिल्कुल ठीक हैं। तुम लोग बेकार ही डर गए हो जाओ अपनी-अपनी बसों में बैठो।" हम लोगों ने उनकी आज्ञा मानी। स्वामी के पिता पहले की ही तरह मेरी दाहिनी ओर की सीट पर बैठे। पूरी यात्रा उन्होंने इसी प्रकार की। जब स्वामी ने हाथ हिलाकर आशीर्वाद दिया बसें चल दीं। स्वामी के नारायण स्वरूप में ईश्वराम्मा की जो आस्था थी, स्वामी ने उसकी रक्षा की।

जोशीमठ से आगे की यात्रा या तो पैदल या घोड़े पर हो सकती थी. अथवा डोली में, जिसे वहाँ के भोटिया निवासी अपने शक्तिशाली कंधों पर रखकर चलते थे। अन्य लोगों की भाँति ईश्वराम्मा ने भी एक मोटा ऊनी स्वेटर पहन लिया, अपनी गर्दन के चारों ओर एक मफलर लपेट लिया, और

आँखों में धूप का चश्मा लगा लिया, ताकि बर्फ पर पड़ने वाली सूर्य की किरणों की चमक से आँखें खराब न हों। यह यात्रा एक मौन और तनाव पूर्ण वातावरण में की जा रही थी। पहाड़ी मार्ग रिबन की तरह पतला था. जिसके एक ओर विशाल प्रस्तर खण्डों की गगनचुम्बी श्रृंखला थी और दूसरी ओर मीलों तक चली जाने वाली भयंकर ढलान। स्वामी और गवर्नर बी० राम कृष्ण राव उस पैदल चलने वाली लहरियादार पंक्ति का नेतृत्व कर रहे थे। उनके पीछे दृढ़-निश्चयी लगभग सत्तर पद यात्री थे। उनके भी पीछे टट्टू, डोलियाँ तथा कुर्सियाँ थीं, जिनपर बैठे हुए यात्री अत्यन्त भयभीत स्थिति में थे।

ईश्वराम्मा एक टोकरीनुमाँ कुर्सी पर बिठा दी गयीं, और उसे एक स्थानीय भोटिया की पीठ से बाँध दिया गया था। उन्होंने देखा कि सैकड़ों अन्य यात्री इसी प्रकार के आसनों पर आराम से बैठे हुए थे। किन्तु जब उन्होंने एक ओर साक्षात् भय को मुँह खोले हुए तथा दूसरी ओर किसी क्षण खिसक कर गिरने वाली विशाल शिलाओं की ऊँचाई को देखा, साथ ही उस मानव-रूपी पशु को जो उन्हें ढो रहा था और थकान से पसीने-पसीने होकर गहरी साँसें ले रहा था तो उन्होंने अपनी यात्रा साधन में परिवर्तन की इच्छा प्रकट की। वे तेलुगू में जोर-जोर से पश्चाताप करने लगीं कि उन्होंने यात्रा के लिए टोकरी वाली कुर्सी को क्यों चुना। बेचारा शेरपा कुली हतप्रभ सा खड़ा था, इस डर से कि उसे केवल कुछ पैसे देकर हटा दिया जाएगा। किन्तु ईश्वराम्मा ने इस बात पर जोर दिया कि उसे मंदिर की सीढ़ियों तक ले जाने का जो पूरा किराया तय हुआ था, वही दिया जाए। कुली प्रसन्नता

से कुछ हँसा और उसने कुछ बख्शीश माँगी। अपनी साड़ी के कोने में बंधी हुई गाँठ को खोलकर उन्होंने एक रुपये का सिक्का निकाला और उसके हाथ में रख दिया। तत्पश्चात् एक डोली, जिसमें वे अपेक्षाकृत आराम से बैठ सकती थीं, उनके लिए लायी गयी। इसमें बैठने के लिए एक छोटी सी मचिया (खाट) थी, जो दो मजबूत रस्सियों द्वारा एक डण्डे से बाँध दी गई थी। इसे दो कुली सरलता से अपने कंधों पर उठाकर हलकी चाल से दौड़ते हुए और अपनी भाषा में कुछ न कुछ गाते हुए लेकर चलते थे।

जब हम लोग बद्रीनाथ पहुँचे तो वहाँ के स्वर्गीय वातावरण से माँ और हम सब एक बार मुग्ध हो गए। सुदूर उच्च गिरि श्रृंगों पर तथा निकटवर्ती शिला खण्डों पर सभी ओर स्वर्णिम हिमाभा व्याप्त थी। यह स्थान इतनी ऊँचाई पर था कि वहाँ ठीक से चावल भी नहीं पक सकता था। किन्तु हर मुख से ईश्वर की महिमा गायी जा रही थी। असाधारण ठंडक थी। तीव्र-गामी पवन था। साथ ही गर्जन करती हुई एक जलधारा थी जो शीत के प्रभाव से जमी जा रही थी। उससे कुछ ही गज की दूरी पर खौलते हुए गर्म पानी का एक झरना जो एक चट्टान का फोड़कर प्रबल वेग से बह रहा था। ईश्वराम्मा अपनी भक्त साथिनी के साथ मंदिर के अन्दर भगवान की प्रतिमा के पास घण्टों बैठी रहीं और भव्यता के उस अक्षय भण्डार पर विचार करती हुई जहाँ वे आयीं थीं उसी में पूर्णतः मग्न हो गयीं।

बद्रीनाथ के पवित्र मंदिर में स्थित नारायण की प्रस्तर प्रतिमा के नीचे रखे हुए पात्र से स्वामी ने अपने संकल्प द्वारा लिंगोद्भव किया। स्वामी ने

बताया कि यहीं लिंग था, जिसे भगवान शंकर ने कैलाश पर्वत पर शंकराचार्य को दिया था और जिसे शंकराचार्य ने नारायण की प्रतिमा की स्थापना करने के पूर्व गर्भगृह में पहले स्थापित किया था। ईश्वराम्मा ने सहज भाव से स्वामी से पूछा, “तुमने इसे इस समय क्यों बाहर निकाला?” " इसलिए कि इसमें नव-शक्ति का आरोपण हो, जिससे यह प्रार्थनाओं को सुनकर उनका फल दे सके और भक्तों को मनोवांछित वरदान दे सके, " स्वामी ने उत्तर दिया।

महिला भक्तों के मध्य बैठी हुई ईश्वराम्मा को अपने व्याख्यात्मक कथन का दिखावटी लक्ष्य बनाकर स्वामी ने उन सभी व्यक्तियों को अपने द्वारा प्रतिपादित उस रहस्यमय पूजा का अर्थ समझा दिया जो ध्यानपूर्वक उन्हें सुन रहे थे।

“नारायण की मूर्ति की पीठिका के नीचे से इस लिंग को निकाल कर अभी-अभी गंगोत्री में गंगा के उद्गम स्थल के पवित्र जल में स्नान कराकर इसे स्थापित किया गया है और मेरे द्वारा उत्पन्न इस चाँदी के पात्र में जो जल भरा है, यह वही पवित्र जल है।" स्वामी ने अपना हाथ घुमाकर स्वर्ण बिल्व पत्रों की सृष्टि करते हुए कहा, "ये वे स्वर्ण विल्व पत्र हैं जो लिंग पूजन के लिए आवश्यक हैं।" इस बीच हम लोगों में जो ब्राह्मण विद्वान थे, उन्होंने वेद-मंत्रों का पाठ प्रारम्भ किया और लिंग-स्वरूप में स्थित भगवान शिव की उन मंत्रों द्वारा स्तुति की। इसी समय एक ब्राह्मण खड़ा हुआ और उसने कहा, “स्वामी! तुम्मा के फूल चाहिए।” “अवश्य ! पर वे हिमालय पर्वत

पर अथवा उसकी घाटियों में उत्पन्न नहीं होते ?" स्वामी ने कहा, "फिर भी लो, ये थोड़े से फूल पूजन के लिए तो ले ही लो।" ऐसा कहते हुए स्वामी ने अपने हाथ को घुमाकर 'तुम्मा' शिव के पूजन में लगने वाले एक प्रकार के फूल उत्पन्न कर दिए। देखते-देखते झलकते हुए ओस बिन्दुओं से शोभायमान इन फूलों का अच्छा-खासा ढेर लग गया। लिंग के चारों ओर रखे हुए स्वर्ण बिल्व पत्रों के ऊपर स्वयं भी कुछ पुष्प चढ़ाये और फिर घोषणा की, "विधान पूर्ण हो गया। अब यह लिंग शिव शक्ति से परिपूर्ण है। अब यह वापस जाएगा” और पलक मारते-मारते लिंग अदृश्य हो गया।

दूसरे दिन ब्रह्मकपाल नामक स्थल पर (जो एक चौड़ी खोखले आकार की चट्टान थी) ईश्वराम्मा और पेड्डा वेंकमा राजू ने पिंडदान और श्राद्ध किया, जिससे वे अपने पूर्वजों के प्रति जो भी ऋण था, उससे निवृत्त हो गये और उन दोनों ने असाधारण शांति का अनुभव किया। उस कपाल रूपी चट्टान पर सभी विवाहित जोड़े एक साथ बैठे थे। मंदिर के पुजारियों ने मंत्रोच्चार द्वारा दिवंगत आत्माओं का आवाहन किया। चावल और तिल के बने हुए पिंड हमारे हाथों में थे। हमें उन्हें उस दिन उस पवित्र स्थल पर जो भी भोजन समर्पित करना था, वह वस्तुतः मंदिर के प्रमुख पुजारी द्वारा भगवान नारायण को उसी दिन लगाये हुए भोग का अंश था. वह प्रसाद जिसे खाकर (चाहे आप विश्वास करें या न करें) वे दिवंगत आत्मायें सदैव के लिए भूख और प्यास से मुक्त होकर तृप्त हो जायेंगी। हमारे पूर्वजों की आत्मायें निश्चय ही अत्यन्त भाग्यवान थीं; क्योंकि श्राद्ध करने वाले व्यक्तियों के हाथों में उनको खिलाने के लिए जो प्रसाद रक्खा गया, वह

मंदिर के बड़े पुजारी द्वारा नहीं, वरन् भगवान सत्य साई बाबा द्वारा स्वयं रखा गया।

युगों से करोड़ों व्यक्ति इस बात पर विश्वास करते चले आ रहे हैं कि यदि एक बार ब्रह्मकपाल नामक स्थल पर वैदिक विधान के साथ श्राद्ध कर दिया जाए और वह पवित्र भोजन पूर्वजों की भटकती आत्माओं को खिला दिया जाए, तो फिर भविष्य में कभी कुछ और करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, क्योंकि अब वे मंत्र और मन की सीमा से परे वैकुण्ठ लोक में पहुँच जाते हैं। भगवान बाबा के स्पर्श से प्रभावित वह प्रसाद केवल अपने प्रियजनों को ही समर्पित नहीं किया गया। परम्परा और दयाभाव के अनुसार अपने बाप-दादों तथा अन्य पूर्वजों के अतिरिक्त, जिनका पुजारी नाम ले लेकर पिंडदान कराता था, अन्य दूसरे व्यक्तियों-चचेरे ममेरे भाई, मित्रगण. सहपाठी, गुरुजन, पालतू पशु-पक्षी, स्वामी, नौकर, यहाँ तक कि शत्रुओं की आत्माओं को 'इस दिव्य प्रसाद' के भाग का अवसर इस पावन अलकनन्दा के तट पर स्थित ब्रह्म-कपाल नामक स्थल पर मिलता था।

ईश्वराम्मा के जीवन में वह सबसे महत्वपूर्ण दिन था। वर्षों तक उनके मन में उस मार्मिक पूजा विधान के विचार आते रहे। वे जब भी उन महिलाओं से मिलती, जिन्होंने उनके साथ हिमालय की हिमाच्छादित चोटियों की छाया में उस पवित्र विधान में भाग लिया था तो एक बार सम्पूर्ण घटना

उन लोगों के सामने जीवन्त रूप में आ जाती और वे लोग उन क्षणों का स्मरण करते-करते उसी में खो जातीं।

ईश्वराम्मा तथा अन्य भक्तों के बद्रीनाथ से लौटने के चार महीने बाद ही जब उत्तर प्रदेश सहित भारत वर्ष के विभिन्न भागों से प्रकाण्ड वैदिक विद्वानों की एक विशिष्ट मंडली पुट्टापर्ती आ पहुँची तो उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। स्वामी के अगम्य संकल्प से वे सुदूर धुंधले अतीत में निर्धारित कठोर नियमों का अति सावधानी से पालन करते हुए एक यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले थे। उन पण्डितों ने उन अमूल्य दिव्य ग्रंथों के प्रेरणा स्रोत स्वामी को ही वेद पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित किया। लगातार सात भव्य दिनों तक सम्पूर्ण गाँव वेदपुरुष की प्रशंसा में गाये हुए मंत्रों से गुंजायमान होता रहा। वेद मंत्रों के उच्चारण के साथ-साथ यज्ञ की अग्नि में घी, चन्दन की लकड़ी तथा अन्य पदार्थ प्रचुर मात्रा में डाले जाते रहे। पण्डितों ने यह घोषणा की कि वे स्वयं भगवान की उपस्थिति द्वारा महिमान्वित किए गए हैं। ईश्वराम्मा का हृदय यह सोचकर कि पुट्टापर्ती एक ऐसा पवित्र स्थल बन गया है, जहाँ पर सभी शताब्दियाँ और सभी देश एकत्र हो रहे हैं, हर्ष और उल्लास से भर गया। स्वामी के चमत्कारों का रहस्य नित्य प्रति गहनतर होता जा रहा था। सचमुच ही स्वामी मानव मात्र के परमगुरु के रूप में प्रतिष्ठित थे।

गुरु पूर्णिमा के अवसर पर ईश्वराम्मा के मन में ऐसे ही विचारों का उदय हो रहा था। इस वार्षिक पर्व के अवसर पर, जब विद्यार्थी और शिष्य अपने

गुरुओं के सामने नमन करते हैं, अनेक लब्ध-प्रतिष्ठित गुरुओं के समूह के समूह जगद्गुरु भगवान स्वामी को अपनी श्रद्धा समर्पित करने के लिए एकत्र हुए।

---

14. प्रेम लीला

स्वामी की अद्वितीय लीला के फलस्वरूप सन् 1963 की गुरुपूर्णिमा को भक्तों में भय और निराशा उत्पन्न हुई। 29 जून के पवित्र दिवस के ठीक एक सप्ताह पूर्व प्रातःकाल लगभग 6.30 बजे स्वामी अपने शयन कक्ष में बेहोश होकर गिर गये। राजारेड्डी ने तथा मैंने जो उस समय वहाँ उपस्थित थे, उन्हें उठाकर बिस्तर पर लिटाया। उनका बाँया हाथ कड़ा पड़ गया तथा बायीं हथेली की कड़ी मुट्ठी बंध गयी थी। हमने देखा कि बायाँ पैर और उसकी उँगलियाँ भी कड़ी पड़ गयी है।

हमने स्वयं को यह विश्वास दिलाया कि लकवे का यह आक्रमण भगवान ने स्वयं ही अपने एक भक्त की रक्षा के लिए, जिसकी सम्पूर्ण जीविका ही इसके कारण नष्ट हो जाती, लिया है और शीघ्र ही वे जिस प्रकार पिछले

कई अवसरों पर स्वस्थ और प्रसन्न होकर भक्तों के बीच में उपस्थित हुए थे, वैसा ही इस बार भी होगा। बन्द द्वारों के अन्दर हम सभी लोग मौन बैठे थे और रोग से प्रभावित अंगों की धीरे-धीरे मालिश कर रहे थे। आठ बजे प्रार्थना भवन में भजन आरम्भ हुए। किन्तु स्वामी के रोग-मुक्त होने के कोई लक्षण न दिखायी दिए। अतः मैंने पहली मंजिल की खिड़की से भजन बन्द करके आरती करने का निवेदन किया। स्वामी की अनुपस्थिति से एक हलचल सी मच गयी। लोग आपस में काना-फूसी करने लगे। जब स्वामी अपने भोजन कक्ष में सदैव की भाँति दस बजे या ग्यारह बजे नहीं पहुँचे, लोग अधिक चिंतित हुए। महिलाओं की दिशा से सिसकियाँ और कराहें, विलाप और रिरियाना सुनाई पड़ने लगा।

ईश्वराम्मा को इस अश्रुपूर्ण तनाव के वातावरण का कुछ अनुमान हुआ। वे मंदिर के पश्चिमी छोर पर स्थित सीढ़ियों तक आई, यह जानने के लिए कि हो क्या रहा है? उन्होंने दरवाजा खटखटाया और हमें विवश होकर दरवाजा खोलना पड़ा। वे अन्दर आई। स्वामी की दशा बिगड़ती ही जा रही थी। हमने उन्हें यह कह कर सांत्वना दी कि यह लकवा तो स्वामी ने स्वेच्छा से अपने ऊपर लिया है और वे जब चाहेंगे एक क्षण में इससे मुक्त होकर सामान्य रूप से चलने-फिरने लगेंगे। उन्हें शांत करने के लिए हमने प्रशांति निलयम् में डाक्टरों को स्वामी के परीक्षण और इलाज के लिए बुलाया। ईश्वराम्मा ने सुझाव दिया कि एक तार डा० सीतारमय्या को बुलाने के लिए दे दिया जाये, क्योंकि वे राजोल जा चुके थे और दूसरा श्रीमती सुशीलाम्मा को मद्रास से बुलाने के लिए भेज दिया जाए।

इसी समय स्वामी के एक चचेरे भाई, जिन्हें इस विपत्ति की गंभीरता के भावी संकेत मिल चुके थे, किसी की मोटर कार लेकर तुरन्त बंगलौर गए। और वहाँ से कर्नाटक राज्य की मेडिकल सेवाओं के डिप्टी डाइरेक्टर को लेकर शीघ्र वापस आये। वे जब पुट्टापर्ती पहुँचे काफी रात बीच चुकी थी। अतः डाक्टर को दूसरे दिन प्रातःकाल ही स्वामी के कमरे में लाया जा सका। स्वामी की आँख पर भी बीमारी का प्रभाव था और उनकी जबड़ा भी नहीं खुल रहा था। ऐसा कोई संकेत न था, जिससे यह पता चलता कि स्वामी को अपने आसपास की परिस्थिति का कुछ ज्ञान है । डाक्टर ने नाड़ी देखी, स्टेथेस्कोप लगा कर देखा और एक 'ड्रिप कंट्रेक्शन' लगाने का विचार किया। किन्तु स्वामी ने उसे एक ओर हटा दिया। प्रातः काल 9 बजे एक उदास चेहरा लिए हुए डाक्टर पुट्टापर्ती से चला गया।

जब वे वापस बंगलौर पहुँचे तो डाक्टर ने स्वामी के चचेरे भाई से जो सच्चाई का पता लगाने के लिए उनके साथ वापस गये थे, अत्यंत गोपनीय ढंग से कहा, “मुझे तो नहीं लगता कि मैं उनके दुबारा दर्शन कर सकूँगा। यह ट्यूबरक्युलर मेनिनजाईटिस (एक घातक बीमारी) का गंभीर आक्रमण है। जब उपचार के लिए अत्यन्त आवश्यक लम्बर पंकचर को रोका जाए, यहाँ तक कि सामान्य 'ड्रिप' (उपचार की एक विधि) पर भी आपत्ति की जाए, तो भला डाक्टर कर ही क्या सकता है?"

सचमुच हम डाक्टर के कथन पर संदेह न कर सके। हमें यह विश्वास सा हो गया था कि वह जो कुछ कह रहा है, ठीक ही है। बाबा बिछौने पर अत्यन्त पीड़ा से कराहते हुए बेचैनी से करवटें बदल रहे थे। उनके चेहरे की मांसपेशियाँ एकदम कड़ी और विकृत हो गयी थीं। जीभ लड़खड़ा रही थी। आवाज एकदम अस्पष्ट और दुहराने वाली हो गयी थी। बायी आँख की रोशनी भी नष्ट हो गयी थी। थर्मामीटर में तापक्रम सामान्य से कुछ डिग्री अधिक था। बाबा ने अपने आपको रहस्य के आवरण से ढक लिया था और संदेह के घने कोहरे को अपनी छतरी बना रक्खा था।

शय्या के चारों ओर मँडराती हुई महा विपदा के लिए ईश्वराम्मा तनिक भी तैयार न थीं। नीचे वाले कमरे में पर्याप्त समय बैठने के बाद शक्ति बटोर कर वे सीढ़ियाँ चढ़ सकीं। जब उन्होंने बाबा को इस स्थिति में देखा तो उनका संयम टूट गया और वे फूट-फूट कर रोने लगीं। मद्रास से सुशीलाम्मा सोमवार को दोपहर तक पहुँची। उन्होंने चौबीस घण्टे सुश्रूषा करने वाली नर्स का स्थान संभाल लिया। उनके बाद ईश्वराम्मा को उन घोर चिंता के दिनों का सामना करने के लिए थोड़ा सहारा मिला। वे ये जानती थी कि सुशीलाम्मा एक बुद्धिमती और स्वामी की समर्पित भक्त हैं।

उसी शाम स्वामी ने अस्थायी संकेतों और मुद्राओं से यह इच्छा प्रकट की कि वे संस्कृत विद्यालय, कैंटीन तथा आवास व्यवस्था कार्यालय में व्यस्त कर्मचारियों को देखना चाहते हैं। हम लोगों ने उसका यह अर्थ निकाला

कि स्वामी की ऐसी स्थिति के बावजूद वे हमें यह निर्देश दे रहे थे कि हम सदा की भाँति काम करते रहें। निश्चय ही यह एक हृदयविदारक क्षण था। हम लोगों ने स्वामी से पुनः अनुमोदन प्राप्त करने के लिए जो कुछ हम समझे थे, उसे धीमे शब्दों में धीरे-धीरे उनके सामने दुहराया। जब उन्होंने सिर हिलाकर अथवा हमें समझाने के लिए कुछ अन्य संकेतों से स्वीकृति दे दी, हम लोग शांतिपूर्वक अपने-अपने कार्यों में लग गये। जब स्वामी ने सिर हिलाकर यह प्रकट किया कि हम लोगों का अनुमान सही नहीं है, तो हमने उसका विकल्प स्वामी के विचारार्थ रखा। अंततः मैंने स्वामी से इस बात की पुष्टि कर ली कि लकवे का वह आक्रमण ईश्वर की स्थानापत्र कृपा का एक स्वरूप था। मैंने पूछा कि वह भाग्यशाली कौन था, जिसके लिए स्वामी ने इतना कष्ट उठाया। उनके संकेतों से मैं इतना ही समझ सका कि स्वामी उस भक्त का नाम न बतलाना चाहते थे। मैंने पूछा 'क्यों?' उनकी मुद्राओं और संकेतों से मैंने यही अर्थ लगाया कि नाम जानते ही हम लोग उसे पकड़ कर पीटेंगे और कठिन दण्ड देंगे।

माँ के हृदय को तब जाकर कुछ शांति हुई, जब मैंने उन्हें सूचना दी कि बाबा ने यह बीमारी अपनी इच्छा से ओढ़ी है और हमें केवल उस क्षण की राह देखनी चाहिए, जब वे उसे उतार कर फेंक देंगे। फिर भी वे गाँव वालों के मन में गहरे बैठी हुई इस आशंका और भय की लहर को रोकने में सफल न हुई, जिसने उनके विश्वास के पैर उखाड़ दिए थे। गाँव के बड़े-बूढ़ों और अनुभवी व्यक्तियों ने तरह-तरह के निष्कर्ष निकालना आरम्भ कर दिया था। किसी ने कहा, "काला जादू है।" कोई बोला, "एक दानव ने स्वामी पर

अधिकार कर लिया है। " तीसरा बोला, "सारी अद्वितीयता समाप्त हो गयी।" चौथे ने कहा, "आज से सत्य एक अपंग की भाँति ही जीवन व्यतीत करेगा।"

उन्होंने स्वामी को अच्छा करने के लिए नाना प्रकार के विधि-विधान तथा पूजन पाठ बताये। इस प्रकार उन्होंने स्वामी की बहनों, चचेरे भाइयों और रिश्तेदारों को इधर-उधर भागने और कभी ओझा कभी पुजारी, कभी डाक्टर आदि से मिलने और परामर्श लेने के लिए विवश किया। ईश्वराम्मा इस सबका प्रतिवाद करने की शक्ति और साहस अपने में न बटोर सकीं। बहस में वे उन्हें चुप करा देते। इतना ही नहीं, वरन् उलटे उसकी स्वीकृति तथा सहमति लेने का यह कह कर प्रयत्न करते कि इस प्रकार के पूजन-पाठ से बीमारी ठीक होने की पूरी सम्भावना है और यदि ठीक न भी हुई तो इससे कुछ हानि तो होने की नहीं। माँ की आशायें हाँ ना के झूले में झूलती रहीं। बहुधा तो वे हमारी उदासीनता और लापरवाही को देखकर दंग रह जाती, क्योंकि वे जब भी कमरे में आती, हमें केवल धीरज से बाट जोहते स्वामी की ओर देखते, उन्हें ध्यान से सुनते और उनकी आज्ञाओं का पालन करते देखती।

यद्यपि सुधार के कोई स्पष्ट लक्षण दिखाई नहीं दे रहे थे, स्वामी ने अपनी हाँ-हूँ के स्वर तथा संकेतों से यह बता दिया कि पाँच दिनों के बाद गुरुवार से रोग की तीव्रता कम होना शुरू हो जाएगी। उनके अस्पष्ट कथन से ऐसा लगता था कि उसके पश्चात् वे कष्ट-मुक्त हो जाएँगे, किन्तु जो गम्भीर

लक्षण उस समय विद्यमान थे, उनको देखते हुए स्वामी द्वारा किया हुआ सांकेतिक उद्धाटन आवश्यकता से अधिक सुनहरा लगता था। किन्तु फिर भी अपने होश-हवास ठीक रखने के लिए वे संकेत हमें डूबते को तिनके का सहारा लगते थे। चार जुलाई गुरुवार को सूर्योदय के बाद स्वामी ने यह शुभ समाचार दिया कि उन्हें अब कोई पीड़ा नहीं है। साथ ही प्रार्थना भवन में एकत्र भक्तों को उन्होंने मेरे द्वारा यह सूचना दिलाई कि भक्त को पीड़ा मुक्त करने का जो बीड़ा उन्होंने उठाया था, वह पूरा हो गया है और वे शनिवार को गुरुपूर्णिमा के पवित्र दिवस भक्तों को यथावत् दर्शन देंगे।

स्वामी ने पूछा कि “तुमने प्रार्थना भवन में भक्तों से क्या कहा?" मैंने उसे दुहरा दिया। उन्होंने मुझ से फिर जीने से नीचे जाकर अपनी शारीरिक दशा का विस्तृत वर्णन भक्तों से बतलाने के लिए कहा, ताकि शनिवार को जब वे स्वामी के दर्शन करें तो उन्हें आकस्मिक आघात न हो। किन्तु लगभग 4000 भक्तों को जो दो दिन बाद होने वाले गुरुपूर्णिमा पर्व के लिए एकत्र हुए थे, स्वामी की यंत्रणा और कष्ट के विषय में जानकर महान आघात हुआ।

जब ईश्वराम्मा ने सुना कि स्वामी ने शनिवार को दर्शन देने के लिए कहा है, तो वे शीघ्रता से प्रशांति निलयम् पहुँची और उपस्थित वयोवृद्ध भक्तों से यह परामर्श किया कि उस दिन दर्शन का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाएगा। सलाह लेने पर बाबा के एक अत्यन्त पुराने भक्त, सिविल इंजीनियर तथा तमिल भाषा के प्रकाण्ड विद्वान् श्री रामचन्द्र रेड्डी ने

अपनी योजना सामने रखी। उनका प्रस्ताव था कि दुःख से व्याकुल भक्तों की अपार भीड़ से बचाने के लिए वे स्वामी को सरलता से न पहुँचे जाने वाले स्थान, 'हार्सले हिल्स' ले जाएँगे। वहाँ वे वेलोर से विशेषज्ञ डाक्टरों को बुलाकर ले जायेंगे, जो उनकी वास्तविक बीमारी का सही-सही पता लगाकर उसका उपचार करेंगे। जहाँ तक गुरु पूर्णिमा के त्यौहार पर आए हुए भक्तों को दर्शन देने का प्रश्न है, इसका प्रबन्ध पहली मंजिल के बरामदे से हो सकता है। इससे बाबा को कम से कम थकावट होगी, क्योंकि जिस कमरे में वे अभी लेटे हैं, वहाँ से देहरी पारकर आने में उन्हें मुश्किल से बारह कदम चलना पड़ेगा। सभी प्रस्तावों में यह प्रस्ताव सब ने पसन्द किया और हम सभी लोग इससे सहमत हो गए। किन्तु स्वामी सहमत न हुए। उन्होंने जोर देकर कहा, "मैं कितना ही दुर्बल क्यों न हूँ, प्रार्थना भवन में रखी हुई चाँदी की कुर्सी पर बैठकर ही, जब भक्तगण भजन कर रहे होंगे, दर्शन दूँगा। उनका संकल्प अभेद्य है। किसका साहस था कि उसका विरोध करे?

ईश्वराम्मा और पेड्डा वेंकमा राजू ने हमारी कायरता और चापलूसी के लिए हमारे भाग्य को ही दोष दिया।

6 जुलाई 1963 को महत्वपूर्ण प्रभात हुआ। दिन बीता और शाम होते-होते प्रार्थना भवन भक्तों से शीघ्रता से भरने लगा। अपने अपंग पुत्र को घुमावदार सीढ़ियों से नीचे लाकर कुर्सी पर बैठाने का दृश्य स्वामी के माता-पिता के लिए असह्य था। साथ ही वे गाँव में भी न रुक सके। वे

निलयम् के पश्चिम किनारे पर बने हुए मकानों में से एक मकान के बरामदे में मूर्तिवत् खड़े थे, जबकि उनके पौत्र-पौत्रियाँ मन्दिर से बरामदे तक दौड़ लगाकर उन्हें आकर यह सूचना देते कि क्या हो रहा है। “किट्टप्पा और राज रेड्डी उन्हें सीढ़ियों से नीचे उतार रहे हैं। कस्तूरी उनके बायें पैर को कसकर सीधा पकड़े हैं।” “स्वामी ने सिर के ऊपर ठुड्डी के नीचे एक रूमाल बाँध रक्खा है।” “उनके चेहरे का केवल एक भाग दिखाई पड़ता है।” “बरामदे के बेल वाले कमरे में स्वामी को एक कुर्सी पर बिठाया गया।” “द्वार खुला; दो व्यक्ति दरवाजों को पकड़े हुए हैं।” “स्वामी पत्थर की देहरी पर कठिनाई से पैर रख पाते हैं। उस पर चढ़ गये।” “उनका बायाँ पैर अब भी कड़ा है। अब उसे हिलाने के लिए सहारा देना पड़ता है।” “वे हाल में आ गए है। चाँदी की कुर्सी फर्श पर रख दी गई है, आदि।”

स्वामी के आते ही प्रार्थना भवन से आने वाले कराह, सिसकियाँ और भक्तों का विलाप माता-पिता को सुनाई पड़ा। उन्होंने देखा कि उस करुणाजनक हृदय को देखने में और दुःख वहन करने में असमर्थ अनेक स्त्री-पुरुष बाहर निकल आये और जोर-जोर से रोने लगे। यह सब देखकर स्वामी के माता-पिता के धैर्य का बाँध भी टूट गया। वे भी फूट-फूट कर रोने लगे। “वह चला गया..." कह कर पिता दुःख से चिल्ला पड़े और अपना ही माथा पीट लिया। “मैं डरती थी कि यही होगा," माँ ने लड़खडातें स्वर में कहा और बेहोश होकर गिर पड़ी। नाती-पोते गहरे दुःख में अब जड़वत् खड़े थे और दौड़-दौड़ कर नए समाचार लाने का साहस उनमें न था। भाई और बहन

कष्ट' और निराशा से गूँगे और हतप्रभ हो गए थे। भवन के अन्दर भी एक विकराल मौन ने सारे वातावरण को अत्यन्त बोझिल बना दिया था।

थोड़े क्षणों का अत्यधिक तनाव और चिन्ता। तत्पश्चात् "जय" "जय साईराम" की कर्णवेधी जय जयकार सुनाई पड़ी। प्रत्येक व्यक्ति दौड़कर हाल के अन्दर गया। स्वामी भक्तों को गुरु पूर्णिमा का संदेश देकर भक्तों को आशीर्वाद दे रहे थे। वे एकदम सीधे खड़े थे। नेत्रों में पूर्ववत् चमक थी, मधुर मुस्कान, वीणा का-सा स्वर, गीता का प्रवचन ईश्वराम्मा गद्गद् होकर बोलीं, "हम उसे सत्य कह कर पुकारते हैं, पर उसके सत्य को हम लोग नहीं जान सकते।" पिता को अपनी सामान्य स्थिति में आने में अधिक समय लगा।

स्वामी की बहनों ने जो उनके एक घण्टे चलने वाले प्रवचन में लगातार बैठी थीं, उसी रात को पूरा विवरण आदि से अन्त तक ईश्वराम्मा को दिया, क्योंकि वे उस चमत्कार और रहस्य को अपनी स्मृति में अधिक समय बंद न रख सकती थीं। यह आवश्यक था कि अन्य लोग उसमें भाग लें और प्रसन्नतापूर्वक उसे पर्व के रूप में मनायें। "माँ वे शिव-शक्ति हैं। उन्होंने आज इसकी घोषणा की है। उन्होंने अपनी दायी हथेली में थोड़ा-सा जल लेकर अपने रोग-ग्रस्त बायें हाथ और पैर पर डाला; और बस इतने से ही उनकी आँख, बाँह, कंधा तथा पैर सब ठीक हो गए। वे खड़े होकर बोले। उनकी वाणी में रूपहली झंकार थी और जो उपदेश उन्होंने दिया, वह तो स्वर्ण के समान सुन्दर था, और माँ उन्होंने कहा कि यह सब एक

प्रकार का दण्ड था, जिसे स्वयं शिव ने अपने को तथा पार्वती को दिया; क्योंकि उन्होंने भारद्वाज ऋषि को अपनी मूर्खता से बड़ा कष्ट दिया था। यह उसी का प्रायश्चित था। सत्य का दायाँ अंग शिव है और बायाँ शक्ति। उसका बायाँ अंग एक सप्ताह तक इसलिए लकवे से पीड़ित रहा, क्योंकि शक्ति को ऋषि के साथ किए हुए दुर्वव्यवहार का प्रायश्चित करना था। " ईश्वराम्मा ने बीच में टोका "यह तुम क्या कहती हो? अर्धनारीश्वर?" "हाँ सत्य ने तो यही कहा है," वेंकम्मा ने उत्तर दिया।

कवियों और संतों ने शिव और शक्ति को लेकर हिमालय में स्थित कैलाश पर्वत पर उनके निवास को लेकर उनके दोनों पुत्र गणेश और सुब्रह्मण्य (कार्तिकेय) को लेकर उनके वाहन पवित्र नंदी लेकर जो पौराणिक गाथायें समय-समय पर रची है, ईश्वराम्मा का उनसे अति सामान्य परिचय था। पुट्टापर्ती में स्थित शिव मंदिर में भक्त गायक इनसे सम्बन्धित कथाएँ, भजन तथा हरिकथा के रूप गाया करते थे। किन्तु यह कथा कि शिव ने स्वयं अपने को दण्डित किया, किसी विद्वान कथाकार के कोष में न थी। उन्होंने सोचा, "निश्चय ही कैलाश और बैकुण्ठ में न जाने कितना रहस्य भरा पड़ा है। जिसका ज्ञान पुराणों को भी नहीं है।" "भारद्वाज ऋषि को प्रसन्न तो करना ही था। क्या यही कारण है कि स्वामी ने उस गोत्र में अवतार लेने का निश्चय किया, जिससे ऋषि भारद्वाज का नाम सम्बन्धित है। वह सब होते हुए भी एक है और एक होते हुए भी सब है।" सोचते सोचते अंत में उन्होंने निष्कर्ष निकाला, "व्यर्थ ही मैं संदेह और प्रश्नों के पचड़े में क्यों पड़ूँ? वह स्वामी है। मेरे लिए इतना ही बहुत है। "

आरती के पश्चात् स्वामी उन घुमावदार सीढ़ियों पर अपने आप अकेले चढ़े। चारों ओर हर्ष से जय-जयकार हो उठा। बिगुल और शंख बज उठे। उन्होंने पुनः अपनी अवतार की भूमिका सम्भाल ली। गत सप्ताह के विषय में उनसे कुछ भी प्रश्न करने का किसी को साहस न हुआ; क्योंकि वे उन हजारों भक्तों में जो आदिगुरु से आशीर्वाद लेने एकत्र हुए थे, व्यस्त थे। कभी वे उनके भजन और आवास के विषय में निर्देश देते और कभी आतुर भक्तजनों का पादनमस्कार (चरणस्पर्श)। काली निशा बीत चुकी थी। नव-प्रभात में साई-सूर्य और भी प्रखरता से ज्योर्तिमय हो उठा। ईश्वराम्मा प्रसन्न थी कि स्वामी ने दिव्य महिमा का एक और पक्ष संसार के समक्ष उद्घाटित किया। प्रशांतिनिलयम् की वृक्ष राशि, जिनकी शाखायें निराशा रूपी पतझड़ से झुक और मुरझा गयी थीं, एक बार पुनः सीधी होकर लहलहा उठीं। प्रत्येक शाखा और टहनी प्रसन्नता से चहकने लगी। शांति और आशा में विमग्न उल्लसित हृदयों से निकलने वाले सौरभ-युक्त झोंको से सम्पूर्ण वातावरण भीग गया।

इस प्रकार चार महीने निकल गए। एक छोटी किन्तु आकस्मिक बीमारी से 4 नवम्बर 1963 को स्वामी के पिता दिवंगत हो गए। अपने सबसे छोटे पुत्र के घर में उन्होंने प्राण त्याग किया। प्रशांतिनिलयम् में उस समय भजन हो रहे थे। वे यथावत् होते रहे तथा कार्यक्रम में कोई व्यवधान नहीं डाला गया। प्रत्येक व्यक्ति ने इस आघात को अत्यन्त साहस के साथ मौन रहकर सहन किया। समाधि स्थल के समीप जल रही चिता के समीप

स्वामी गए और मृत शरीर पर एक माला समर्पित की। तत्पश्चात् वह समाधि में रख दिया गया। ईश्वराम्मा ने इस विपत्ति का अत्यन्त धैर्य और साहस से सामना किया। स्वामी इस समय तक उनके लिए एक दुर्ग के समान थे, एक शिला के समान अभेद्य और दृढ़। वही उनकी ढाल थे और वही गढ़। स्वामी का जीवन ही उनके लिए संदेश था। इस सम्बन्ध में स्वामी ने "सनातन सारथी" के लिए जो लेख लिखा था, उसे ध्यान से सुना और उसमें सत्य का जो निरूपण स्वामी ने किया था, उससे शक्ति और साहस प्राप्त किया। वे उस लेख को सुनकर जो कुछ भी समझ सकीं, वह सब स्वामी को बतलाया। स्वामी ने उसमें लिखा था कि भगवान जब भी अवतार लेता है तो अपनी रुचि के व्यक्ति को ही पिता होने का सौभाग्य प्रदान करता है और यह सम्मान एक युग में केवल एक ही बार किसी व्यक्ति को प्राप्त होता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि जब मानवता अपने ही कर्मों से पतित होकर कष्ट और पीड़ा से कराह उठती है, तब ईश्वर स्वयं मानव रूप धारण कर संसार में प्रकट होता है। भक्तों से ईश्वराम्मा ने कितनी ही बार यह प्रशंसा सुनी थी कि अवतार को पुत्र रूप में जन्म देकर वे सत्य ही अत्यन्त भाग्यशाली और पुण्यात्मा हैं। अब इस बात की पुष्टि हो गयी कि स्वयं उनके पुत्र द्वारा ही उन्हें ऐसा शुभ अवसर प्रदान किया गया है।

जिन विद्वानों ने वेदों और शास्त्रों पर अधिकार प्राप्त कर लिया था, उन्हें अवतार की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कभी किसी प्रकार का संदेह नहीं हुआ; क्योंकि जैसा स्वामी ने कहा है, "केवल वे लोग जिन्होंने भारतीय

प्राचीन ग्रंथों का पारायण किया है, मेरी सत्ता को पहचान सकते हैं। " अतः सनातन धर्म के उत्थान के लिए जब स्वामी ने वेद-विद्वत्-सभा की स्थापना की तो विद्वानों ने उसका स्वागत किया। उसके तत्वावधान में उन्होंने वेदों में वर्णित नैतिक तथा धार्मिक नियमों और दार्शनिक सिद्धान्तों के प्रतिपादन और प्रचार के लिए विचार-गोष्ठियों तथा सम्मेलनों की श्रृंखला आरम्भ की। फरवरी सन् 1965 में बालकों के लिए उपनयन संस्कार के पुनः प्रचलन सम्बन्धी भगवान के प्रस्ताव का उन्होंने अत्यन्त उत्साह के साथ स्वागत किया। इस संस्कार द्वारा बालक गायत्री मंत्र में दीक्षित किए जाते हैं और गायत्री मंत्र आध्यात्मिक प्रगति का कुँजी है। स्वामी के संकल्प ने शताब्दियों के आलस्य और पीढ़ियों की सुस्ती को निकाल फेंका। उसने तरुण बालकों को चारों ओर इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे अपने माता-पिताओं को शताब्दियों को पार करके आने वाले उस आवाहन को सुनने के लिए विवश करें। अतः अनेक जातियों और उप-जातियों में जन्में तथा गायत्री मंत्र की इस सुविधा से शताब्दियों से वंचित लगभग पाँच सौ बालक भगवान के समक्ष एकत्र हुए। मी ने उन्हें यज्ञोपवीत पहना कर गायत्री मंत्र में दीक्षित किया। उन्होंने बालकों के कोमल मन पर उस पवित्र मंत्र के उच्चारण द्वारा, जो अनंत परम ज्योति को सम्बोधित किया गया था, एक स्थायी प्रभाव डाला- वह ज्योति जो सूर्य, सृष्टि और हमारी मेधा को प्रकाशित करती है।

ईश्वराम्मा ने इस आधारभूत पर्व के आयोजन को गहरी रुचि के साथ देखा। वे उस अवसर की पावनता से अभिभूति थीं। कभी-कभी वे स्वामी

की उस दिव्यता के विस्तार का अनुमान लगाती और अचरज करती कि किस प्रकार बाल्यकाल में अपने विद्यालय को छोड़कर चला आने वाला सत्य आज सम्पूर्ण विश्व के लिए एक पाठशाला का संचालन कर रहा है। प्रत्येक दशहरे के अवसर पर यज्ञ सप्ताह के आरम्भ होने पर महाराजाओं द्वारा सम्मानित अनेक पंडित, महंत, बड़े-बड़े मठाधिपति ईश्वराम्मा की खोज करते। वे कलियुग के कल्पवृक्ष श्री कृष्ण परमेश्वर भगवान बाबा की पावन जननी को अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करना चाहते। ईश्वराम्मा इस प्रकार के श्रद्धातिरेक से अत्यन्त संकोच का अनुभव करतीं, किन्तु उनके अन्तरतम के किसी कोने से एक ध्वनि अवश्य निकलती जो स्वामी के प्रति उनकी आस्था की प्रति ध्वनि होती। जिस प्रकार मेरी ने एलिजाबेथ के समक्ष स्वीकार किया था, वे स्वयं से बोली, “मेरी आत्मा उस परम प्रभु का आवर्धन करती है और अन्तरात्मा ईश्वर की महिमा में पूर्णतः स्नात है। उस परमेश्वर ने मेरी जैसी सेविका का भी सम्मान बढ़ाया है, क्योंकि भविष्य में

आने वाली सभी पीढ़ियाँ अब मुझे भाग्यशाली कहकर पुकारेंगी।" दशहरा के अवसर पर उस स्वर्गीय अनुष्ठान तथा पूजन में भाग लेकर वे सभी सम्मानित विद्वान स्वामी द्वारा कितने ऊपर उठा दिए गए (भक्तों की दृष्टि में) इसे देखने की शुभावसर ईश्वराम्मा को मिला।

पंडितगण पहले ही स्वामी को आंध्रप्रदेश के पूर्वी तथा पश्चिमी गोदावरी जिलों में ले जा चुके थे। स्वामी की उपस्थिति में उन्होंने उस पवित्र नदी

के तट पर एक वैदिक यज्ञ किया था और चूंकि नदी का उत्तरी किनारा शिरडी को स्पर्श करता था, जहां स्वामी अपने पूर्व अवतार में रहते थे, इस यज्ञ का महत्व कई गुना बढ़ गया था। वे केरल तथा महाराष्ट्र के अनेक ऐसे पंडितों (विद्वानों) को जानती थीं, जिन्होंने स्वामी के रूप में अपना अभिभावक और पथ निर्देशक जिसकी उन्हें वर्षों से आकांक्षा थी, प्राप्त कर लिया था। उन्हें यह भी भलीभाँति स्मरण था कि किस प्रकार हरिद्वार, बनारस तथा वद्रीनाथ के संन्यासी स्वामी के प्रवचनों को सुनने के लिए सदैव उत्सुक रहते थे।

किन्तु इस सब का अर्थ क्या था ? घटनाक्रम का संकेत किस ओर था? वे आज यहाँ है और कल वहाँ प्रतिदिन जब प्रार्थना भवन में भजन सत्र समाप्त होता और भगवान की आरती होती तो उसके अंत में 'पुट्टापर्ती महात्मा की जय' का घोष सुनकर ईश्वराम्मा का हृदय भावोद्रेक से भर जाता। उन्हें यह सोचकर परमसंतोष होता कि भक्तों की पुकार और प्रार्थना पर स्वामी चाहे स्थल मार्ग से, चाहे वायुयान से दूर या समीप कहीं भी तथा कितनी भी बार जायें, अन्ततोगत्वा वे लौट कर पुट्टापर्ती ही आयेंगे और वही उनका स्थायी निवास रहेगा। फिर भी कभी-कभी इस विषय में उनका विश्वास डिग सा जाता था। स्वामी जब भी प्रशांति निलयम् छोड़कर किसी अन्य स्थान की यात्रा करते तो अनेक निरर्थक और काल्पनिक भय उन्हें घेर लेते। ईश्वराम्मा जब भी अपने को श्रद्धा और भय के बीच घड़ी के पैण्डुलम की भाँति डोलता हुआ पातीं. विश्वास और संघर्ष दोनों उन्हें आ घेरते. तो वे बहुधा मेरे पास आती और कहतीं, “पंडित लोग

कहते हैं। कि स्वामी राम और कृष्ण भाँति सच्चे अवतार है। स्वामी कहते हैं कि वे शिवशक्ति, गौरीशंकर, सत्यम् शिवम्, सुन्दरम् और साई बाबा भी है। लोग कहते हैं कि साई बाबा ने घोषणा की थी कि वे वासुदेव है। पंडित लोगों ने तो सारे वेद-शास्त्रों का अध्ययन किया है, अतः वे जो कुछ कहते हैं, ठीक ही होगा। क्या तुम इस बात से सहमत हो ?" किन्तु मैं उनके समक्ष यह स्वीकार करने का साहस न कर सका कि इसी प्रश्न को लेकर मेरा मन स्वयं बड़ी उलझन में पड़ा रहता है। मैंने उन्हें केवल एक ही सुझाव दिया, "वे क्या हैं, अथवा उनकी यथार्थता क्या है, इस विषय में स्वामी के कथन पर पूर्ण विश्वास रखिए। वे चाहे इसे किसी रूप में कहें, कहीं भी कहें और किसी समय कहें। उनके कथन ही उस माया के आवरण को उठाने में सफल होते हैं, जिसे वे पहने रहते हैं, और जब कभी इच्छा होती है, उसे उठा भी देते हैं।" मैं नहीं जानता कि उन्होंने मेरे इस सुझाव का स्वागत किया अथवा नहीं, किन्तु भविष्य में भी आने वाले कई वर्षों तक वे मुझसे तथा अन्य व्यक्तियों से यही प्रश्न बार-बार करती रहीं। पर स्वामी को छोड़कर कम से कम मेरी जानकारी में कोई ऐसा व्यक्ति न था जो ईश्वराम्मा की इस शंका का समाधान कर सकता और स्वामी उन्हें भी वही उत्तर देते जो अनेक भक्तों को देते- आओ, देखो, परीक्षा लो, अनुभव करो और तब विश्वास करो।"

एक अन्य परम संत महिला पवित्र माँ श्री शारदा देवी के सम्बन्ध में सिस्टर निवेदिता के शब्द मुझे इस अवसर पर स्मरण हो आते हैं, "इस प्राचीन देश में महिलाओं में अत्यन्त सरल और सीधी-सादी महिला भी

जिसे प्राप्त कर सकती है, उस माधुर्य और विद्वता का साकार रूप इनमें देखने को मिलता है। एक ओर जहाँ उनकी साधुता तथा संत स्वभाव लोगों को विस्मय में डालता था दूसरी ओर नम्रता तथा मुक्त हृदयता में जो शालीनता थी, वह भी असाधारण थी और आश्चर्य में डालने वाली थी। उनका जीवन एक दीर्घ मौन प्रार्थना है।"

उपनयन का दिन एक विशेष दिवस था। बटुक (जिन बालकों का उपनयन होने वाला था) और उनके अभिभावक अत्यन्त प्रसन्न थे। किन्तु उनसे अधिक प्रसन्न वैदिक विद्वान थे। वे जान गए थे कि उस स्वर्णिम दिन का प्रभात हो चुका है जबकि विश्व प्रकाश और प्रेम के साक्षात अवतार की ओर अपनी तीर्थ यात्रा आरम्भ करेगा। ईश्वराम्मा को भी उपनयन पर्व के इस युगान्तरकारी महत्व का कुछ-कुछ आभास हो गया था, यद्यपि उसके गूढार्थ को समझना उनकी बुद्धि के परे था। फिर भी रत्नाकर परिवार के उन नवयुवकों के जीवन में, जिन्हें उन्होंने मन की परम शांति की कुंजी के रूप में इस संस्कार को अपनाने के लिए प्रेरित किया था, गायत्री मंत्र की प्रार्थना के फलस्वरूप जो असाधारण परिवर्तन आया, उसे वे स्पष्ट रूप से देख सकीं। जिस क्षण उन्होंने स्वामी द्वारा उनके कान में फूँके हुए पवित्र गायत्री मंत्र को हृदयंगम किया और वहाँ पर उपस्थित पाँच सौ बटुकों में से प्रत्येक उठकर उसे ग्रहण करने के लिए स्वामी के निकट पहुँचा, चैतन्य मुख वाली वे बटुक पंक्तियाँ और भी अधिक चैतन्य हो उठी। उनके मुखों से एक आनन्द की आभा झलकने लगी। गायत्री के अतिरिक्त स्वामी ने उन्हें आत्म-शुद्धि का वह शक्तिशाली परम मंत्र भी दिया, जिसे नारद मुनि

ने बालक ध्रुव को उस समय दिया था, जब वह ध्यान और तप का प्रारम्भ। करने वाला था। वह मंत्र 'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' था।

मई 1968 में प्रशांति निलयम् के प्रत्येक निवासी तथा रत्नाकर परिवार के लगभग सभी सदस्यों ने बस द्वारा बम्बई की यात्रा की। यह धर्म क्षेत्र के उद्घाटन समारोह का अवसर था। स्थापत्य कला का यह अनुपम उदाहरण स्वामी को समर्पित किया गया। यह स्वामी की बम्बई यात्रा काल में उनका निवास भी था। साथ ही स्वामी के निर्देशन में महाराष्ट्र राज्य में चलने वाली सत्य साई सेवा संस्था का मुख्य कार्यालय भी। ईश्वराम्मा की बम्बई नगर की यह पहली यात्रा थी। वे बंगलौर, नई दिल्ली, मद्रास, त्रिवेन्द्रम तथा हैदराबाद हो आयी थीं, पर बम्बई नगर उन्हें सबसे कम पसन्द आया। अतः जब वे सामान्यतः दर्शनीय तथा रमणीय स्थल न देख सकीं, तो उन्हें इसका तनिक भी दुःख न हुआ। आरे मिल्क कॉलोनी में स्थित प्रशिक्षार्थियों का छात्रालय जहाँ उन लोगों के ठहरने का प्रबन्ध हुआ था, सौभाग्य से बम्बई नगर के शोरगुल से काफी दूर था।

वे बस द्वारा धर्मक्षेत्र तथा अन्य स्थलों को ले जाए गए, जहाँ लाखों व्यक्ति स्वामी के दर्शनों के लिए उपस्थित थे। उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि बम्बई में, और वह भी इतनी बड़ी संख्या में लोगों ने अपनी वाणी पर इतना कड़ा अनुशासन लगा रखा था कि वहाँ के वातावरण में पूर्ण मौन था। सम्पूर्ण भारत वर्ष से आए भक्तगणें से, जिनमें से अनेक को वह पहले प्रशांति निलयम् में भी देख चुकी थीं, शामियाने खचाखच भरे थे। इस सब

को देखकर उन्हें सहज विश्वास न होता था। वे तो यह सब देखकर स्तम्भित रह गयीं। किन्तु शीघ्र ही यह खबर उपस्थित जनसमुदाय में बिजली की तरह फैल गयी कि स्वामी की माँ वहाँ उन लोगों के बीच उपस्थित है। फलस्वरूप सारे कॉलोनी और धर्मक्षेत्र में उनके दर्शन के लिए लम्बी कतारें लग गयीं। उनसे प्रार्थना की गई कि स्वामी के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में जो कुछ जानती हों, उस विषय में कुछ बतलायें। उनके बड़े पुत्र शेषमाराजू उनके साथ थे। वे प्रश्नों का अनुवाद तेलुगू में करके अपनी माँ को बतलाते और जो भी उत्तर उनकी माँ देतीं उनका अनुवाद अंग्रेजी में करते।

कुछ समय पश्चात् डा० सी०जी० पटेल से ईश्वराम्मा को पता चला कि स्वामी शीघ्र ही पूर्व अफ्रीका जाने वाले हैं। वे ऐसी यात्रा के विचार मात्र से, जिसमें समुद्र के ऊपर हवाई जहाज से यात्रा करनी हो, अत्यधिक घबरा गयीं। वे मद्रास तथा बम्बई दोनों स्थानों में समुद्र तट पर गयीं। उन्होंने देखा था कि सुदूर क्षितिज तक समुद्र का जल ही फैला हुआ है और उसका कोई अन्त ही नहीं है। उन्हें स्मरण आया कि पंडितों ने अपने प्रवचनों में कहा था कि समुद्र को पार करना खतरे से खाली नहीं। जब हनुमान ने समुद्र पार करने के लिए छलांग लगायी थी तो समुद्र में रहने वाली एक राक्षसी ने जल के ऊपर पड़ने वाली हनुमान की भागती हुई छाया को पकड़ लिया। और इस प्रकार हनुमान को मध्य आकाश में ही रोक लिया। रामायण की व्याख्या करने वाले शास्त्रियों ने समुद्र का वर्णन करते समय उसमें रहने वाले जीव-जन्तुओं का भी वर्णन किया, जिसमें एक एक मील

लम्बे साँप, शार्क तथा हवेल मछलियों का वर्णन था। इधर स्वामी ने उनकी घबराहट और भय दूर करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। उल्टे रामायण में वर्णित सागर की विशालता और गंभीरता से भी अधिक डरावना चित्र उपस्थित कर स्वामी ने उन्हें और भी भयभीत कर दिया। वे बोले, "रास्ते में ऐसे-ऐसे भयंकर तूफान आते है जो आकाश में उड़ने वाले हवाई जहाज के टुकड़े टुकड़े कर देते हैं। साथ ही अफ्रीका तो ऐसा महाद्वीप है, जहाँ सब कुछ उल्टा ही है। वहाँ मानवजाति की सबसे छोटे कद वाली (बौने) जातियाँ, संसार की सबसे ऊँची और लम्बी जाति वाले मनुष्यों के साथ रहती है।" उन्होंने ईश्वराम्मा को विस्मय और भय में डालते हुए कहा कि अफ्रीका की यात्रा में तो भूतकाल में चार घण्टे तक यात्रा करनी पड़ेगी। बम्बई से शाम की चाय लेकर तीन बजे यात्रा आरम्भ करेंगे और अफ्रीका उसी दिन 11 बजे पहुँच जायेंगे और वहाँ जाकर उन लोगों के साथ दोपहर का खाना खायेंगे।

यह सब सुनकर ईश्वराम्मा इतनी घबरा गयीं कि वे स्वामी से प्रार्थना करने लगी कि ऐसे दानव देश की यात्रा रद्द कर दें। स्वामी बोले कि "मेरा कार्य-क्षेत्र तो ऐसा ही है। मुझे वहीं सबसे अधिक काम करना है।" फिर मन ही मन हँसते हुए आग में घी डालते हुए उन्होंने कहा, "अभी थोड़े दिन पहले तक वहाँ ऐसी जातियाँ रहती थीं जो मनुष्य का मांस भूनकर बड़े स्वाद से खाती थी।" ईश्वराम्मा ने रोकर कहा, "मैं जानती हूँ स्वामी, आप जो कह रहे हैं, वह सत्य है। रावण भी उसी जाति का था। उसने सीता को यह धमकी दी थी कि यदि उन्होंने उसकी इच्छा का पालन नहीं किया तो वह

उनके टुकड़े-टुकड़े कर देगा और उन टुकड़ों से राक्षसों को कलेवा कराएगा। आप इस यात्रा पर जाना बिल्कुल रद्द कर दें।" इस प्रकार पहले बहुत अधिक डराने के बाद स्वामी ने ईश्वराम्मा को सांत्वना देते हुए कहा, “मुझे कुछ नहीं हो सकता। यदि वहाँ जाने में किसी भी प्रकार का खतरा होता, तो क्या मैं इंदुलाल शाह और कस्तूरी को अपने साथ ले जाता ? मेरे साथ गोगिननी वेंकटेश्वर राव तथा एक अमेरीकन दम्पत्ति भी जा रहे हैं। फिर इतने वर्षों से रहने वाले डा० पटेल तथा अन्य हजारों गुजरातियों को जब किसी ने नहीं खाया तो हम लोगों को क्यों खाने लगा।"

पहले डराकर और फिर आश्वस्त करके स्वामी ने ईश्वराम्मा को जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण पाठ पढ़ाया कि वे जीवन के धन-ऋण, सुख-दुख में ईश्वर की इच्छानुकूल किस प्रकार नाचें। स्वामी ने कहा है:

“अखिल सुष्टि का मैं हूँ नृत्याचार्य,
मुझे नटराजा कहते,
सभी नर्त्तकों का हूँ राजकुमार ज्ञात है केवल मुझको
कितनी अकथ यंत्रणा
मुझे उठानी पड़ती चरण चरण पर
जीवन नृत्य सिखाता जब मैं।"

ईश्वराम्मा के तीन-चौथाई मन को तो स्वामी के समझाने से संतोष आ गया था; किन्तु उनका एक चौथाई मन अभी भी इसी प्रयत्न में लगा था

कि यदि यह समुद्र पार की यात्रा किसी प्रकार स्थगित कर दी जाए तो अच्छा हो । उसने मुझसे तथा इंदुलाल शाह से इस विषय में चर्चा की। किन्तु जब हम लोगों ने उन्हें आश्वासन दिया कि पूर्वी अफ्रीका शांति और समृद्धि का देश है तो उन्होंने इस सम्बन्ध में विश्वसनीय विस्तृत जानकारी चाही। मैंने उन्हें बताया कि उस देश में जहाँ हम पंद्रह दिन से भी अधिक समय बिताने जा रहे हैं, सबसे बड़ा आकर्षण वहाँ के वन्य जीवन वाले अभयवन हैं, जहाँ हमें सैकड़ों की संख्या में अपने प्राकृतिक वातावरण में रहने वाले सिंह, हाथी, बिसन भैंसे, शुतुर्मुर्ग, दरियायी घोड़े देखने को मिलेंगे। स्वामी ने चतुराई से इस बात का उल्लेख ईश्वराम्मा से नहीं किया था। अतः इस जानकारी से ईश्वराम्मा के मन में जो प्रतिक्रिया हुई, उससे मुझे अपनी असावधानी पर दुःख हुआ। मैसूर के चिड़िया घर में वे इन सब वन्य पशुओं को देख चुकी थीं। फलस्वरूप इस जानकारी से उनकी व्यग्रता और बढ़ गयी। वे इतनी अधिक भयभीत हो गयी कि उनके भय को दूर करना और उन्हें समझाना मेरे वश के बाहर की बात हो गयी। “किसी भी पशु के एक जोर के मुक्के से मोटर की खिड़की का काँच टूट कर अलग हो जाएगा। हाथी का क्या वह तो सरलता से गाड़ी उलट सकता है", उन्होंने तर्क किया।

हवाई अड्डे पर भी जब तक कि हम सुरक्षा पुलिस की जाँच के बाद अन्दर के विश्रामकक्ष में नहीं पहुँच गए ईश्वराम्मा हमें निरन्तर यही चेतावनी देती रही कि हम लोग सिंह के बहुत निकट न जायें, अथवा अफ्रीका के पशुओं और मनुष्यों को परेशान न करें। यद्यपि उनके कल्पित भय को

सोचकर हमें हँसी अवश्य आती थी, किन्तु उनके मन में उठने वाली उन चिंताओं की यथार्थता में कोई संदेह न था। किन्तु ईश्वराम्मा को शीघ्र ही पता चल गया कि हजारों मील तक फैले हुए विशाल सागर से अलग किए जाने पर भी वे टेलीफोन द्वारा स्वामी से बात कर सकती है और उनकी प्रार्थना पर जब वे जहाँ ठहरी थीं, उनके मेजबानों ने स्वामी की यूगान्डा, तनजानियाँ तथा केनियां की यात्रा के दौरान कम्पाला में डा० सी०जी० पटेल से टेलीफोन पर उनकी बात करा दी, तो उन्हें संतोष हुआ। जब अरब सागर के दूसरे किनारे से उन्हें लगातार दो बार पहचाने हुए स्वर में स्वामी की कुशलता का समाचार मिल गया, तब जाकर कहीं उनके मन में उठने वाली चिंता की लहरें शांत हुई और उन्होंने टेलीफोन करना बन्द किया। अफ्रीका की यात्रा से लौटने पर जब स्वामी हवाई जहाज से, जिसे आदरपूर्वक गरुड़ की संज्ञा दी गई थी, उतरें तो ईश्वराम्मा का मुखमण्डल प्रसन्नता और कृतज्ञता से चमक उठा। किन्तु सिंहों और दरियायी घोड़ों के बीच से गुजरने वाले दल के खतरे के विचार से आए हुए उनके नेत्रों में आँसू तब भी झलक रहे थे।

हम लोगों ने जब वहाँ की यात्रा के अनुभव सुनाये तो ईश्वराम्मा ने बड़ी तन्मयता से सुना। अफ्रीका के मूल निवासियों का उत्साह और भक्ति, कम्पाला और नैराबी में हजारों की संख्या में जिन्होंने स्वामी के प्रवचन सुने तथा भजनों में भाग लिया, निश्चय ही अत्यन्त रोचक विषय थे। उन्होंने हमारे सामने प्रश्नों की झड़ी लगा दी और हम वहाँ से जो फोटो लाए थे, उन्हें घंटों देखती रहीं। अफ्रीका की यात्रा सम्बन्धी अपने काल्पनिक

भय को सोचकर अब उन्हें स्वयं अपने ऊपर लज्जा आई और उन्होंने यह स्वीकार किया कि यह सब अफ्रीका के निवासियों तथा उनके रीति-रिवाजों के विषय में स्वयं की जानकारी की कमी के कारण हुआ। उन्होंने एक उच्छ्वास लेकर कहा, “हम नारियों को संसार के विषय में और अधिक ज्ञान होना चाहिए।” स्वामी ने गुरुपूर्णिमा के दिन प्रातःकालीन सभा में अफ्रीका में भाषण दिया और फिर उसी दिन संध्या को बम्बई में भक्तों को सम्बोधित करने के लिए वे समय पर वहाँ से लौट आए। यह था-दैवी चमत्कार।

उस परम गुरु ने उनकी पुत्रियों की ओर से माता की पुकार सुनी। भारत भूमि पर उतरने के एक सप्ताह के अन्दर ही उन्होंने अनन्तपुर जिले के मुख्य कार्यालय स्थित नगर अनन्तपुर में श्री सत्य साई महिला आर्ट्स एण्ड साइन्स कालेज की स्थापना की। पुट्टापर्ती इसी जिले का एक भाग है। “स्वामी आपने अति उत्तम कार्य किया। पुरुषों के समान ही नारियों को भी शिक्षित होना चाहिए। यदि गाड़ी में जुते हुए दो पशुओं में से एक साहसी और चौकन्ना है तथा दूसरा कायर और अन्धा है, तो जिस गाड़ी में वे दोनों जुते हुए हैं, वह आगे कैसे बढ़ेगी ?" उन्होंने अपना मत व्यक्त किया।

अनन्तपुर गर्ल्स हाई स्कूल की प्रधानाध्यापिका लक्ष्मीदेवाम्मा ने उनको बतलाया कि एक वर्ष पूर्व जब स्वामी ने उनके स्कूल में हाई स्कूल का सभापतित्व किया था तभी उन्होंने इस कालेज की स्थापना का वचन

दिया था। "मैं देखता हूँ कि बालिकायें यहाँ से हाई स्कूल पास कर लेती हैं। उन्हें आगे की शिक्षा के लिए दूर कर्नूल और तिरुपति में स्थापित कालेजों में जाना पड़ता है," वे बोले। "अतः मैं शीघ्र ही यहाँ एक महाविद्यालय की स्थापना करूँगा।' इस प्रकार अनन्तपुर की लडकियों को कालेज में पढ़ने की सुविधा वहीं मिल गयी- वह भी ऐसा कालेज जो श्री सत्य साई बाबा के सर्वव्यापी रचनात्मक आदर्शों को साकार रूप देने के लिए समर्पित था।

यह स्वीकार करना पड़ेगा कि माँ अपने पुत्र की सबसे अग्रणी शिष्या थीं। वे एक आदर्श गृहणी थीं। हिन्दू पंचाग के अनुसार जो भी व्रत, पूजन और पर्व आदि आवश्यक थे, उन सबके पालन में वे अत्यन्त कट्टर थी। उन्हें तीर्थ यात्रा पर जाने में, पवित्र नदियों में स्नान करने में और मंदिरों में पूजन करने में परम आनन्द मिलता था। पुट्टापर्ती तथा आस-पास के गाँवों की उच्च जाति की महिलाओं के समान ही वे उन सामाजिक नियमों का कड़ाई से पालन करती थी जो समाज तथा परिवार के व्यक्तियों के साथ अपने सम्बन्धों के विषय में निर्धारित किए गए थे।

---

15. मौन साधना

ईश्वराम्मा को दिखावे के लिए भी यह मानने में कि संसार में केवल एक ही जाति है और वह मानव जाति, वर्षों लग गए। मडिगा, होलेया तथा इसी प्रकार के अन्य नामों के स्थान पर 'हरिजन' का लेबिल लगा देने पर भी (अर्थात् उन्हें 'हरिजन' नाम से पुकारने पर भी) इनके प्रति युगों से चली आने वाली पूर्व-धारणाओं को लोगों के मनों से निकालना अत्यंत कठिन कार्य था। जिस प्रकार शरीर के किसी अंग पर गुदा हुआ एक बार का गुदना जीवन-पर्यंत रहता है, उसी प्रकश शूद्र के घर जन्म लेने का कलंक भी धुल नहीं सकता, ऐसी लोगों की धारणा थी। स्वामी ने ईश्वराम्मा को यह बतलाया था कि हरिजन का अर्थ है 'ईश्वर पुत्र"। "तुम भी हरिजन हो," स्वामी ने कहा "संसार में सभी 'हरि' के 'पुत्र' है, अतः सब की एक ही जाति है।" किन्तु ग्रामीण जीवन में जो अब भी जातियों के पिरामिड की छाया में ही पल रहा था, परिस्थिति आज भी ऐसी ही थी—जो जितने नीच कुल में उत्पन्न हुआ है, उसका व्यवसाय उतना ही निम्न है और जो जितने उच्च कुल में पैदा हुआ है, उसका व्यवसाय उतना ही स्वच्छ और सम्मानित है।

गाँव के अछूतों की निराशा तथा उनकी असमर्थता को देखकर ईश्वराम्मा का हृदय अत्यन्त दुःखी होता था। जब कभी स्वामी उन्हें आसपास के गाँवों से एकत्र सैकड़ों हरिजन स्त्रियों को साड़ी बाँटने के लिए। नियुक्त करते तो उनका मुख-मण्डल प्रसन्नता से चमक उठता। "इन्होंने कभी स्वप्न में भी यह न सोचा होगा कि इन्हें जीवन में कभी इतनी कीमती साड़ी। भी पहनने को मिलेगी", वे अपनी साथियों से कहतीं। "और ये लोग

इन वस्त्रों को केवल किसी तिथि-त्यौहार पर अथवा अपनी सन्तानों के विवाह के अवसर पर ही पहनेगीं।" इन जातियों की महिलाओं को वस्त्र अथवा कोई अन्य उपहार बाँट देना एक बात थी, किन्तु उनकी कोठरियों में स्वयं जाना, उनको अपने घर बुलांना. उन्हें स्पर्श करना तथा उनके साथ बैठ कर भोजन करना दूसरी बात। गाँव वालों में अत्यधिक प्रगतिवादी समाज-सुधारक भी इतनी छूट लेने की कल्पना न कर सकते थे। निश्चय ही उनका सामाजिक बहिष्कार हो जाएगा और उन्हें एक ऐसी प्रथा का उल्लंघन करने के लिए दोषी ठहराया जाएगा, जिसकी जड़े अत्यंत गहरी थीं। साथ ही उन्हें एक . ऐसी सामाजिक क्रांति के लिए उत्तरदायी ठहराया जाएगा जो प्रतिष्ठित जनों की दृष्टि में समाज के लिए अत्यंत घातक था।

पुट्टापत आने वाले तीर्थ यात्रियों से ईश्वराम्मा कभी भी जाति न पूंछती थीं। उनके लिए वे सभी स्पृश्य थे। वे ही तो सच्चे अर्थों में 'हरि' के 'जन' थे। उन्हें ऐसा लगा कि उनकी जाति-पाँति की जाँच-पड़ताल करने का अर्थ होगा कि अप्रत्यक्ष रूप से यह निर्णय करना कि किसके समीप कितना जाया जा सकता है और किसे कितना मान-सम्मान दिया जा सकता है। निश्चय ही यह महा पाप होगा। किन्तु जहाँ वे तथा गाँव के अन्य लोग किसी की जाति से परिचित थे, तो उस तथ्य की उपेक्षा कैसे की जा सकती थी, उसे कैसे टाला जा सकता था? गाँव में रह कर तो किसी विशेष जांति, समूह अथवा सम्प्रदाय के प्रति जैसी हवा वहाँ बहती थी, उन्हें अपनी नौका के पाल उसी ओर खोलने पड़ते थे।

समय के साथ-साथ ईश्वराम्मा को अपने पारिवारिक घर में रहना उत्तरोत्तर कठिन लगने लगा। जाति-संघर्ष से आक्रांत वहाँ के वातावरण में साँस लेना उनके लिए कठिन हो गया। ज्यों-ज्यों एक के बाद एक वर्ष बीतते गए, उन्हें गाँव के सामाजिक आकाश में अधिकाधिक प्रदूषण दिखाई पड़ने लगा। समाज में जो हताश थे अथवा मोह मुक्त थे, उनके लिए लांछन लगाना, बदनामी करना, चुपके-चुपके चालाकी से दूसरों की बातें सुनना और फिर तिल का ताड़ बनाकर अफवाहें फैलाना, ये सब उनके मनोरंजन के साधन बन गए थे। राम मंदिर का उपयोग कदाचित् कभी ही ध्यान, साधना अथवा रामायण पर प्रवचन के लिए होता है। अधिकतर तो वह लोगों के लिए गप्प लगाने और इधर-उधर की बातें करने का केन्द्र बन गया था। और ईश्वर न करे कभी-कभी तो वहाँ अनैतिक गप्पबाजी भी होती थी। इस वातावरण में ईश्वराम्मा का दम घुटने लगा।

धीरे-धीरे रुढ़ि और परम्परा के प्रति उनका अंधविश्वास और पराधीनता एक बेधगम्य सार्थक साधना और आनन्दप्रद प्रक्रिया में बदल गयी। स्वामी द्वारा बताये गये शिवरात्रि के महत्व के फलस्वरूप यह पर्व तप और साधना का एक सुन्दर माध्यम बन गया था। सम्पूर्ण दिवस परमात्मा-चिंतन में व्यतीत होता था। संक्रांति पर्व का स्वागत प्रदर्शन से कम किया जाता था। उसमें समय और धन का अपव्यय भी न होता था, किन्तु प्रेम तथा आपसी सद्भाव की मात्रा कहीं अधिक होती थी। प्रत्येक पर्व को कट्टर नियमों और विधियों के जाल से निकाल कर उसे प्रेम और

आनन्द के विकास के स्रोत में बदल दिया गया था, जो यथार्थ में व्यक्ति और परिवार की आधार शिला है। वे छुट्टियाँ, जो पहले उद्दण्ड बालकों की धमा-चौकड़ी से आक्रांत थीं, अब उनके लिए अत्यधिक मानसिक और शारीरिक थकान के रूप में न रहीं। अब वे प्रार्थना की सुगन्ध से सुवासित पवित्र दिनों में बदल गयीं। 'मौज मस्ती का दशहरा' इस पद से मौज-मस्ती शब्दों का लोप हो गया और दशहरा जगत्पालिनी माँ दुर्गा के पूजन और उपासना का अवसर बन गया वह भगवती दुर्गा जो हमें सब कुछ देती है, हमारा पथ-प्रदर्शन करती है तथा हमारा रक्षण करती है।

इस प्रकार जब स्वामी ने शताब्दियों से चली आने वाले उन पूर्वाग्रहों और प्राथमिकताओं की निस्सारता बताकर उनकी निन्दा की, तो धीरे-धीरे वे विलुप्त हो गयीं। जैसी उन्होंने घोषणा की थी, उनका अवतरण परमात्मा की ओर ले जाने वाले प्राचीन तथा प्रामाणिक मार्ग को ढकने वाले घास-फूस, जो अकारण ही वहाँ उग आये थे, और पंडितों द्वारा वहाँ रक्खे हुए रोड़ों और अवरोधों को हटाने के लिए ही हुआ था। पाणिग्रहण और उपनयन ऐसे संस्कारों के अवसर पर भी प्राचीन अनुष्ठानों और रीति-रस्मों के सरलीकरण को ईश्वराम्मा न केवल सराहती थी वरन् उसे स्वीकार भी करती थीं। स्वामी ने इन महत्वपूर्ण सामाजिक कार्यों की पवित्रता, महत्व और आत्मा को तो सुरक्षित रक्खा था; लेकिन ऐसे अवसरों पर जो अनावश्यक प्रदर्शन और धन और समय का अपव्यय होता था और जिसे लोगों ने अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा का मापदण्ड बना रखा था, उसे बिल्कुल निकाल दिया था।

ईश्वराम्मा को इस बात से वर्णनातीत प्रसन्नता हुई कि स्वामी ने नारी को मातृत्व के पद से विभूषित कर उसका सम्मान किया। दशहरे में लगातार नौ दिवस प्रातः सायं महिलायें प्रार्थना-भवन में एकत्र होती और उस आदिशक्ति भगवती का दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वती के रूप में पूजन करती। स्वामी विधवाओं का भी स्वागत करते, यद्यपि समाज में भाग्य की मारी हुई। इन नारियों को कट्टर पंथी लोग सधवा नारियों के समाज में सम्मिलित होने से मना करते थे। पुरुष प्रधान समाज की निरंकुशता ने महिलाओं को यह सोचने के लिए बाध्य कर दिया था कि यदि वे आध्यात्मिक उन्नति का वरदान प्राप्त करना चाहती है, तो उन्हें केवल शास्त्रोक्त विधि से विवाहित अपने स्वामी की निस्वार्थ सेवा और परिचर्या करनी चाहिए और यदि अमिट कर्म के फलस्वरूप नारी से उसका यह अधिकार छिन जाए और वह विधवा हो जाए, तो उसे स्वयं एकाकी इस पूजा अर्चना का अधिकार नहीं है। यह एक वाक्य था, जिसके शिकंजे से स्वामी विधवाओं को बचाना चाहते थे।

ईश्वराम्मा को इस बात से अत्यधिक प्रसन्नता थी कि महिलाओं को न केवल इस बात की अनुमति थी, वरन् उन्हें उस पवित्र रहस्यमय पद 'ॐ' के उच्चारण और पाठ के लिए प्रेरित किया जाता था। सत्य तो यह है कि समाज द्वारा लगाये हुए इस प्रतिबन्ध का कि वे ईश्वर के ध्यान और साधना में भाग नहीं ले सकतीं, नारियाँ स्वयं इतना सम्मान करती थीं, कि उसे चुनौती देने का तो प्रश्न ही न उठता था। एक जिला न्यायाधीश की

उच्च शिक्षा प्राप्त पत्नी ने जब ब्राह्ममूर्त काल में प्रशांति-निलयम् के मंदिर में एकत्र नारियों से अत्यंत उत्साह के साथ मुखरध्वनि से 'ओंकारम्' सुना, तो वे रुष्ट होकर निलयम् छोड़कर चली गयीं। माँ का ऐसा मत था कि महिलाओं को निश्चय ही साक्षात् भगवान के समीप तक पहुँचने से वंचित नहीं रखना चाहिए। यदि ॐ इस प्रणव तत्व निराकार ब्रह्म का पावनतम और पूर्ण शाब्दिक प्रतीक है, तो निश्चय ही ओंकार के ध्यान और पाठ् द्वारा उस परमात्म-तत्व के आह्वान का अधिकार नारियों को भी उतना ही है, जितना पुरुषों को। उन्होंने स्वामी से कहा कि सभी जाति और धर्मों की नारियों को प्रदान किए हुए उनके इस आशीर्वाद रूप अधिकार से वे अत्यंत प्रसन्न है।

प्रशांति निलयम् में एक प्रवचन देते समय स्वामी ने यह रहस्योद्घाटन किया कि किसी निर्धारित अथवा जाने-माने तथ्यों के आधार पर उनकी सत्ता का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। यदि लोग उन्हें किसी वर्ग या श्रेणी में रखना ही चाहते है तो लोग उन्हें 'सत्य बोधक' के रूप में जान सकते हैं। जिस प्रकार भागवत पुराण के अनुसार कपिल मुनि ने, जिन्हें विष्णु का एक अवतार माना जाता है, अपनी माता देवहुति को पुरुष, प्रकृति और परमात्मा सम्बन्धी सत्य का विस्तृत उपदेश दिया था, उसी प्रकार ईश्वराम्मा ने भी अपने पुत्र' से परमानन्द की प्रथम शिक्षा ग्रहण की। फलस्वरूप सामाजिक पूर्वाग्रह, भोजन सम्बन्धी प्राथमिकतायें, आध्यात्मिक लक्ष्य, पारिवारिक सम्बन्ध इन सबका कठोर बंधन अपने आप धीरे-धीरे शिथिल पड़ने लगा। जब वे भक्तों को देखतीं और उनकी

आस्थाओं और दृष्टिकोणों पर स्वामी के अव्यक्त प्रभाव की कहानियाँ सुनतीं तथा हर समय अपने वचनों तथा कार्यों द्वारा स्वामी उन्हें तथा उनकी पुत्रियों को जो सीख देते, उन्हें तन्मय होकर हृदयंगम करतीं, तो उन्हें स्वयं अपने अन्दर होने वाले परिवर्तन पर अत्यंत आश्चर्य होता।

उन्हें ज्ञात हुआ कि वे तत्कालीन ग्रामीण जीवन की संकीर्णता और अधर्मिता से कहीं ऊपर उठ चुकी हैं और उनके मन में एक ही अभिलाषा थी कि वे अपना शेष जीवन गाँव के तू-तू मैं-मैं के जीवन से हट कर प्रशांति निलयम् में व्यतीत करें। स्वामी इसके लिए सहमत हो गए। प्रार्थना मंदिर के चारों ओर, जहाँ स्वामी स्वयं रहते थे, बने हुए अनेक कमरों में अनेक उत्कट भक्त निवास करते थे। इन सभी आवास इकाइयों में एक कमरा और उसी से लगा हुआ एक छोटा सा रसोई घर और स्नानागार था। इन्हीं में से एक कमरा ईश्वराम्मा को दे दिया गया। अब उन्हें किसी प्रकार की कोई शिकायत न रही। यदि कभी विनोद में स्वामी उनकी भाषा तथा व्यवहार पर कोई कटाक्ष भी करते तो वे उसे भी उनकी कृपा का एक अंग समझ कर उसके लिए कृतज्ञता प्रकट करतीं।

स्वामी की बचपन से चली आ रही एक आदत को छोड़कर, जिसे अनेक प्रयत्न करने पर भी वे न छुड़ा सकीं, उन्हें अब किसी बात की चिंता न थी। वे चाहती थीं कि स्वामी की भोजन सम्बन्धी आवश्यकताओं को वे पूरा करें, उनकी रुचि का भोजन बनायें, परोसें ओर खिलायें। पर स्वामी सदा से इसके विरोधी थे। घण्टों अनुनय-विनय करने और फुसलाने के बाद वे

कहीं उन्हें एक-आध कौर खाने लिए तैयार कर पातीं। हल्का से हल्का बहाना भी उन्हें परोसी थाली छोड़ कर भागने के लिए पर्याप्त था, चाहे वह एक कौर खाने के लिए कौए की काँव-काँव हो, दूर से आती हुई भिखारी की आवाज हो, माँ के चेहरे पर व्याप्त रोष और असंतोष की एक रेखा हो, अथवा पड़ोस में रोने वाले बच्चे का स्वर हो । अब जब से उन्होंने प्रशांति निलयम् में रहना आरम्भ किया तो पहले जो दो-एक निवाले वे उनके हाथ से खा भी लेते थे, और जिसके आधार पर वे जीवित थे, उन्होंने वे भी बन्द कर दिये। कहते– "ये भक्त जो आनन्द प्राप्त करते हैं, मुझे केवल उसी भोजन की आवश्यकता है।"

प्रार्थना मंदिर के सामने पंक्तियों में खड़े हुए भक्त स्वामी के दर्शनों की राह उत्सुकता से देखते। स्वामी मंदिर के पश्चिमी भाग में स्थित अपने कमरे से निकल कर जब लगभग प्रातःकाल आठ बजे कलेवा के लिए, 11 बजे भोजन के लिए, 3 बजे चाय और नाश्ते के लिए तथा रात में आठ बजे ब्यालू (रात का भोजन) के लिए बरामदे से होकर पूर्व में स्थित अपने भोजन कक्ष की ओर जाते, तो दर्शनार्थी भक्तों की भीड़ लगी रहती। यह तो सभी जानते हैं कि कलेवा, भोजन, नाश्ता तथा ब्यालू आदि तो केवल नाम मात्र को थे। बल्कि इन्हीं के बहाने परिवार वाले स्वामी के साथ कुछ क्षण कमरे में बिता लेते और इस बहाने आते-जाते भक्तों को भी दर्शन लाभ मिल जाता। कमरे के अन्दर के सदस्यों को अब यह समझ में आने लगा था कि स्वामी मेज से इतनी जल्दी उठकर कमरे से क्यों बाहर आते थे? इसीलिए उन्हें यह ज्ञात था कि उनके सैकड़ों भक्त आतुरता से बाहर उनके

दर्शन की राह देख रहे हैं। भक्तों का आनन्द ही तो वह भोजन था, जिसे वे अत्यन्त स्वाद से खाते थे। किन्तु स्वामी के इस कथन पर ईश्वराम्मा को, जिन्होंने उन्हें पाल-पोसकर बड़ा किया था, कैसे विश्वास आता ?

कभी कभी स्वामी खाने-पीने के तथा अन्य विषयों के सम्बन्ध में इतना दृढ़ निश्चय करते कि उनके भक्तों को अत्यन्त दुःख और गहरा कष्ट होता। फिर ईश्वराम्मा को, जिनका मन अत्यन्त कोमल था, अवर्णनीय कष्ट होता। सन् 1966 में एक ऐसे ही अवसर पर स्वामी ने लगातार 36 दिनों तक केवल एक गिलास मट्ठा प्रतिदिन पीकर समय निकाला। प्रशांति निलयम् में रहने वाले उनके सभी भक्तों ने बड़ी अनुनय-विनय की प्रार्थना की। किन्तु स्वामी ने उसकी ओर तनिक भी ध्यान न दिया। बल्कि मैंने देखा कि उनके इस निश्चय और हठ से भक्तों के मुखों पर जो पीड़ा और करुणा का भाव आ-जा रहा था, उसे देखकर वे मन ही मन आनन्दित ही हो रहे थे। इतना सूक्ष्माति सूक्ष्म आहार लेते हुए भी उनके किसी भी कार्य-कलाप में कहीं से भी कोई शिथिलता न झलकती थी, चाहे वह उनकी चाल-ढाल हो, उनकी मुद्रा हो, उनकी वाणी हो, उनकी स्फूर्ति हो, उनके नेत्रों की चमक हो, उनके सिर के चारों ओर का प्रभा-मंडल हो, उनकी मधुर मुस्कान हो, उनके हाथ का संचालन हो, अथवा और कुछ। किन्तु ईश्वराम्मा दिन में कई बार मेरे कमरे तक आतीं और मुझ से स्वामी के पास तक अपनी प्रार्थना पहुँचाने का आग्रह करती। मैं जब उनके पास पहुंचा और उनसे प्रार्थना की कि अब वे सदा की भाँति अपना दैनिक कार्यक्रम आरम्भ करें, तो वे मेरी ओर एकाएक घूमकर बोले, "क्यों? क्या

मैं थका हुआ लगता हूं? यदि अधिक नहीं, तो मैं कम से कम पहले जैसा चुस्त तो हूँ ही। क्या तुम नहीं देखने कि भक्तों का समूह बढ़ता ही जाता है और में सारे दिन उनके साथ व्यस्त रहता हूँ।" इस विषय पर मुझे स्वामी से आगे बात करने का साहस नहीं हुआ। मैं निरुत्तर था।

किन्तु ईश्वराम्मा को कोई नुप न कर सका। कोई भी इस बात को मानने के लिए तैयार न था कि इस कठोर अनुशासन ने स्वामी को दुर्बल नहीं बनाया। स्वामी का कथन था, "में भक्तों के आनन्द के बल पर जीवित हूँ।" किन्तु प्रशांति निलयम् के किसी भक्त के मन में स्वामी के इस कठोर संयम के कारण आनन्द का लेश भी न था। प्रत्येक के हृदय पर उदासी के बादल छाये थे। बहुतों ने तो अपने को दण्डित करने के लिए अपने भोजन की मात्रा में बड़ी कमी कर दी थी। इस अवसर पर प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में ईश्वराम्मा के प्रति गहरी सहानुभूति थी, जिनके लिए स्वामी की इस दशा को देखकर अपने उमड़ते हुए आँसुओं को रोक पाना बहुत कठिन हो रहा था।

अन्ततोगत्वा साई को सहमत होना पड़ा। उन्होंने मुझे एक दिन आज्ञा दी कि भजन समाप्त होने के बाद भक्तों को सूचित कर दो कि उनकी प्रार्थना और आग्रह के कारण स्वामी अब नियम से पुनः अपना प्रातः कालीन नाश्ता, दोपहर का भोजन और रात का भोजन प्रारम्भ कर देंगे। ईश्वराम्मा को अवर्णनीय प्रसन्नता हुई। वे स्वामी को ऊंगलियों से चावल, कड़ी, सांभर और रसम खाता हुआ देखकर प्रसन्न होतीं। उन्होंने स्वामी

से कहा कि भविष्य में अपनी इन चालों से सबको न खिझायें। अपने शेष वर्षों में जब कभी उन्हें इन 36 दिनों की याद आ जाती तो उनका मन कष्ट और विषाद से भर जाता। वे इस बात को अत्यन्त कृतज्ञता के साथ स्वीकार करती कि प्रशांति निलयम् में उन दिनों उपस्थित सभी भक्तों की प्रार्थना का ही सामूहिक परिणाम था कि स्वामी ने पुनः भोजन आरम्भ कर दिया। प्रार्थना में कितना बल है, इस बात पर अब उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया।

एक अन्य मन को स्पर्श करने वाली घटना जिसने ईश्वराम्मा को असीम संतोष दिया, वह सन् 1968 के आरम्भ में स्वामी द्वारा पुट्टापर्ती में आयोजित दस दिन का नेत्र रोग निदान तथा चिकित्सा शिविर था। शिविर में चार हजार रोगियों के नेत्रों का परीक्षण किया गया और एक हजार से अधिक रोगियों का ऑपरेशन करके उन्हें मोतियाबिन्द, रतौंधी तथा नेत्र की अन्य बीमारियों से मुक्त किया गया। वृद्ध पुरुषों और महिलाओं के झुण्ड के झुण्ड अपने लड़के-बच्चों, नाती-पोतों के साथ गाँव की सड़कों पर लड़खड़ाते हुए प्रशांति निलयम् आये। ईश्वराम्मा को तो इसका अनुमान भी न था कि स्वामी द्वारा प्रदान की हुई इस सुविधा से लाभ उठाने की कितनी बड़ी संख्या में लोगों को आवश्यकता थी। स्त्री और पुरुष भक्तों में उनकी सेवा करने के लिए अत्यन्त उत्साह था। नेत्र रोगों से पीड़ित रोगियों में महिलाओं की संख्या आधे से भी अधिक थी। ऑपरेशन के पहले उनके मुँह धोये जाने थे, उनके बालों में तेल डालकर चोटी की जानी थी और उनके मन में ऑपरेशन का जो भय था, उसे दूर करना था।

सौ से अधिक भक्त महिलाओं ने इस सेवा के लिए अपना नाम लिखाया। ईश्वराम्मा भी उनमें से एक थीं। यह सोचकर कि इन नेत्रहीनों को ऑपरेशन के बाद नया जीवन प्राप्त होगा उनका मन हर्ष और संतोष से भर उठता था। जहाँ एक ओर जब प्रशांति निलयम् का वातावरण वैदिक मंत्रों की ध्वनि से गूँजने लगता और ऐसा लगता कि सब कुछ प्राचीन वैदिक अनुशासन से अनुबद्ध है, तो ईश्वराम्मा का मन उत्साहित होकर भी एक अजीब संकोच और उलझन से भरा प्रतीत होता। किन्तु जब वे दूसरी ओर हजारों स्थानीय और पास-पड़ोस के रोगी ग्रामीणों को वहाँ वस्त्र दान लेते हुए, ऑपरेशन और चिकित्सा कराते हुए और भोजन करते हुए देखती तो उन्हें अत्यन्त आनन्द और सहजता का बोध होता।

स्वामी ने उन्हें सेवा कार्यों में और भी सक्रिय भाग लेने के लिए। प्रोत्साहित किया। उनसे कहा गया कि आयी हुई महिलाओं को साड़ी बाँटने का काम वह सँभाले। ईश्वराम्मा को यह अवसर पाकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। जब वे किसी महिला को साड़ी देतीं तो उसे अपने हाथ में लेते समय उनके नेत्रों में जो कृतज्ञता की चमक होती, उससे वे अत्यन्त प्रभावित होतीं। उत्साहपूर्वक वस्त्र वितरण की कला उन्होंने साई से ही सीखी थी; क्योंकि उन्होंने स्वयं साई को गरीब ग्रामीण किसानों के हाथों में कमीजें, धोतियाँ तथा तौलिया देते हुए देखा था। जब एक ही प्रकार की साड़ियाँ पहन कर दो बहने आपस में मिलती तो उनके नेत्रों में और मुख पर जो आनन्द का भाव होता, वह देखने योग्य होता। इसके पूर्व जब वे महिलायें ऑपरेशन के बाद आँखों में पट्टी बाँधे अपने-अपने बिस्तर पर

होतीं और ईश्वराम्मा उनके बीच से निकलती तो वे अपने हाथ बढ़ाकर उनका स्पर्श करना चाहतीं, मानों इसके द्वारा वे अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रही हो। उन्हें आस-पास माँ की उपस्थिति का आभास हो जाता।

ईश्वराम्मा को इस बात से अत्यधिक प्रसन्नता थी कि स्वामी ने महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था करने का निश्चय किया था। अन्य ग्रामीण नारियों की भाँति उनके मन में ऐसी नारियों के विरुद्ध एक पूर्वाग्रह का भाव विद्यमान था जो घर की देहरी (दहलीज) को पार कर मुक्त रूप पुरुष जाति की ईर्ष्या और भय से उत्पन्न चुनौतियों और भर्त्सना का सामना करने के लिए कृतसंकल्प थी। ईश्वराम्मा का विचार था कि महिलाओं का इस प्रकार से पुरुषों के क्षेत्र में खुले रूप से जाना नारी जाति के लिए अशोभनीय कार्य था। उनका विचार था कि मातृत्व ही एक स्त्री के लिए सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार है। बच्चों का लालन-पालन ही पवित्रतम कार्य है। प्राचीन शास्त्रों ने नारी मात्र के लिए जो करणीय और अकरणीय कार्य निर्धारित किए हैं, उनका पालन कर उन्हें ठीक उसी मार्ग पर चलना चाहिए, जिस पर उनके पति चले हैं।

किन्तु जब प्रार्थना और पश्चात्ताप शिक्षित महिलाओं, साहित्यिक महिलाओं, अंग्रेजी बोलने वाली महिलाओं तथा स्वयं अंग्रेज महिलाओं को पुट्टापर्ती लाया और जब स्वयं ईश्वराम्मा ने उनकी विनम्रता, सतीत्व तथा अपने परिवार के प्रति उनकी स्वामिभक्ति को देखा तो वह पूर्वाग्रह जो उनके प्रति था, सहज ही निकल गया। उन्होंने पाया कि शिक्षा निश्चय

ही लोगों के लिए आदर, प्रेम और साधना के द्वार खोल देती है। उन्हें इस बात पर अपने ऊपर दुःख हुआ कि उन्होंने स्वयं को पढ़ने-लिखने की क्षमताओं से वंचित रक्खा। वे जानती थीं कि अब शेष जीवन तो उन्हें इसी रूप में बिताना पड़ेगा, किन्तु अब उन्होंने अपने पुत्र-पुत्रियों को इस बात के लिए उत्साहित किया वे जहाँ तक चाहे शिक्षा प्राप्त करें।

दिव्य हाथों से आरोपित बीज शीघ्र ही स्फुटित हुआ और दिन प्रति दिन पुष्ट और सुदृढ़ होने लगा। एक वर्ष के अन्दर ही कालेज, हॉस्टल, लाइब्रेरी तथा सभा भवन के लिए भव्य इमारतों की नींव डाल दी गई और अठारह महीनों के बाद भारत के राष्ट्रपति द्वारा इस पूर्णतः सुसज्जित शिक्षा संकुल का उद्घाटन किया गया। ईश्वराम्मा ने जिस समय उद्घाटन समारोह के अवसर पर उपस्थित विशाल जनसमूह को, स्वामी के समीप बैठे हुए राज्यपालों और मंत्रियों के भाषण सुनते हुए देखा तो उनका मन आह्लाद से भर गया। प्रत्येक अतिथि वक्ता स्वामी के प्रति अपनी भक्ति और श्रद्धा तथा इस महान समाज सेवा के लिए अपनी कृतज्ञता प्रकट कर रहा था। गुरु पूर्णिमा का दिवस था और इस पुण्य अवसर पर स्वामी अपने जगद्गुरु के रूप में पूर्णाभा के साथ अन्धकार में भटकती अंधी मानवता को सच्चे ज्ञान का प्रकाश दिखाने के लिए उपस्थित थे।

सन् 1970 को मई में जो पार्टी स्वामी के साथ बम्बई गई, ईश्वराम्मा भी उसमें थीं। भक्तों के आग्रह के कारण स्वामी ने उन्हें यह वचनं दिया था कि प्रतिवर्ष धर्म-क्षेत्र के उद्घाटन की वर्ष गाँठ के शुभ अवसर पर वे अवश्य

वहाँ पधारेंगे। पंडितों ने ईश्वराम्मा से यह बतलाया था कि स्वामी ने बम्बई के मंदिर का जो नाम "धर्म क्षेत्र" रक्खा है वह उतना ही सारगर्भित है, जितना कि उनका रक्खा हुआ "प्रशांति निलयम्" नाम। यह नाम इस बात की घोषणा करता है कि स्वामी ने प्रत्येक हृदय को अक्षय शांति के एक स्रोत में बदलने के अपने लक्ष्य के साथ-साथ धर्म के पुनरुत्थान का कार्य भी आरम्भ कर दिया है।

एक दूसरा अनुग्रह हमारी राह देख रहा था। स्वयं कृष्ण के साथ में नवानगर की राजमाता ने द्वारका चलने का प्रस्ताव रक्खा। शीघ्र ही भक्तों का एक दल मोटर-कारों से वहाँ चलने के लिए तैयार हुआ और हम लोग निकल पड़े। ईश्वराम्मा अयोध्या हो आयी थीं। वे मथुरा और वृन्दावन के पौराणिक यमुना तटों पर भी चल चुकी थीं। अब वे कथाओं, गीतों और नाटकों में वर्णित और अपने हृदय को प्रिय लगने वाली द्वारका नगरी की ओर बढ़ी चली जा रही थी। स्वामी के आगमन का समाचार सुनकर द्वारका स्थित भगवान कृष्ण का विशाल मंदिर दर्शनार्थियों से खचाखच भरा था। हम लोग थोड़ा विलम्ब से पहुँचे थे। इसलिये हम उस मंदिर के बाहरी द्वार से आगे को एक कदम भी न जा सके। हमने ईश्वराम्मा और उनके साथ के छोटे से भक्त-दल को मन्दिर के अन्दर से बाहर निकलते देखा। वे अत्यन्त प्रसन्न थीं कि उन्हें मन्दिर के गर्भ गृह में स्थित भगवान श्री कृष्ण की मूर्ति के दर्शन उस के चारों ओर लगे हुए बल्यों के प्रकाश में भली-भाँति हो सके।

स्वामी ने मंदिर के गर्भ गृह में जहाँ मूर्ति स्थापित थी, जाने का प्रस्ताव नहीं किया। वे जानते थे कि इससे लोगों के भीड़ में कुचले जाने का भय था। इतना ही नहीं, बल्कि अन्दर भीड़ में जो लोग फँसे थे और दर्शनों के लिए संघर्ष कर रहे थे, उनके दम घुटन का भी भय था। वे एक खुले हुए चौकोर स्थान पर खड़े हो गए, जिससे धीरे-धीरे भीड़ का दबाव कम हो जाए, क्योंकि दर्शकगण पंक्तियों में निकल-निकल कर उनके 'चारों ओर एकत्र हो रहे थे। बाद में वे मीठापुर गए। अपरान्ह में स्वामी वहाँ से वापस आ गए और ईश्वराम्मा को मोटर कार के शीशे से एक बार पुनः द्वारकाधीश के मन्दिर की झलक मिली। एक बार पुनः उनकी इच्छा मन्दिर में जाकर कृष्ण के दर्शन की हुई। प्रातः काल भीड़ की धक्का-मुक्की में वे जी भर कर मूर्ति के दर्शन न कर सकी थीं। किन्तु स्वामी की इच्छा के विरुद्ध वह कैसे पूरी होती ?

कारें तेजी से निकल गयीं। लगभग आध घण्टे बाद स्वामी ने ध्यान दिया कि दौड़ती हुई कारों के समानान्तर दाहिनी ओर दूर तक जाने वाला जल का बाँध था। उसके आगे उन्हें स्मरण आया- अरब सागर का वह भाग था, जिसमें द्वारकापुरी डूब गयी थी। गाडियाँ रुक गयीं। हम लोग बालू बांध पर चढ़कर स्वामी के पीछे-पीछे महासागर की ओर चलने लगे। स्वामी समुद्र तट पर जाकर रुक गए तथा कुछ समय जल की लहरों को स्पर्श कर उनसे खेलते रहे। जब उस अथाह जल राशि की चंचल-लहरें चंचल शुिओं की भाँति अकस्मात आतीं और तट पर टकराकर हमें जल तथा फेन की पिचकारी से सिर से पैर तक भिगोकर लौट जातीं, तो हमें उस

असहाय अवस्था में देखकर स्वामी आनन्दित होते। बाद में हम वहीं सिकता राशि पर उनके चारों ओर बैठ गए। उनकी आज्ञा पाकर हमने वहाँ एक बालू का ऊँचा सा ढेर लगाया। उन्होंने अपने संकल्प से बालू के उन कणों को शक्कर में, विभूति में और ऐसी रुपहली तश्तरियों में बदल दिया, जिनमें उन विभिन्न देवी-देवताओं की आकृतियाँ बनी हुई थीं, जिनकी उस दल के सदस्य पूजा करते थे।

“तुम लोगों में से कितनों ने आज प्रातःकाल मंदिर में दर्शन नहीं किये ?” स्वामी ने पूछा। लगभग एक दर्जन हाथ ऊपर उठे। ईश्वराम्मा बोलीं, “स्वामी, मै पूर्ण रूप से दर्शन नहीं कर सकी।” स्वामी बोले, “किन्तु तुम तो सबसे पहले जाने वालों में थीं।” “हाँ, किन्तु वहाँ बड़ी धक्का-मुक्की थी” उन्होंने उत्तर दिया, “मैं तो केवल अनत प्रकोष्ठ से उठता हुआ धूप और अगरबत्तियों का धुआँ ही देख सकी।” स्वामी ने आश्वासन देते हुए कहा, “कोई बात नहीं। तुम उनको (कृष्ण की मूर्ति को) जितने समय तक चाहो देख सकती हो।" उन्होंने उस बालू के ढेर के शिखर को चौरस बनाया और उंगली से उस पर एक आकृति बना दी। “देखो! वह यहाँ है।” स्वामी ने घोषणा की और ठीक उनके द्वारा खींची हुई आकृतियों के नीचे से भगवान कृष्ण की लगभग अठारह इंच ऊँची एक स्वर्ण मूर्ति प्रकट हो गयी।

हम आश्चर्य से देखते रह गये। माँ अपने को न रोक सकी और मुख से विस्मयादिबोधक शब्द निकल पड़े। स्वामी को इतना स्वर्ण उनके कहाँ से मिला और वे उसे इतनी जल्दी कैसे पिघलाकर मूर्ति में ढाल सके ?

मूर्ति जिन रत्नाभूषणों से विभूषित है, वे भी वहीं है जिनका वर्णन श्रीमद्भागवत के पदों में लिखा है। स्वामी ने राजमाता के हाथों में वह स्वर्ण मूर्ति रख दी और आगे की यात्रा के लिए उठकर खड़े हो गये। किन्तु ईश्वराम्मा उस पावन समुद्र तट से विभिन्न आकृतियों और

रंगों के शंख और घोंघे उठाने में व्यस्त थीं। अपनी साड़ी के एक खूंट में जल्दी से लगभग एक दर्जन शंख बाँधते हुए वे बोली, "बच्चे खेलने के लिए इन्हें पाकर कितने आनन्दित होंगे?" मिठाई और खिलौने देकर बच्चों को आनन्दित करना उन्हें अच्छा लगता था और यदि समय होता तो और भी शंख इकट्ठे करती; क्योंकि उनका शिशु-परिवार बहुत बड़ा था। किन्तु उस समय तक स्वामी बाँध की दीवार पर पहुँचकर चलने के लिए खड़े थे। वे उनसे मिलने के लिए शीघ्रता से बढ़ीं, किन्तु प्रयत्न करने पर भी मुलायम बालू में पैर धँस जाते और जल्दी न बढ़ते थे।

स्वामी का साथ पकड़ने में ईश्वराम्मा के उत्साह का एक और भी कारण था। वे बम्बई से ऐतिहासिक शिव मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार का उद्घाटन करने के लिए सोमनाथ जाने वाले थे। शताब्दियों की उपेक्षा के बाद स्वतंत्र भारत के निष्ठावान् हिन्दुओं ने उसका जीर्णोद्धार कराकर उसे पुनः शक्तिमान बनाया था। जिन लोगों ने मंदिर के पुनरुद्धार का संकल्प किया था, उनमें नवानगर के जाम साहब प्रमुख थे। वे उस स्वप्न के साकार होने तक जीवित रहे। मंदिर उन भग्नावशेषों के ऊपर एक बार पुनः अपनी प्राचीन शालीनता और भव्यता के साथ उठकर खड़ा हो गया- उस गरिमा

के साथ जिसके कारण देश के कोने-कोने से जिज्ञासु और दर्शनार्थी शताब्दियों पहले वहाँ एकत्र होते थे। जाम साहब ने अपने पैसे से मुख्य मंदिर के प्रवेश द्वार के ऊपर एक आकर्षक और प्रभावशाली गोपूर बनवाने की योजना बनायी थी। स्थापत्य कला की दृष्टि से वह एक अमूल्य रत्न था। उन्होंने उसके उद्घाटन के लिए भगवान श्री सत्य साई बाबा को आमंत्रित किया था। किन्तु उद्घाटन के पूर्व ही उनका स्वर्गवास हो गया। राजमाता ने भगवान से यह विनय की कि वे उनके पति की अंतिम इच्छा को पूर्ण करें,जिसको स्वामी ने उदारता पूर्वक स्वीकार कर लिया।

स्वामी के साथ का यह दल कुछ दिनों राजमाता के साथ जामनगर के राज महल में ठहरा। सोमनाथ में ईश्वराम्मा मंदिर के गर्भगृह की सीढ़ियों पर राजमाता के बगल में खड़ी थी। स्वामी ने चार फीट ऊँची उस शिवलिंग की मूर्ति के ऊपर अपनी हथेली फैलायी और उससे स्वर्ण पुष्पों की झड़ी लग गयी। नवीं शताब्दी से लेकर समय-समय पर उत्तर-पश्चिम से आने वाले बर्बर आक्रमणकारियों की सेनाओं ने सोमनाथ के मंदिर पर लगातार आक्रमण किए। इन अवसरों पर धर्मांध मूर्तिभंजकों ने न केवल मूर्तियों का खंडन किया, वरन् वहाँ से हीरे-जवाहरात को लूट कर ले जाते समय वे उन पवित्र शिव लिंगों को भी ले जाना न भूले, जिन्होंने उन मूर्ति भंजक नास्तिकों के मन में भी श्रद्धा का भाव उत्पन्न कर दिया था। सोमनाथ की यात्रा आरम्भ करने के पहले ही जब हम लोग जामनगर में थे, स्वामी ने उन लालची आक्रमण कारियों के दलों की कहानियाँ भक्तों को सुना रक्खी थीं। किन्तु उसके बहुत समय बाद उन्होंने इस सत्य का उद्घाटन किया

कि अपनी धर्मान्धता के मद में चूर बड़े गर्व से वे जिन शिवलिंगों को वहाँ से उखाड़ कर ले गए थे, वे चिरंतन काल से चली आने वाली भक्तों की श्रद्धा-सरिता के वास्तविक पात्र असली शिवलिंग न थे। मंदिर के गर्भगृह के बीचों-बीच में बहुत अधिक गहराई पर लाखों वर्ष पूर्व एक यशस्वी ऋषि ने एलाबास्टर के बने हुए एक ज्योतिर्लिंग की स्थापना की थी, जिसका न तो किसी को पता था और न उसे कोई क्षति पहुँचा सका। उसके स्थान पर जो ऊपरी भाग में लम्बे और बेलनाकार प्रस्तर शिवलिंग स्थित थे, उन्हें ही हटाया गया और पुनर्स्थापित किया गया।

इस महान सत्य के उद्घाटन का क्षण आ पहुंचा था। स्वामी ने कहा कि अब इस मंदिर को किसी प्रकार की हानि का भय नहीं है। अतः अब वे भक्तों को उस मूल ज्योतिर्लिंग के दर्शन करा रहे हैं, जिससे प्रसारित दिव्य शक्ति की कम्पन लहरियाँ आदि शक्ति का स्रोत रही है। उनके इस 'कथन के साथ ही दिव्य हाथ एक वर्तुलाकार ढंग से घूमा और उनके हाथ में नेत्रों को चकाचौंध कर देने वाला एक ज्योतिर्लिंग उपस्थित था। “अंतरिक्षी प्रकाश का यह पुरातन लिंग सबको दर्शन देकर कृतार्थ करे", स्वामी ने कहा। उनके दुबारा हाथ घुमाने पर स्वर्ण निर्मित एक लिंगासन (जिलहरी) उत्पन्न हुई। वह माप में इतनी ठीक थी कि स्वामी द्वारा भूमि के गर्भ से निकाला हुआ वह ज्योतिर्लिंग उसमें युगमता से फिट हो जाता था। माँ के नेत्रों हर्ष के आँसू निकल पड़े। इस घटना के कुछ समय पश्चात् मेरे साथ अपने परम संतोष के भाव का वर्णन करते हुए उन्होंने कहा, "कितना रोमांचक दृश्य था। मैं तो यह विश्वास ही न कर सकती थी कि मैं जीवित

हूँ। मैं यह सोच-सोचकर आश्चर्य में रह जाती थी कि इस दिव्य और स्वर्गीय आनन्द को भोगने के पश्चात् मैं पुनः उस पारिवारिक जीवन में, जिससे मैं अभी भी बँधी हूँ, कैसे प्रवेश कर सकूँगी ?"

सन् 1970 के दिसम्बर मास में भगवान गोआ गये। उस यात्रा में तीन अन्य महिलाओं के अतिरिक्त जून शुइलर भी बाबा के साथ थीं। 8 दिसम्बर को आश्चर्य में डालने वाली जो घटनायें घटित हुई, उनका वर्णन शुइलर ने इन शब्दों में किया है, "दोपहर के भोजन के समय बाबा हमारे साथ नहीं थे। हर वस्तु उदास उदास सी दिखाई पड़ रही थी। सभी को यह आश्चर्य हो रहा था कि स्वामी आए क्यों नहीं? मुझे यह ज्ञात था कि हमारे मध्य ऐसे भी लोग हैं, जिन्हें क्या घटित हो रहा है, इसकी जानकारी थी। किन्तु उस घटना से उन्हें इतना कष्ट था कि वे उसके विषय में कुछ कहना न चाहते थे। बाबा चाहे प्रशांति निलयम् में हों, अथवा कहीं बाहर हों; किन्तु अपने कमरे से उनका न निकलना एक असाधारण बात थी। प्रातः काल बड़े सुबह से लेकर काफी रात बीतने तक वे भक्तों को अपने दर्शन का पूर्ण लाभ प्रदान करते हैं। मुझे यह भी मालूम था कि बाबा एक सार्वजनिक सभा में प्रवचन देने वाले हैं। हम लोग गिरजाघर जाते समय मार्ग में उस मैदान को पार करके ही गए थे, जहाँ सभा होने वाली थी। हमने यह भी देखा था कि सभा के लिए घोषित समय से घंटों पहले ही वहाँ श्रोताओं का आना आरम्भ

हो गया था। " बाबा ने एकत्र जनों को निराश क्यों किया? अब स्वामी ही इस कथा का शेष वर्णन कर इस प्रश्न का उत्तर देंगे—“सात दिसम्बर की रात को कुछ विचित्र घटनायें हुई। मैं न तो बिस्तर पर बैठ सकता था, न लेट सकता था, न करवट ही ले सकता था। न ही मैं बोल सकता था और न किसी को बुला सकता था, क्योंकि बुलाने का अर्थ होता लोगों में चिन्ता और परेशानी उत्पन्न करना, जो मैं न चाहता था। अतः में चुपचाप पड़ा रहा, जिससे लोगों को लगे कि मैं ठीक हूँ।" प्रातःकाल होते ही लेफटिनेंट गवर्नर नकुल सेन की आज्ञा से, (स्वामी उनके अतिथि थे) विशेषज्ञ डाक्टरों का एक दल काबो राज-निवास जहाँ हम ठहरे थे, आया। उन सबने परीक्षण के बाद घोषणा की 'भीषण पैराकॉलिक एपेंडिसाइटस'। साथ ही यह भी कहा कि रोगी किसी भी प्रकार के ऑपरेशन के लिए सहमत नहीं है।

मुझे उस आयोजित सभा में बोलने के लिए भेजा गया, ताकि मैं उपस्थित जन समुदाय को आश्वासन दे दूँ कि भगवान तीन दिनों के बाद उन्हें सम्बोधित करेंगे। मैंने उन्हें इस घटना के पूर्व बाबा के लकवे के आक्रमण तथा उससे स्वयं बिना किसी उपचार के पूर्ण स्वस्थ्य होने की घटना का वर्णन श्रोताओं के सम्मुख किया और उन्हें यह आश्वासन दिया कि गंभीर एपेंडिसाइटिस की यह बीमारी भी, जिसका उनसे कोई सम्बन्ध नहीं है ओर जो केवल उन्होंने किसी भक्त की रक्षा के लिए ही ओढ़ी है. उतने ही रहस्यात्मक ढंग से गायब हो जाएगी, जितने आकस्मिक ढंग से वह आयी है। एपेंडिसाइटिस की बीमारी सुनकर संसार स्तम्भित रह गया।

यह अविश्वसनीय समाचार न केवल देश के कोने-कोने में वरन् समुद्र पार देशों में भी फैल गया। अनेक राष्ट्रीय दैनिक समाचार पत्रों में प्रातः कालीन संस्करणों में यह समाचार प्रकाशित हुआ, जिसे पढ़ कर लाखों हृदयों में चिन्ता, हताशा और दुःख का प्रादुर्भाव हुआ और भगवान के स्वास्थ्य से सम्बन्धित प्रार्थनाओं, अनुनय, संदेह, अस्वीकृति, आशा तथा रुदन का संदेश लेकर तार ओर टेलीफोनों का ताँता लग गया। अनेक लोगों ने स्वामी की इस बीमारी को अपने ऊपर ले लेने का तथा कई व्यक्तियों ने इसकी शांति के लिए अनुष्ठान करने की प्रतिज्ञा की।

इस बार ईश्वराम्मा पुट्टापर्ती में थीं। जब उनके पास इस नये संकट से उत्पन्न निराशा की लहरें समाचार बनकर फैलते-फैलते पहुँची तो उन्होंने गुरु पूर्णिमा के अवसर पर होने वाले चमत्कार का स्मरण कर अपने को सांत्वना दी यह सोचकर कि यह बीमारी भी स्वामी की लीला का एक अंग ही है। जिस दिन स्वामी ने अपने को लकवे के आक्रमण से पूर्णतया मुक्त किया था, उसी संध्या को स्वामी ने भक्तों को आश्वासन दिया था कि उन्हें कभी कुछ नहीं तो सकता। स्वामी का वह आश्वासन माँ के हृदय में फिर गूँज उठा। "इस शरीर को बीमारी कभी नहीं लग सकती। वह तो इसके पास तक नहीं फटक सकती। यदि किसी समय यह आए भी तो विश्वास रक्खों कि वह किसी दूसरे की बीमारी है, मेरी नहीं। और जैसे वह आती है, ठीक उसी प्रकार चली भी जाती है। मुझे केवल संकल्प करना पड़ता है। मेरा उससे कोई सम्पर्क नहीं होता। न मैं उससे प्रभावित होता हूँ।" अन्य लोगों के मन में जो चिन्ता और उलझन होती, उसे शांत करने के लिए

ईश्वराम्मा अत्यन्त साहस के काम लेतीं, किन्तु जब अकेली होती तो अपने दुःख को न रोक पाती और चुप-चाप रोतीं तथा दूसरों से मिलने का साहस भी न करती कि कहीं लोग और बुरी खबर भी न लायें।

इसी बीच में स्वामी ने मवाद से भरा हुआ वह मांसपिंड, जिसे सर्जन लोग ऑपरेशन से निकालना चाहते थे, एक क्षण में निकाल फेंका और अपने वचनानुसार दस दिसम्बर की संध्या को उपस्थित जनसमुदाय क सम्बोधित किया। लेफ्टीनेन्ट गवर्नर नकुल सेन ने चमत्कारों के चमत्कार उस घटना का वर्णन इन शब्दों में किया है, "भगवान भक्तों के अन्तर्मन में निवास करते हैं। ऐसा कुछ भी नहीं है, जिसे वे भक्तों के लिए न करें। उन्होंने अपने भक्तों की बीमारी अपने ऊपर लेकर स्वयं इतना कष्ट केवल इसलिए उठाया कि यदि वे उन भक्तों को इस बीमारी का सामना करने के लिए छोड़ देते तो निश्चय ही उनकी मृत्यु हो जाती। हम लोगों ने भगवान की केवल एक लीला ही देखी है, जिसने गोवा के विशेषज्ञ डाक्टरों को अत्यन्त विस्मय में डाल दिया है। हमारे मन में अब इस संदेह के लिए कहीं कोई स्थान नहीं रह जाता है कि इस पृथ्वी पर ऐसा कहीं कुछ भी नहीं है जो भगवान श्री सत्य साई बाबा के संकल्प से परे हो।

"ग्यारह दिसम्बर को मुझे बुलाकर स्वामी ने मुझे पुट्टापर्ती जाने के लिए और जो कुछ भी रहस्य गोवा में उसे प्रशांति निलयम् के निवासियों को बताने के लिए कहा। 'वे लोग वहाँ अत्यधिक घबराये होंगे। यहाँ से पहुँचने वाली तरह-तरह की अफवाहों ने उन्हें अधीर बना दिया होगा, स्वामी ने

कहा। जब मैं थोड़ी देर के लिए हिचकिचाया और आज्ञा की स्वीकृति में थोड़ी देर सी लगी तो स्वामी बोले, 'यदि कोई और जाता है तो वहाँ के निवासियों को विशेषकर माँ को, उनके कहने पर भरोसा न होगा। किन्तु उन्हें यह विश्वास है कि जब तक मैं एपेंडिसाइटिस से, जिसे समाचार पत्रों ने बढ़ा-चढ़ाकर घातक बताया है, पूर्ण स्वस्थ नहीं हो जाता, तुम मुझे किसी भी दशा में छोड़कर न जाओगे।' कार्यक्रम निश्चित हो गया। मैं जितनी शीघ्र पुट्टापर्ती पहुँच सकता था पहुँचा और पहुँचकर एक घण्टे तक ईश्वराम्मा के पास रहा और स्वामी के पूर्ण स्वस्थ होने के विषय में उन्हें आश्वासन दिया। इनके पश्चात् मैं प्रार्थना भवन में पहुँचा और उपस्थित भक्तों के समक्ष काबो राज निवास गोवा में एक-एक घण्टे में घटित होने वाली बीमारी के समय तथा उसके बाद की घटनाओं का वर्णन किया। ईश्वराम्मा ने अनुभव किया कि स्वामी जब भी किसी क्षेत्र में जाकर और वहाँ से वापस आते हैं तो उस क्षेत्र से सैकड़ों व्यक्ति स्वामी के दर्शनों

के लिए पुट्टापर्ती आने लगते हैं। उन्होंने यह भी देखा कि चाहे नीलगिरि हो, अथवा हिमाचल प्रदेश, महाराष्ट्र या पंजाब-भक्तों का ताँता लगा ही रहता। धीरे-धीरे वे भक्तों की वेष-भूषा एवं शिष्टाचार की जो भिन्नता थी, उसे पहचानने लगीं और शीघ्र ही जब महिलायें उनके कमरे में प्रवेश करती और उनके चरणस्पर्श करतीं तो वे उनकी वेष-भूषा, सम्मान में बोले हुए शब्दों के उच्चारण, उनके नमस्ते अथवा नमस्कार करने की भिन्न-भिन्न शैलियों और मुद्राओं से यह जान जाती कि वे किस प्रदेश की रहने वाली है। वे मात्र सामान्य प्रेक्षक न थीं, वरन् जो महिलायें उनका आशीष

लेकर पुट्टापर्ती में प्राप्त अपने पुण्यों में वृद्धि करने के लिए उनके पास आती, उनके क्यों और कब आदि प्रश्नों से उनके मन्तव्य को जानने और सीखने में सदैव तत्पर रहतीं।

प्रशांति निलयम् रातोंरात एक सर्व-धर्म मंदिर के रूप में प्रतिष्ठित हो गया था। चाँदी के द्वार और छज्जे पर गुंबदों सहित सुनहली चित्रकारी, सभी देवताओं की स्थापित मूर्तियाँ तथा केन्द्र में पूजा-गृह जहाँ सनातन धर्म, पारसी भाइयों का जोराष्ट्र धर्म, बौद्ध धर्म, ईसाई तथा इस्लाम धर्म के प्रतीक खुदे हुए थे. वहाँ ऐसा ही वातावरण उपस्थित करते थे। ईश्वराम्मा ने अभी तक किसी भी पूजा स्थल पर जहाँ-जहाँ वे गयी थीं, हिन्दू धर्म से इतर किसी अन्य धर्म के प्रतीक नहीं देखे थे। कोई भी मस्जिद अथवा गिरजाघर ऐसा नहीं था, जहाँ अन्य धर्मों का इतना सम्मान किया गया हो। उन्हें यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि स्वामी ने सभी धर्मों की जड़ों को पोषित करने के लिए अवतार लिया है हिन्दू धर्म के अनुयायियों के लिए जो लक्ष्य निर्धारित कर दिए गए हैं, वहाँ तक पहुँचने के लिए, मुसलमान के लिए सच्चा मुसलमान बनने के लिए, ईसाई के लिए सच्चा ईसाई बनने का मार्ग स्वामी ने खोल दिया, ताकि वे सब प्रकाश और प्रेम के उच्च धरातल पर पहुँचकर अपने सारे मतभेद भुलाकर उस एक परम सत्ता में लीन हो जायें।

ईश्वराम्मा को प्रार्थना भवन में ईसाई तथा मुस्लिम भक्तों को प्रार्थना में बैठे देखकर अथवा अपने बालकों को गोद में लेकर उनके पास उनका

आशीर्वाद लेने के लिए आता देखकर हार्दिक प्रसन्नता होती। उन्होंने कुछ गेरुए वस्त्र धारण किए हुए बौद्ध सन्यासियों को भी देखा जो श्री लंका से आए थे। उनकी दृष्टि में श्रीलंका आज भी उन तीन राज्यों में से एक थी जिसका उल्लेख अयोध्या तथा किष्किंधा के साथ-साथ रामायण में हैं। यह जानकर कि रामायण की लंका अब वह नहीं रही और भगवान बुद्ध की दिव्य मुस्कान के प्रकाश से वह आलोकित हो उठी है, तब उन्हें परम संतोष हुआ।

शीघ्र ही पुट्टापर्ती में प्रत्येक दिन एक पर्व-सा गया। ईश्वराम्मा को एक क्षण का अवकाश न था। निलयम् में प्रति दिन ऐसे कार्यक्रम होते थे, जो प्रेरणा और अंतर्जागरण, महिमा-गान तथा श्रद्धा के स्रोत थे। वे इन कार्यक्रमों से प्रभावित हो उनके ज्वार में बहने लगी। आठ फीट लम्बा तथा पाँच फीट चौड़ा जो भजन कक्ष सन् 1942 में पर्याप्त समझा जाता था, अब नितान्त अपर्याप्त था। अब उसके समाने एक पक्का रास्ता बना दिया गया, जिस पर निरन्तर भक्तों का प्रवाह बहा करता था। इसके पश्चात् गाँव के कोने पर स्थित भजन मंडली स्थल पर निर्मित प्रार्थना कक्ष भी छोटा पड़ने लगा और उसे छोड़ देना पड़ा। यद्यपि यह अठारह फीट लम्बा और आठ फीट चौड़ा था। भक्तों की बढ़ती संख्या को देखकर उसके ही बगल में दीवालें उठाकर एक चालीस फीट लम्बा और दस फीट चौड़ा शेड तैयार किया गया। सन् 1950 में प्रशांति निलयम् का उद्घाटन हुआ। इसके मुख्य मंदिर में जो प्रार्थना भवन था, वह सौ फीट लम्बा और बीस फीट चौड़ा था। किन्तु कालांतर में यह भी छोटा पड़ने लगा। इसके पश्चात् एक चालीस

फीट लम्बे तथा पच्चीस फीट चौड़ी जगह को घेरता हुआ एक दीवारों से घिरा छप्पर खड़ा किया गया। किन्तु जब यह भी छोटा पड़ने लगा तो इसके स्थान पर उत्तर की ओर एक अन्य शेड खड़ा किया गया। इस निरन्तर बढ़ते हुए विस्तार को देखकर ईश्वराम्मा आश्चर्य से स्तम्भित रह गयीं। हर बार जब एक नया हाल या शेड तैयार किया जाता, उनके मन में यही प्रश्न उठता, "भला यह कितने दिनों काम देगा ?" पर इसका कोई उत्तर न था। उन्हें बताया गया कि बम्बई, मद्रास तथा अन्य स्थानों पर जो सभायें होती थीं, उनमें हजारों की संख्या में भक्त उपस्थित होते थे। वे विश्व के कोने-कोने से आते थे। अन्त में जाकर स्वामी के केवल इस कथन में ही उनकी जिज्ञासा का समाधान होता था, "किसी समय भक्तों की जो संख्या एकत्र होगी उस के सभाकक्ष के लिए केवल आकाश ही छत का काम देगा।"

भक्त-गण स्वामी की उपस्थिति से उत्साहित होकर एक नयी शक्ति और स्फूर्ति लेकर लौटते। उनके हृदयों में जलने वाले प्रेम के दीपक का प्रकाश अब पहले से भी उज्ज्वल था, क्योंकि इन दीपकों की बत्तियाँ स्वामी द्वारा काट-छाँट कर प्रकाश के अनुकूल बनायी गयी थीं और उनमें आशीर्वाद का स्नेह भरा गया था। माँ ने देखा कि सैकड़ों की संख्या में सेवा दल सदस्य पुरुष और महिलायें-सेवा भाव से वहाँ उपस्थित थे। उन्हीं को प्रशांति निलयम् तथा उसके आसपास के क्षेत्र को स्वच्छ, सुरक्षित और शांति रखने का दायित्व सौंपा गया था और इस प्रकार उन्हें साधना के मार्ग पर बढ़ने का एक स्वर्ण अवसर प्रदान किया गया था। वे बहुधा अपनी

साथिनों से पूछत, “भला इस गाँव के वासी, हम लोग इस त्याग और सेवा के पात्र कहाँ है ?"

---

16. आवाह्न और आगमन

ईश्वराम्मा ने इसे शीघ्र ही जान लिया कि स्वामी माताओं और बालकों को, छात्रों और शिक्षकों को एकत्र करने में विशेष रुचि रखते हैं। प्रतिभाशाली बालक और बालिकाओं को प्रोत्साहित करने में स्वामी की अपूर्व रुचि देखकर प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्होंने आर्थिक दृष्टि से गरीब कुछ भक्तों के बालकों पर स्वयं बड़ी आशायें लगा रखी थीं और वे गुप्त रूप से उनको प्रति मास कुछ रुपया भेजा करती थीं, ताकि वे अपनी उच्च शिक्षा का खर्च चला सकें। यह ज्ञात था; क्योंकि मैं उन दिनों प्रशांति निलयम् के पोस्ट मास्टर का काम कर रहा था। अतः वे इसका पता लगाने मेरे ही पास आती थीं कि रुपये पाकर छात्रों द्वारा किए हुए हस्ताक्षरों की रसीदें डाकखानें में आ गई है या नहीं।

सन् 1972 में वृन्दावन व्हाइट फील्ड में भारत के विभिन्न राज्यों के कॉलेजों से चुने गए आठ सौ से अधिक लड़के-लड़कियों का एक मास का शिविर आयोजित किया गया। ईश्वराम्मा को इसका पता चला तो उन्होंने उन तीस दिनों स्वयं भी वृन्दावन में रहने की इच्छा प्रकट की। प्रशांत निलयम् में रहने वाली अनेक भक्त महिलाओं ने रसोई घर तथा स्टोर्स का कार्य सम्भालने के लिए अपनी सेवायें अर्पित कीं। ईश्वराम्मा ने स्वामी के बंगले के नीचे वाले भाग में मैंनेजर तथा अपने एक नाती के परिवार के सदस्यों के साथ रहना निश्चित किया।

विद्यार्थियों को शिक्षकों के साथ जो उनकी देख-रेख करने आए थे, छात्रावास के बड़े कमरों में ठहरा दिया गया। भारतीय संस्कृति और आध्यात्मिकता के ऊपर जो भाषण दिए जाने वाले थे, उनके लिए स्वामी के बंगले के निकट एक अस्थायी हॉल की व्यवस्था की गई। छात्रों के लिए एक व्यस्त दैनिक कार्यक्रम था। वे प्रातः उठकर ओंकारम् भजते थे, तत्पश्चात् नगर संकीर्तन, योगासन, भजन, ग्रामीण सेवा आदि कार्यक्रम थे। अपरान्ह में गूढ प्रश्न तथा पहेलियाँ और भाषण प्रतियोगिता आदि के अधिवेशन होते थे। स्वामी उन छात्रों के स्वास्थ्य तथा सुविधाओं आदि का विशेष ध्यान रखते ओर उन्हें अपना अनुग्रह प्रदान करते। इसके साथ ही पूरे मास सांयकाल उनको प्रवचन देते। ईश्वराम्मा को उस समस्त वातावरण को देखकर ऐसा लगा मानों वे सरस्वती के गरिमामय विशाल मंदिर में होने वाले नए उत्सव के अवसर पर अन्य लोगों के साथ स्वयं भी उस अपूर्व आनन्द और आह्लाद का आस्वादन कर रही हों।

शिविर के ग्यारहवें अथवा बारहवें दिन वे शिरडी माँ (वे अस्सी वर्षीय महिला जिन्होंने शिरडी साई बाबा के दर्शन किये थे और उनकी पूजा भी की थी) को अपना एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अनुभव बताने के लिए उनके साथ हो लीं। जिस रूप में पेड्डा बोट्टु (शिरडी माँ का दूसरा नाम) ने वह अनुभव ईश्वराम्मा से सुना था, उसी रूप में उन्होंने मुझे वह सुनाया "पेड्डा बोट्टु," ईश्वराम्मा ने मुझसे कहा, "मैं तुम्हें एक रहस्य बता रही हूँ जो मेरे साथ घटित हुआ। पर यह किसी से बतलाना नहीं।" मैं उनके और निकट खिसककर बैठ गई और बोली, "बताओ क्या बात है?" "स्वामी तो परमात्मा हैं।" उन्होंने फुसफुसाकर कहा। मुझे हँसी आ गई। बोलीं, "हँसती क्यों हो?" "न, न, मैं तुम्हारे ऊपर नहीं हँसती। मुझे तो इस बात की। प्रसन्नता है कि अन्त में आकर तुम्हें इसका अनुभव तो हुआ। अच्छा पर बताओं तो कि तुम्हें यह पता कैसे चला ?" मैंने पूछा । "तुम जानती हो मुझे चार दिन से लगातार बड़ा तेज बुखार रहता है। उस समय स्वामी मेरे पास आये थे।" मैंने पूछा, "स्वप्न में आए थे?" "नहीं, मैं जब बिस्तर पर बड़ी बेचैनी के साथ करवटें बदल रही थी, उस समय वे सचमुख आए थे और आते ही बोले, 'अम्मा, कैसा लग रहा है?' मैंने उनकी ओर देखा और बोली, 'पूरा शरीर दुःख रहा है, बड़ा कष्ट है।' तब मैं तुम्हें क्या बताऊ? वह इस रूप में (सत्य) न थे जैसा हम और तुम उन्हें देखते हैं। वे तो मुकुट पहने और धनुष लिए हुए श्री रामचन्द्र थे। मैंने हाथ जोड़कर ऊपर उठाये और बिस्तर से उठकर बाहर बैठने का प्रयत्न किया। किन्तु कुछ ही क्षणों

में वे फिर स्वामी के रूप में बदल गए, मुझे विभूति प्रसाद दिया और बोले, 'बुखार उतर जाएगा' और इतना कहकर चले गए।" "सचमुच तुम्हें परमेश्वर का आशीर्वाद मिला है। कितना दुर्लभ भाग्य है तुम्हारा।" मैं बोली। "हममें से आज तक किसी को जागृत अवस्था में साईराम के दर्शन श्री रामचन्द्र मूर्ति के रूप में नहीं हुए।" इस प्रकार शिरडी माँ ने अपनी वार्ता समाप्त की।

'यह दिव्य-दर्शन उस पवित्र किरण के परम ज्योति में जिससे उसकी उत्पत्ति हुई थी, लय होने की सर्वोचित पूर्व सूचना थी। ईश्वराम्मा की स्मृति में समाये जाने वाले ६ मई के 'ईश्वराम्मा दिवस के अवसर पर परम ज्योति स्वरूप भगवान बाबा ने स्वयं ही 6 मई 1972 (जो माँ के पार्थिव जीवन का अन्तिम दिवस था) को होने वाली घटनाओं का उल्लेख किया। स्वामी ने कहा, "उनके दिवंगत होने के एक दिन पहले की बात है। सामान्य वार्त्तालाप चल रहा था। उसी के बीच मैंने एकाएक पूछा, 'बताओ। अभी और कोई इच्छा शेष है?' वे बोलीं, 'मैं सारे मंदिरों की तीर्थ यात्रा कर चुकी हूँ। मैंने सबसे बड़े मन्दिर के और उसमें रहने वाले परमेश्वर के भी दर्शन पा लिए हैं। मुझे अब किसी वस्तु की इच्छा नहीं है।' किन्तु मुझे ज्ञात था कि उनके मन के किसी कोने में एक छोटी-सी इच्छा छिपी थी। वे अपनी एक पौत्री को उसके जन्म-दिवस पर कुछ उपहार देना चाहती थीं। इसलिए मैंने आग्रह किया कि वे मुझसे पाँच सौ रुपये स्वीकार कर लें, बाजार जायें और उनकी जो इच्छा हो वह खरीद लें। मैंने उन्हें एक

अन्य महिला के साथ बाजार भेज दिया और वे वहाँ से जो चाहती थीं, खरीदकर प्रसन्नता पूर्वक लौटीं।"

माँ के मुक्ति दिवस के सम्बन्ध में अधिक विस्तार से बताते हुए स्वामी ने 6 मई को 1983 में कहा, "आज का दिन ईश्वराम्मा दिवस है। इस दिन की महत्ता यही है कि इसे बाल-दिवस के रूप में मनाया जाता है। उस दिन बालकों को एक आदर्श की याद दिलाई जाती है वह आदर्श जिसे ईश्वराम्मा ने सबके समक्ष रखा था। मृत्यु से कोई बच नहीं सकता। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति का यह लक्ष्य होना चाहिए कि मृत्यु के समय वह परमात्मा का ध्यान और स्मरण करे अथवा अपने मन को पवित्र विचारों से भरे। इस दिन का महत्व बहुत से व्यक्तियों को ज्ञात है। इसी विषय पर कस्तूरी ने भी अभी भाषण दिया है। तेलुगू में एक कहावत है, 'व्यक्ति की सज्जनता का सबसे बड़ा प्रमाण है कि उसकी मृत्यु कैसे होती है?' अन्तिम क्षणों में सच्ची भक्ति का प्रमाण मिलता है। उसके दर्शन होते हैं। ईश्वराम्मा कितनी महान थीं, कितनी सज्जन थीं, इसके विषय में मैं उनके जीवन की एक छोटी-सी घटना का उल्लेख करता हूँ।

"बंगलौर में ग्रीष्मकालीन शिविर चल रहा था। प्रातः काल सात बजे 18 विद्यार्थियों को प्रातःकालीन जलपान दिया जाने वाला था। वे नगर संकीर्तन करने के पश्चात् 6 बजे वापस आए। संकीर्तन की समाप्ति पर मैंने उन्हें दर्शन दिए। इसके बाद मैं स्नान के लिए चला गया। इस बीच ईश्वराम्मा स्नान कर चुकी थीं। उन्होंने सदैव की भाँति प्रसन्नतापूर्वक

कॉफी पी और मन्दिर के बरामदे में बैठ गई। एकाएक स्नानागार की ओर बढ़ते हुए वे जोर से चिल्लाई, 'स्वामी, स्वामी, स्वामी' और मैंने उसी क्षण उत्तर दिया, 'आया, आया।' मेरे आते-आते उन्होंने अपना शरीर छोड़ दिया। सज्जनता और साधुता का इससे बड़ा लक्षण और क्या हो सकता है? उन्हें किसी सेवा-सुश्रूषा की आवश्यकता न पड़ी। बहुत कम लोग ऐसे होंगे जिन्हें मृत्यु के क्षणों में स्वामी का स्मरण होगा। मनुष्य का मन तो साधारणतया किसी एक सांसारिक वस्तु में या दूसरी में - गहनों में अथवा धन-सम्पत्ति में अटका रहता है। वे नीचे से चिल्लाईं, 'स्वामी! स्वामी! स्वामी!' और मैंने उत्तर दिया, 'आता हूँ, आता हूँ।' और बस, वे चली गई। यह मानों गज की पुकार थी। भगवान उस पर अनुग्रह करने और उसे मुक्ति देने के लिए आगे बढ़े, दोनों तारों का मिलन हुआ, और उसी क्षण आत्मा परम तत्व में लीन हो गई।

“यह वह ठोस और यथार्थ परिणति है, जीवन का सार्थक अवसान है, जिसके लिए उसे निरंतर प्रयत्न करना चाहिए। उनकी शैय्या के निकट उस समय उनकी पुत्री वेंकम्मा थी, उनकी नातिन शैलजा थी, किन्तु उन्होंने केवल 'स्वामी' को पुकारा। अंतिम क्षण में ऐसी लगन और इच्छा की उत्पत्ति केवल एक पावन निर्मलता का फल है। यह एक आदर्श और वंदनीय जीवन का लक्षण है। मनुष्य में ऐसी प्रवृत्ति और दृष्टिकोण का उद्भव स्वतः होना चाहिए। उसके लिए किसी बाहरी दबाव की आवश्यकता नहीं। सीखने के लिए यह एक सुन्दर दृष्टाँत है।”

ईश्वराम्मा की मृत्यु के अवसर पर वृंदावन कैम्पस में लगभग एक हजार व्यक्ति थे। भाषण चल रहा था और आठ सौ नवयुवक उसे ध्यान से सुन रहे थे। उसी समय बंगले के प्रवेश द्वार पर तीन कारें आकर रुकीं। उनमें से एक पर उस पावन जननी का पार्थिव शरीर रखा गया। उनकी मुद्रा से परम संतोष और शाँति झलक रही थी। उनकी पुत्रियाँ और नाती-पोते उनके चारों ओर उन्हें घेर कर बैठे थे, जैसा कि वे वर्षों से करते आए थे। और पिछली रात को भी उनके साथ थे। शेष दो मोटर कारों में कुछ चूने हुए व्यक्ति थे, जिन्हें स्वामी ने गाँव में जाकर सबको यह समाचार देने का आदेश दिया था तथा यह भी कहा था कि माँ के बड़े पुत्र शेषमा राजू के निवास स्थान पर उनके पार्थिव शरीर को रखा जाए, ताकि गाँव के लोग अपनी उस माँ को श्रद्धांजलि चढ़ाने पंक्ति बनाकर आ सकें, जिस माँ ने उनके दुःख-सुख, भय और उल्लास के दिनों में सदैव उनका साथ दिया था।

पलक मारते यह समाचार पुट्टापर्ती में फैल गया और समस्त गाँव आँसुओं के सागर में डूब गया। शव पर फूल मालाओं और पुष्पों की श्रद्धांजलियाँ चढ़ाई गईं, जो मानों उपस्थित लोगों की उस दिव्य जननी के प्रति कृतज्ञता की सुगन्ध से भरी थीं। भक्तगण भजन गाते हुए शव के साथ समाधि स्थल तक गए और जब सूर्य पश्चिमी आकाश में धीरे-धीर डूब रहा था, स्वामी के पिता पेड्डा वेंकम्मा राजू की समाधि के बगल में माँ के शव को समाधि में लिटा दिया गया।

व्हाइट फील्ड में सारा कार्यक्रम उसी प्रकार चलता रहा। एक कराह, एक आँसू, वेदना का एक दबा हुआ स्वर भी कहीं से न सुनाई पड़ा। जिस माँ को स्वयं पुत्र ने चुना था, उसके अवसान पर भी कहीं कुछ नहीं। स्वामी बिल्कुल अपने स्वाभाविक रूप में थे प्रेम के जीते-जागते अवतार, सदैव सबको क्षमा करने, प्रेम और आशीष देने के लिए उत्सुक । किन्तु जब दोपहर हुई तो वहाँ उपस्थित महिलाओं के चेहरों पर बँगले के नीचे वाले कमरों की रिक्तता ने एक गहरी उदासी का परदा डाल दिया। लोगों ने इसे देखा, पूछा और उन्हें उसका कारण समझा दिया गया। यह दुःखद समाचार कि ईश्वराम्मा के जीवन-दीप की कर्पूरी शिखा बुझ गई है और चारों ओर फैल गया तथा सहस्त्रों हृदय शोकसागर में मग्न हो गए।

इतिहास के पृष्ठों पर 6 मई का दिन ईश्वराम्मा-दिवस के रूप में लिख दिया गया। सम्पूर्ण विश्व में एक सप्ताह के खेल-कूद और क्रीड़ाओं के बाद इस दिन पुरस्कार वितरण आदि तथा अन्य प्रेरणावर्धक कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। पुट्टापर्ती में स्थापित ईश्वराम्मा हाई स्कूल बालकों के प्रति, माँ के स्थाई प्रेम तथा उनकी प्रतिमाओं, कौशलों ओर उनमें दिव्यत्व के भाव के स्फुरण के लिए माँ की इच्छा तथा प्रयत्नों का चिरन्तन स्मृति-चिन्ह है।

---

17. विजय-प्राप्ति

स्वामी ने अमेरिकन नाटककार ऑर्नल्ड शुलमैन से एक अतरंग वार्त्ता में कहा, “कुछ लोग सोचते हैं कि ईश्वर के लिए पृथ्वी पर मनुष्य के रूप में अवतार लेना अत्यन्त आनन्द का विषय है। किन्तु यदि तुम मेरे स्थान पर होते तो तुम इसे आनन्ददायक न समझते।" उन्होंने आगे कहा, “मैं तुम्हारा भूत और भविष्य दोनों जानता हूँ; अतः मूझे मालूम है कि तुम क्यों कष्ट उठाते हो और तुम किस तरह उससे छुटकारा प्राप्त कर सकते हो। न इस जीवन में और न प्रेत योनि में तुम्हें उससे मुक्ति मिलेगी और बिना मेरे बुलाए कोई पुट्टापर्ती आ भी नहीं सकता, चाहे वह कितना ही संयोगमात्र प्रतीत हो। मैं केवल उन लोगों को यहाँ बुलाता हूँ जो मेरे दर्शन के लिए उत्सुक है, अन्य किसी को नहीं। जिसे मन चाहे, वह चला आए, ऐसा नहीं है।"

उपरोक्त कथन तथा इसी प्रकार के अन्य कथन, जिन्हें हजारों भक्तों से सुना है और टेपरिकार्ड किया है, इस रहस्य को उद्घाटित करते हैं कि स्वामी परमात्मा की उस परमसत्ता के मानव रूप में अवतार है-वह सत्ता जो सर्वशक्तिमान है, सर्वज्ञ है, ज्योतिर्मय है तथा प्रेम की साक्षात मूर्ति है। जैसा स्वमी ने कहा है-बिना प्रभु की स्वीकृति और सहमति के जब कोई व्यक्ति उनकी ओर उन्मुख भी नहीं हो सकता, आना तो दूर की बात है, तब हम उस साँसारिक दृष्टि से अशिक्षित, ग्रामीण महिला, ईश्वराम्मा के

विषय में क्या कह सकते हैं, जिन्होंने अपना समस्त जीवन पौराणिक आख्यानों की आदर्श नायिकाओं के अनुरूप, स्मृतिकारों के आदेशों तथा तत्कालीन परम्पराओं पर चल कर दैनिक गृहस्थ जीवन के कार्यों में व्यतीत किया, पर जिन्हें बाबा ने अपनी माता की भूमिका निभाने के लिए चुना। स्वामी ने एक अवसर पर इसे उद्घाटित किया था कि अवतार के पिता के रूप में संसार के समक्ष किसी व्यक्ति को प्रस्तुत होने का अनुग्रह, जो एक युग में केवल एक ही व्यक्ति को प्राप्त होता है, पेड्डा वेंकमा राजू को प्राप्त हुआ। इसी प्रकार युगों-युगों के एकत्रित पुण्यों के फलस्वरूप मातृत्व का यह वरदान ईश्वराम्मा को प्राप्त हुआ।

जब तक किसी व्यक्ति में उठने तथा आगे बढ़ने की प्रबल इच्छा न हो, वह इस बात का अनुमान नहीं लगा सकता कि वह कितना ऊँचा उठ सकता है। पर भाग्य ने, विधाता ने उन्हें न केवल प्रेरित किया वरन् उद्वेलित किया। फलस्वरूप वे उठी और आध्यात्मिक धरातल पर उठती ही चली गई। जो भी व्यक्ति एक बार उनके समक्ष उपस्थित होता उसके मन में ईश्वराम्मा के प्रति श्रद्धा और सम्मान की भावना जागृत होती। समय-समय पर उनके नेत्रों में दिखाई पड़ने वाली चमक, उनके चेहरे पर गहरी हो जाने वाली हल्की-हल्की झुर्रियाँ, उनकी अंतर की सरलता का प्रतीक उनका उन्मुक्त हास, किसी के दुख-दर्द और अभावों को सुनकर उनके नेत्रों में झिलमिलाने वाली पानी की रेखायें—ये मानों अपने मौन स्वरों में पुकार-पुकार कर यही कहती थीं कि स्वामी ने उन्हें अवतार की माँ के रूप में केवल इसलिए नहीं चुना, क्योंकि उनके पूर्वजन्मों के कर्म श्रेष्ठ थे। इस

जीवन में भी वे कर्मठता, त्याग और सहनशीलता की अंतिम सीमा तक उठ सकती थीं। अतः इस क्षमता की सराहना के रूप में भी उन्हें बाबा का यह अनुग्रह प्राप्त हुआ था।

ईश्वराम्मा एक आदर्श बहन, पत्नी, माँ, मातामही (दादी/नानी) का अनुकरणीय उदाहरण थीं-जीती-जागती मिसाल थीं। 'ईश्वर' की 'अम्मा' के रूप में उन्होंने वही आदर्श उपस्थित किया। वे उतनी ही चमकीं, जितनी कौशल्या, देवकी अथवा मरियम (मेरी)। बाल्मीकि कहते हैं, "अपने असीम महिमावान पुत्र द्वारा कौशल्या को इतना गौरव प्राप्त हुआ।" इसी प्रकार आज हम यह भी कह सकते हैं कि असीम महिमावान साई के कारण ईश्वराम्मा को इतना गौरव और कीर्ति प्राप्त हुई। उनकी कीर्ति राम और कृष्ण की जननियों के समान ही श्रेष्ठ थी। कलियुग के राम, साईराम द्वारा वर्णित भगवान राम की कथा में वे कहते हैं कि कौशल्या को एक साथ राम का दर्शन दो स्थानों पर हुआ-पालने में और महल के मंदिर में भी। कौशल्या ने राम के विराट स्वरूप के दर्शन किए, जिसे स्वयं उन्होंने अपने अन्तर से प्रकट किया था और उन्होंने देखा कि समस्त सृष्टि उनके आलोक से जगमगा रही है। 'माँ कौशल्या को उत्तरोत्तर आनंद प्रदान करने वाला' कह कर राम की प्रशंसा की गई है। बनारस, बद्रीनाथ, अयोध्या, सोमनाथ, श्रीशैलम तथा स्वामी के चरण-कमलों में पुष्पांजलि अर्पित करते समय ईश्वराम्मा को भी भावातीत आनन्द उठाने का सुअवसर प्राप्त हुआ और इसके लिए उन्होंने कृतज्ञता भी प्रकट की।

जब राम ने कौशल्या से अयोध्या से वन-गमन करते समय आज्ञा माँगी तो कौशल्या ने एक प्रार्थना द्वारा अपने मन को सांत्वना दी, "ईश्वर करे जिस धर्म की रक्षा के लिए तुम यह कर रहे हो, वही तुम्हारा कवच बनकर तुम्हारी रक्षा करे।" इसी प्रकार की आस्था और विश्वास के बल पर ईश्वराम्मा भी अपने को उन दिनों संतुलित रखती थीं, जब स्वामी 'उनकी दृष्टि में आसुरी' क्षेत्रों की यात्रा करते थे। देवकी ने भी आसुरी शक्तियों के ऊपर कृष्ण की विजय के अनेक चमत्कार देखे थे। जिस प्रकार ईश्वराम्मा ने अपने जीवन के उत्तरकाल में प्रार्थना पश्चाताप तथा अपने पुत्र की रहस्यमयी, महान तथा असाधारण शक्ति का बार-बार स्मरण कर इस कलियुग में अपने मन को समझाया और सांत्वना दी, ठीक उसी प्रकार द्वापर में देवकी भी कृष्ण की महिमा, उनके दैवी चमत्कार तथा असाधारण बल का स्मरण कर संकट की घड़ियों में अपने को समझाती रहती थीं।

भारत के गाँवों में जन्मी, पली-पुसी और अधिकांश विवाहित नारियों की भाँति ईश्वराम्मा को एक बड़े सम्मिलित परिवार के सदस्य के रूप में अपने को ढालना पड़ा। उन दिनों एक छोटे से घर में पूरा परिवार भरा रहता था। उन्हें परिवार के सदस्यों के साथ विनयशीलता, नम्रता तथा सोच-विचार कर बाते करनी पड़ती थी। ऐसी सामाजिक व्यवस्था में प्रशांति, मौन, सहनशीलता, आदर भाव तथा नियमितता तो अनिवार्य अंग बन जाते हैं। अपनी सास की मृत्यु उपरान्त उन्हें गृहस्थी सम्बन्धी प्रत्येक समस्या पर अपना निर्णय देना पड़ता था। किन्तु ऐसे अवसरों पर वे

स्वामी से परामर्श करके ही निर्णय लेती थीं और स्वामी ऐसी परिस्थितियों में पड़ी हुई अन्य भक्त महिलाओं को जिस प्रकार उचित परामर्श देते थे, उसी प्रकार ईश्वराम्मा को भी। किन्तु ऐसे अवसर बहुत कम आए, जब उन्होंने अपनी द्वन्द्वात्मक स्थिति सीधे स्वामी के सामने रक्खी हो और क्या करना चाहिए। इस पर परामर्श लिया हो।

समय के साथ-साथ विकसित उनकी जीवन्त विनोद-प्रियता कठिन-से-कठिन संकट की घड़ियों में भी उन्हें आघात सहन करने की क्षमता प्रदान करती थी। यह पता लगते उन्हें देर न लगी कि स्वामी अपने विनोद के क्षणों में जो उन्हें खिझाते तथा उन पर व्यंग्य करते उसका एकमात्र उद्देश्य उनकी आस्था को गहरा करना और उनके दृष्टिकोण के क्षितिज को व्यापक बनाया था। एक ओर जहाँ वे अफ्रीका के जंगलों की भयानकता का चित्रण कर उन्हें डराते थे, उसी समय दूसरी ओर उन्हें यह बतलाकर कि वहाँ सोना बहुत सस्ता है, उन्हें ललचाते भी थे। इससे उन्हें यह शिक्षा मिली कि स्वामी हर प्रकार के भय को एक क्षण में समाप्त कर सकते थे तथा सोने के प्रति मोह नारियों की एक दुर्बलता है, जिस पर उन्हें शीघ्र ही काबू पाना चाहिए। इस प्रकार उन्होंने स्वामी द्वारा दिए गए उपदेशों को आत्मसात् किया और अपनी सरलता और विनम्रता से सभी को आकर्षित किया।

पेड्डा बोट्टु जो उन्हें भलीभाँति जानती थीं, हृदय से उनकी प्रशंसा करती थीं। “ईर्ष्या तो उन्हें छू तक न गई थी। किसी की निन्दा उन्हें बिल्कुल

पसंद न थी। उनकी वाणी मधुर थी और उनके शब्दों से स्नेह और सहानुभूति झलकती थी। उनका साँवला वर्ण, हल्के काजल से युक्त उनके नेत्र, उनकी चौड़ी भौंहों के बीच मस्तक के मध्य चमकती हुई लाल सौभाग्य की बिन्दी, इस सबको देखकर देवी लक्ष्मी की लोकप्रिय मूर्ति हमारे नेत्रों के समक्ष आ जाती थी।" भक्तों को जब भी उनसे मिलने का अवसर प्राप्त होता, वे दण्डवत् प्रणाम करते और उनका मातृत्व भरा आशीर्वाद प्राप्त करने की प्रार्थना करते। उनके बड़े-बड़े नेत्रों में एक चमक आ जाती और, जब वे भक्त को पहचान जाती अथवा अपनी संतोष या प्रशंसा व्यक्त करने के लिए मुस्कराती, उनका दंतहीन मुख आधा खुल जाता। वे अपनी अपनी भाषाओं में उनसे बात करते और सबका उत्तर केवल एक ही भाषा में पाते, जो ऐसे असवरों पर उनका माध्यम होती और वह थी हृदय की भाषा |

माँ हर समय अत्यन्त मधुर बोलती थीं। उनकी वाणी से धैर्य और उनकी सहनशीलता का पता चलता था। उनकी वाणी अत्यन्त निर्मल और स्पष्ट सुनाई पड़ती थी; क्योंकि वह आडम्बरहीन थी। उसमें कहीं भी ऐसा तीखापन न होता था, जो सुनने वाले के मन को चोट पहुँचाये। दूसरे शब्दों में वह स्पष्टवादी थीं। जिन दिनों स्वामी गाँव वाले मंदिर में निवास करते थे, ऐसी अनेक महिलायें होती थीं, जिन्हें उनके हैरान माता-पिता स्वामी के पास इसलिए लाते थे, क्योंकि उन पर भूतप्रेत का प्रभाव प्रतिलक्षित होता था। ऐसी भाग्यहीन स्त्रियाँ कभी तो जोर-जोर से चिल्लाती, कभी क्रोध प्रदर्शित करतीं, कभी विलाप करतीं और कभी इधर-उधर भागतीं।

घर पर उनकी दशा और भी अधिक बिगड़ती जाती थी; क्योंकि जो झाड़फूंक करने वाले ओझा उनका उपचार करते, उनके पास एक ही उपाय था- बुरी तरह डण्डे से पीटना। इसी पूरी कार्य विधि में सुधार के लिए किए गए गलत उपचारों को ठीक करने के लिए रोगियों को सहानुभूति और प्रेम का मरहम लगाने वाली वे प्रथम व्यक्ति होतीं। उनके साथ थोड़े क्षण रहना भी रोगियों की पीड़ा को शांत कर देता और वे एकदम चुप और शांत हो जातीं। वे उन्हें माँ जैसा प्रेम देतीं और उनके हृदयों में भरे हुए विस्फोटक उद्वेगों को शां करती। इसलिए जब भी लोग उन्हें 'अम्मा' कहकर सम्बोधित करते, तो हृदय से निकलते इस शब्द को बोलते समय उनके होंठ काँपने लगते और नेत्रों में आँसू झलकने लगते। बहुधा जब भक्तगण ब्रह्ममुहूर्त में 'ओंकारम्' में व्यस्त होते, स्वामी चुपचाप बंगलौर चले जाते। ईश्वराम्मा उनसे कहा करती कि वे इस प्रकार बिना बताये भक्तों को दुःख में डालकर न जाया करें।

गाँव में जो लोग अपने घरों में बिस्तर पर बीमार पड़े होते, माँ उनके घर जातीं और प्रशांति निलयम् के पीछे पहाड़ी पर स्थित सत्यसाई अस्पताल में इलाज करने के लिए उन्हें अपने साथ चलने को कहतीं। लगातार गाँव से लेकर पहाड़ी तक वे उनसे ऐसी ही बातें करतीं, जिनसे उनकी हिम्मत बँधी रहे। उनकी वाणी बड़ी आशा से भरी होती। जब कभी डाक्टर उनको इंजेक्शन लगाता अथवा कोई चीराफाड़ी करता, तो वे रोगी के बगल में खड़े होकर अपना प्रेमपूर्ण ढाढस बँधाने वाला हाथ निरन्तर उसके कंधे पर रक्खे रहती। थोड़े समय के बाद गाँव की पूरी जनता डाक्टरों को ईश्वर

की ओर से भेजे गए पवित्र चिकित्सक और जन-सेवक के रूप में मानने लगी, जिन्हें बाबा ने उन्हें स्वस्थ और प्रसन्न रखने के लिए बुलाकर अस्पताल में रखा था। वर्ष बीतते गए और ईश्वराम्मा के लिए जीवन का प्रवाह बड़ी तेजी से बहने लगा। स्वामी प्रत्येक दिन किसी न किसी चमत्कार से उनके तथा भक्तों के हृदयों को असाधारण आश्चर्य से भर देते; ऐसा आश्चर्य जो सहज रूप से हृदय में समा न सकता था। असम्भव, अविश्वसनीय, अप्रत्याशित घटनायें उनके नित्यप्रति के आहार की भाँति थीं। फिर भी वे इन सब चमत्कारों को अपने में समाहित कर सकी, उन्हें पचा सकी और जीवन की गति के साथ कदम मिलाकर चलती रहीं; क्योंकि उनकी स्मृति में एक निजी अक्षय कोष सुरक्षित था और वह था अतीत कालीन, पौराणिक तथा ऐतिहासिक साहित्य, जिनमें संतों, साधुओं और अवतारों से सम्बन्धित तथा युद्ध और शांति सम्बन्धी असंख्य कथायें भरी पड़ी थीं। यह स्मृति ही उनकी निरन्तर और विश्वसनीय सहचरी थी। ब्रह्ममगरु तथा असाधारण रूप से सत्य घटित होने वाली उनकी भविष्यवाणियाँ, पाँडुरंग विट्ठल और उनकी कृपा के अनेक चमत्कार और कदीरी में स्थित नृसिंह मंदिर में अनेक रोगियों के रोग निवारण की गाथायें सब उसमें सुरक्षित थीं। यही वे कसौटी थीं जिन पर कसकर उन्होंने वर्तमान अवतार की प्रमाणिकता को हृदयगंम किया था। जब कभी वे अपने सामने होने वाली अवतार से सम्बन्धित असाधारण घटनायें देखतीं, जिन्हें देखकर उनके मन में कभी तो विस्मय, कभी चिन्ता तथा कभी हर्ष की तरंगें उठतीं, वे तुरन्त अपने इस अक्षय

कोष से पूर्व अवतारों के जीवन प्रसंगों में होने वाली समानान्तर घटनाओं व तत्कालीन जन समाज की प्रतिक्रियाओं पर विचार करतीं और अन्त में आश्वस्त हो जातीं कि साई बाबा का अवतार सचमुच का अवतार है। इस प्रक्रिया द्वारा उनका विश्वास तो दृढ़ होता ही, अन्य कई व्यक्तियों का विश्वास भी दृढ़ होता। इस प्रकार उनमें आत्म-विश्वास और दृढ़ता का संचार होता और जो भी काम करती पूर्ण निश्चय के साथ करतीं।

ईश्वराम्मा अत्यंत मेधावी थीं और एकाकी, भटके हुए अथवा सुख से वंचित व्यक्तियों की प्यास शांत करने के लिए उनके पास आंचलिक ज्ञान का अनन्त स्रोत था। शरीर सम्बन्धी सामान्य बीमारियों के लिए उनके पास न जाने कितने ग्रामीण नुस्खे इतना ही नहीं, वे ऐसी मनोवैज्ञानिक युक्तियाँ भी जानती थीं, जिनके द्वारा जो महिलायें उनसे मिलने आतीं उनके मन से निराशा और भय का भूत हमेशा के लिए भगा देतीं। इनमें ऐसी महिलायें भी होती जो कभी अपनी सगी माताओं को भी न बतातीं। उनके दुःख-दर्द को ईश्वराम्मा इतने धैर्य और सहानुभूति के साथ सुनतीं कि मन के अन्तरतम कोने में छिपे हुए कष्ट भी बाहर आ जाते और वे महिलायें उन्हें भी सविस्तार सुनाती । दुःख-दर्द की ये कहानियाँ कितनी ही लम्बी हों, वे उन्हें धैर्य से सुनतीं। उनके मुख पर उन्हें सुनते समय कभी भी शीघ्रता, ऊब, चिड़चिड़ाहट, थकान आदि का भाव न आता, उल्टे उनके नेत्रों में चमकने वाले अश्रु-बिन्दुओं को देखकर कहने वाली की पीड़ा उसी में डूब जाती और वह सब कुछ भूल जातीं।

ईश्वराम्मा के जीवन में अनेक तूफान आये। किन्तु उन्होंने अपनी जीवन नौका का लंगर बड़े गहरे ज्ञान के समुद्र में डाल रक्खा था, अतः न केवल यह कि वह कभी विचलित न हुईं वरन् हर आपत्ति ने, हर तूफान ने उन्हें और भी साहसी और दृढ़ बनाया। मृत्यु ने उनकी चार संतानें उस समय छीन ली, जब वे केवल दूध पीते बच्चे थे। अपने युवाकाल में ही . उनकी पुत्रियाँ विधवा हो गयीं। उनका एक नाती हुआ जो बहरा और गूँगा था। एक नातिन चेचक से बीमार होकर मर गयी। सब ऐसी चुनौतियाँ थीं, जिनका सामना उन्होंने अपने गृहस्थ जीवन में किया। किन्तु स्वामी के कार्य देखकर उनके हृदूतंत्री के तार झनझना उठते और उनके उपदेश सुनकर कभी-कभी बुद्धि पर पड़ने वाला भ्रम का पर्दा हट जाता और वे अदम्य उत्साह से भर जातीं। उन्होंने ऐसे झंझावातों में भी शांत और संतुलित मन रखना सीख लिया था और उन्होंने अपनी धृति से, स्वामी के प्रति अपनी अडिग श्रद्धा और लगाव से और उन भक्तों के प्रति भी अपने लगाव से जो स्वामी के निकट आते थे, सभी को प्रभावित कर लिया था। नवीनता, अनेकता अथवा विकर्षण में उन्हें तनिक भी रुचि न थी। अपने अन्तिम दिनों में वे अपनी सहृदयता और सज्जनता के शिखर पर स्थित थीं।

मुझे वे अवसर याद हैं, जब मुझे उनकी अप्रसन्नता का और कभी-कभी झिड़की का भी सामना करना पड़ा। ये वे स्थितियाँ थीं, जब मैं उन्हें किसी घटना की पूर्ण सूचना न दे पाता, अथवा उनकी व्यग्रता तथा चिंता से भरे हुए प्रश्नों के उत्तर में इस डर से पूरी कहानी न बताता कि उससे अचानक

घबराहट न फैल जाए। ऐसे भी उदाहरण थे, जब किसी विशेष उत्सव के अवसर पर मैं उन लोगों को प्रवेश दिलाने में असमर्थ रहता, जो उनके पास इस प्रार्थना के साथ पहुँचते थे। ऐसा करना तनिक भी न्यायोचित न था। किन्तु ऐसे सभी अवसरों पर जब मैं उन्हें वे सारे कारण बताता जिनकी वजह से मुझे एक विशेष ढंग से कार्य करना पड़ा, तो वे अनुभव करतीं कि उनका क्रोध तर्कसंगत न था और फिर उनका क्रोध हँसी में बदल जाता। उनके मन में कभी भी किसी के प्रति दुर्भावना न रहतीं, न वे उसे अपने हृदय में पनपने देतीं, न उन्हें उसमें आनन्द आता, बल्कि जब भी उन्हें उस व्यक्ति से मिलने का पहला अवसर मिलता जिसने कभी कुछ अनुचित बात कही हो, तो वे उससे स्वयं ही उसके कहे हुए शब्दों तथा किए हुए कार्यों के पीछे छिपे हुए उद्देश्य को पूछ लेतीं। ऐसी पूछ-ताछ में वे कभी आलस्य या असावधानी न बरततीं और यदि उन्हें यह ज्ञान होता कि जो भी कहा गया अथवा किया गया है वह स्वामी के निर्देशों के अनुकूल है तो उनका क्रोध विलीन हो जाता और वे प्रसन्नतापूर्वक वापस लौट आतीं।

ईश्वराम्मा भक्तों को स्वामी की दिव्य उपस्थिति में बार-बार उत्साहित करतीं, क्योंकि वे जानती थी कि आचरण, व्यवहार और प्रवृत्तियों में सुधार के लिए अवतार के निकट सम्पर्क में लम्बे समय तक आने की आवश्यकता है। वे बड़े विश्वास से उनसे स्वयं अपनी कहानी बतलातीं। वे बतलातीं कि कैसे उनका भय आश्चर्य में बदला, आश्चर्य विस्मय में बदला, फिर विस्मय स्वीकृति में परिवर्तित हुआ, स्वीकृति श्रद्धा में बदली और अंत में श्रद्धा आनन्द में परिवर्तित हुई। वे निराश और हताश भक्तों को

स्वामी द्वारा दी हुई सलाह फिर से दुहराकर उन्हें सांत्वना देती। कहती, “तुम्हें धैर्य का अभ्यास करना चाहिए। एक छोटी-सी कली को रसपूर्ण फल में बदलने में बहुत समय लगता है।" उनकी सलाह से दुःखी भक्तों को शांति मिलती, क्योंकि वे स्वयं ही क्षमा और धैर्य की प्रतिमूर्ति थीं।

क्षमा से समबुद्धि उत्पन्न होती है और समबुद्धि प्रेम को जन्म देती. और यह प्रेम उन भक्तों के प्रति था, जो यह न जानते थे कि उसे कब और किस रूप में लौटाया जाए। स्वामी कहते कि "अपने शत्रुओं से प्रेम करना. एक आध्यात्मिक साधना है, घृणा का सामना प्रेम से करना एक महान कार्य है, क्योंकि सब ईश्वर के सर्वव्यापी शरीर (विराट) के कोष हैं और उसी में स्थित हैं।” “जब तुम्हारे दाँत तुम्हारी जीभ को काट लेते हैं, तो क्या तुम उन दाँतों को हथौड़ी से तोड़कर निकाल फेंकते हो ?” स्वामी प्रश्न करते। मैंने ईश्वराम्मा को अनेक महिलाओं के सामने जो अपने को अपमानित अथवा अपेक्षित अनुभव करतीं, यही प्रश्न दुहराते देखा था। इसके द्वारा वे उनके क्रोध को शांत कर देतीं। क्षमा का अर्थ है दया भाव, जिसका व्यवहारिक रूप हैं 'क्षमा करो और भूल जाओ।' ईश्वराम्मा ऐसी घटनाओं को, जिन्होंने उनके आत्मसम्मान को ठेस पहुचायी हो, बहुत कम याद रखतीं। इस सम्बन्ध में उनकी स्मृति अत्यन्त दुर्बल थी। उनके मन में यदि कहीं किसी कोने में कण मात्र क्रोध भी होता तो सामान्य विवेक के हल्के से झोंके का स्पर्श भी उसे नष्ट कर देता।

मानवता विनाश के जिस पथ पर बढ़ती चली जा रही है, उससे उसका उद्धार करने का बीड़ा अवतार ने स्वयं ही उठाया है। स्वामी की संस्कार की पुकार का अर्थ मन को निर्मल बनाने की प्रक्रिया ही नहीं है, यह घृणा, हिंसा, अंधविश्वास, धर्मान्धता, क्रोध, पूर्वाग्रह आदि प्रवृत्तियों को नष्ट करना मात्र नहीं है, वरन् उनके स्थान पर सहनशीलता, मातृत्व, सहानुभूति, उदारता, स्पष्टवादिता आदि रचनात्मक गुणों का विकास और पोषण भी है। अपनी लाखों बहनों की भाँति ईश्वराम्मा भी नासमझी, भय, अनाडीपन से परेशान हुई। जब भी कभी उनके मन में भौतिक इच्छायें इकट्ठा हुई और उनमें आपस में संघर्ष हुआ, तो वे भी संदेह, अनिश्चय, शंका, भय आदि से पीड़ित हुई। पर ऐसे सभी अवसरों पर वे स्वामी और उनके उपदेशों का ध्यान करतीं और शनैः शनैः स्वामी उन्हें आनन्द, साधुता और प्रज्ञान के क्षेत्र में ले गए। स्वामी ने उन्हें जिन्हें अपनी माँ के रूप में 'चुना था-अपने अग्रिम शिष्य के रूप में दीक्षित किया। जैसे-जैसे वे उलझन और असमंजस की स्थिति को पार कर स्वामी के ईश्वरत्व में अपनी श्रद्धा को बढ़ाती चली गयीं, वे उनके निकट आती गयीं। वह दैवत्व जो कभी हमें भ्रम में डालकर भ्रम तथा अनेकता का बोध कराता है और कभी उस माया और भ्रम के निवारण में हमारी सहायता करता है। यह उसी लीलाधारी का खेल है, जिसे खेलने में उसे आनन्द आता है. इसे वे समझने लगी थीं।

गाँव में रहने वाले स्त्री और पुरुषों के जीवन में आने वाली बीमारी अथवा विपत्ति से मुक्ति पाने के लिए लोग अनुष्ठान, धर्म-कर्म, पूजा-पाठ, मंत्र,

यंत्र, तंत्र, पुजारी-ओझा, भविष्यवक्ता आदि का सहारा लेते हैं। स्वाम्नी ने माँ को इस कर्मकाण्ड के पीछे छिपे हुए मूल तत्व को, जो नारियल के अन्दर स्थित गरी के समान महत्वपूर्ण है, समझा दिया और उन्हें तथा अन्य दूसरे व्यक्तियों को इसके सैद्धान्तिक महत्व, मूल उद्देश्य, उनकी निदान और उपचार सम्बन्धी क्षमता के विषय में जानकारी दी, ताकि वे अन्धविश्वास से बचें। उन्होंने उन सबके मन में छिपे भय को निकाल दिया और अन्धेरे कोनों को प्रकाशित कर उन्हें अज्ञानता तथा चिंता के बोझ से मुक्त कराया।

उस परम गुरु ने वर्षों तक माँ को इस प्रकार के तथा अन्य उपदेश दिए, कभी चेतावनी के रूप में उन पर दृष्टि डालकर, कभी प्रोत्साहित करने वाली मुस्कान के द्वारा, कभी विस्मयबोधक शब्दों के प्रयोग से सचेत करके, कभी प्रश्न उठाकर बीच में रोकते हुए, कभी गूढार्थ को प्रकट करने वाले किसी रूपक के प्रयोग से, कभी निहित संदेश देने वाली कथा सुनाकर और इस प्रकार स्वामी ने उन्हें एक सच्चे संत के रूप में ढाल दिया, जो प्रत्येक घटना, भाव, विचार और वस्तु को एक मणिजटित द्वार के रूप में देख सकती थीं-जहाँ खड़े होकर वे उस एक परम तत्व को पहचान सकती थीं। अतः कोई आश्चर्य नहीं कि जब अपने अन्तिम क्षणों में माँ को उस परम तत्व में लीन होने की उत्कट्ट इच्छा हुई और उन्होंने “स्वामी ! स्वामी!” पुकारा तो परमेश्वर ने निश्चयात्मक रूप से सानन्द उत्तर दिया “मैं आता हूँ।" वह लहर जो उस महासागरीय संकल्प के उत्तर में पीछे

फिरकर लोटती-पोटती इस संसार तट तक आयी थी, उसे उसी महान संकल्प ने पुनः आमंत्रित कर अपने में लीन कर लिया।

॥ इति ॐ शांतिः ॥